हम क्यों मुसलमान हुए?

मकतबा
अल हसनात
नई दिल्ली.

हम क्यों मुसलमान हुए?

सम्पादक

प्रोफ़ेसर अब्दुल ग़नी फ़ारूक़

अनुवादक

नजमा ख़ातून

मकतबा अल हसनात

नई दिल्ली–2

सूची

इन्टरविऊ

शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा
कृपाशील और दयावान है

परिचय

अल्लामा इक़बाल ने कहा थाः–

यह शहादत गहे उलफ़त में क़दम रखना है
लोग आसान समझते हैं मुसलमाँ होना

इस्लाम को मुकम्मल सूरत में स्वीकार करना जितना मुश्किल है उस से कहीं ज़्यादा मुश्किल अपने पुशतैनी धर्म को छोड़ कर इस्लाम को कुबूल करना है। यह कोई मामूली बात नहीं कि एक शख़्स अपने माहौल, ख़ानदान और माँ बाप के ख़िलाफ़ बग़ावत करता है और हक़ को तलाश करने के लिये उस रास्ते पर जाता है जो हज़ारों कठिनाईयों से भरा होता है मगर वह हर कठिनाई का मुक़ाबिला करता और हर आज़माइश में पूरा उतरता है, यह काम वास्तव में उन्हीं लोगों का है जिन के हौसले बुलंद और हिम्मतें बहुत ज़्यादा जवान होती हैं, हिम्मत वालों का यह गिरोह मुबारकबाद और प्रशंसा के लायक़ है, उन की मिसालें इस लायक़ हैं कि उन्हें ज़्यादा से ज़्यादा फैलाया जाये ताकि यह बात अमली तौर पर साबित होती रहे कि हर ज़माने की तरह इस्लाम आज भी एक ज़िन्दा व शक्तिशाली धर्म है। यह इंसान की रूहानी और माद्दी ज़रूरतों को बहुत अच्छी तरह से पूरा करता है और हर इंसान को दिली सुकून देता है।

मैं ने इसी ज़रूरत को सामने रखते हुये यह पुस्तक संपादित की है, और उन सारे प्रसिद्ध मर्दों और औरतों के लिखे हुये हालात जमा कर दिये हैं जो उन्हों ने अपने आप लिखे हैं जिन्हों ने इस्लाम कुबूल किया है और इस्लाम कुबूल करने के कारण भी लिखे हैं। यह क़िस्से ज़्यादातर अंग्रेज़ी में थे और विभिन्न पुस्तकों और रिसालों में लिखे गये थे। मैं ने उन में से कुछ को इकट्ठा किया और इसे उर्दू में आप लोगों के सामने पेश किया। अल्लाह तआला मेरी इस मेहनत को कुबूल फ़रमाये और इस पुस्तक के पढ़ने वालों को अपने ख़ास करम (दया) से नवाज़े।

अब्दुल ग़नी फ़ारूक़

नोटः -

इस किताब की अहमियत के कारण इसे हिन्दी में छापना ज़रूरी था, इस लिये नजमा ख़ातून साहिबा ने इस का हिन्दी अनुवाद किया हम उन के आभारी हैं। अल्लाह से दुआ है कि किताब के सम्पादक और अनुवादक दोनों की इस कोशिश को कुबूल फ़रमाये।

प्रकाशक

डॉक्टर आर-एल-मेल्लीमा (हालेन्ड)

(Prof. Dr, R.L. Mellema)

इल्मुल-इंसान के माहिर, मूसन्निफ़ (रचयिता) और मुहक्क़िक़ (अन्वेषक) की हैसियत से डॉक्टर आर, एल, मेल्लीमा यूरोप के इल्मी हल्क़ों में ख़ास इज़्ज़त और शोहरत के मालिक हैं। वह एमसटरडम के इस्तवाई अजाइब घर में इस्लामी विभाग के अधयक्ष और निरीक्षक हैं उन्हों ने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं जिन में से एक पाकिस्तान के बारे में है।

★★★★

मुझे इस्लाम में क्या हुस्न नज़र आया है? वह कौन सा खिंचाव था जो मुझे इस धर्म की तरफ़ ले आया है? यह हैं वह दो सवाल जिन के जवाब मुझे देने हैं। तो अर्ज़ है कि मैं ने 1919 ई॰ में लीडन यूनीवर्सिटी से पूर्वी ज़ुबान की शिक्षा शुरू की और प्रसिद्ध पूर्वी ज़ुबानों और अरबी ज्ञान के माहिर प्रोफ़ेसर सनाऊक हरग्रोन्ज के लेकचरों में बराबर जाने लगा। मैं ने अरबी में इत्नी योग्यता प्राप्त कर ली कि अल-बैज़ावी की तफ़सीर क़ुरआन और ग़ज़ाली की एक पुस्तक का अनुवाद कर डाला।

जैसा की उस ज़माने का तरीक़ा था मैं ने तारीख़े इस्लाम और इस्लामी संस्थाओं में सारी जानकारियाँ इन पुस्तकों से हासिल कीं, जो यूरोपियन ज़ुबानों में प्रकाशित हुई थीं। 1921 ई॰ में मैं

मिस्र गया और वहाँ एक महीना तक रहा उस दौरान मैं ने अल-अज़हर का ख़ूब अध्ययन किया, चूँकि मैं ने अरबी के अलावा संसकृत मलाई और जावी ज़ुबानों पर भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इस लिये 1927 ई० में मैं हालेन्ड की नौआबादी जज़ाइरे शरकुल-हिन्द जो (आज़ादी के बाद इंडोनेशिया कहलाया) चला गया और जकारता में उच्च शिक्षा की एक ख़ास संस्था में जावी ज़ुबान और हिन्दुस्तानी कलचर की तारीख़ पढ़ाने लगा। अगले पन्दरह वर्ष तक मैं जावी ज़ुबान और कलचर के पुराने व नये विभागों में विशेषता प्राप्त कर चुका था। उस मुद्दत में इस्लाम और अरबी ज़ुबान से मेरा संबंध बिल्कुल थोड़ा रह गया था।

दूसरी आलमी जंग के दौरान में जब इंडोनेशिया पर जापान का क़ब्ज़ा क़ायम हुआ तो मैं भी जंगी क़ैदी बन गया। रिहाई मिली तो 1946 ई० में मैं वापस वतन चला गया और एमसटरडम के रायल ट्रापीकल इन्सटीटयूट में पढ़ाने लगा। यहाँ मुझे जावी ज़ुबान में इस्लाम पर एक गाइड बुक लिखने का हुक्म मिला और यूँ एक बार फिर इस्लाम से मेरा इल्मी संबंध क़ायम हो गया। यूरोप में इस्लाम पर जितनी किताबें छपीं थीं तक़रीबन सारी मैं ने पढ़ डालीं।

इसी सिलसिले में मुझे इस्लाम के नाम पर वुजूद में आने वाली रियासते पाकिस्तान के अध्ययन की ज़रूरत महसूस हुई। मैं ने सफ़र का सामान बाँधा और 54 ई० के आख़िर में लाहौर जा पहुँचा अब तक इस्लाम के बारे में मेरी मालूमात (जानकारी) का ज़रिया यूरोपियन लिटरेचर था। मगर लाहौर में मुझे इस्लाम के बारे में बिल्कुल नये रुख़ से परिचित होने का मौक़ा मिला दिल व दिमाग़ पर उस के प्रभाव का यह आलम था कि मैं ने अपने मुसलमान दोस्तों से जुमा की नमाज़ में शरीक होने की इजाज़त माँगी जिसे उन्हों ने बहुत ख़ुशदिली से कुबूल कर लिया यहीं से मैं इस्लाम की बुलंदतरीन क़द्रों से परिचित हुआ और मेरी ज़िन्दगी

एक पवित्र इंक़लाब से परिचित होने लगी।

मैं ने अपने आप को उसी दिन से मुसलमान समझना शुरू कर दिया था जब एक जुमा को मुझे मस्जिद के नमाज़ियों से ख़िताब का मौक़ा दिया गया और उस के बाद बहुत से दोस्तों से हाथ मिलाना पड़ा था जो अगरचे मेरे लिये अजनबी थे मगर उन के बेपनाह जोश में सगे भाईयों की मुहब्बत झलकती थी। उस के बाद मेरे दोस्त मुझे एक छोटी सी मस्जिद में ले गये वहाँ एक ऐसे साहब ख़ुतबा देते थे जो रवानी से अंग्रेज़ी बोल सकते थे और पंजाब यूनीवर्सिटी में काफ़ी ऊँचे पद पर थे। उन्हों ने नमाज़ियों को बताया कि इस इजतिमाअ (सम्मेलन) में अंग्रेज़ी शब्द ज़्यादा इस्तेमाल करने की वजह यह है कि एक दूर दराज़ के मुल्क "नेदरलैन्ड" से आया हुआ हमारा एक भाई इस्लाम के बारे में काफ़ी मालूमात हासिल कर सके। बहरहाल ख़िताब ख़त्म हुआ तो पहले इमाम के पीछे दो रकअतें पढ़ी गईं और बाद में अलग अलग लोगों ने चन्द रकअत अदा कीं।

मैं उठ कर बाहर निकलने ही वाला था कि ख़तीब साहब जिन्हें लोग अल्लामा साहब[1] के लक़ब से पुकारते थे मेरी तरफ़ मुतवज्जेह हुये उन्हों ने बताया कि लोग मेरी ज़ुबान से कुछ सुनना चाहते हैं, ख़ैर मैं उठा और माइक्रोफ़ोन के सामने जाकर अपने ख़यालात का इज़हार करने लगा। मैं अंग्रेज़ी में बात कर रहा था और अल्लामा साहब उस का उर्दू में अनुवाद करते जाते थे। मैं ने बताया कि मैं एक ऐसे मुल्क से आया हूँ जहाँ बहुत ही कम मुसलमान रहते हैं। मैं उन की जानिब से और अपनी तरफ़ से आप हज़रात को सलाम पेश करता हूँ कि आप अपनी आज़ाद व ख़ुदमुख़तार इस्लामी रियासत के मालिक हैं और इस रियासत ने

---

1. मुराद है अल्लामा अलाउद्दीन सिद्दीक़ी मरहूम। पुराने सदर शोबा इस्लामियात और वाइसचान्सलर पंजाब यूनीवर्सिटी।

गुज़िशता (गुज़रा हुआ) सात वर्षों में काफ़ी मज़बूती हासिल कर ली हैं और ख़ुदा ने चाहा तो एक रोशन भविष्य आप का मुंतज़िर है मैं अपने वतन वापस जा कर बताऊँगा कि पाकिस्तान में मुझे मेहमाननवाज़ी और मुहब्बत व अख़लास के किस अथाह व्यवहार का योग्य समझा गया।

इन शब्दों का उर्दू में अनुवाद किया गया तो अजीब दृश्य देखने में आया। सैकड़ों नमाज़ी ग़ैर मामूली चाहत और इन्तिहाई मुहब्बत के साथ मेरी तरफ़ लपके उन के चेहरे ख़ुलूस और प्यार के नूर से चमक रहे थे और आँखों से भाईचारा और मुहब्बत की ऐसी किरनें फूट रही थीं जो दिल व दिमाग़ से आगे मेरी रूह में उतरती जा रही थीं। मैं ने यह नतीजा निकाल लिया कि इस्लाम का भाईचारगी का रिश्ता दुनिया का सब से मज़बूत रिश्ता है। सच्ची बात है उस दिन मेरी ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं था।

यूँ पाकिस्तान के मुसलमानों ने मुझ पर साबित कर दिया कि इस्लाम सिर्फ़ क़वानीन का एक मजमूआ नहीं है बल्कि मुहब्बत का रवाँ दवाँ ज़मज़म भी है जो प्यासी रूहों को तरोताज़ा करता और वीरान दिलों में सदाबहार फूल खिलाता है यह आला अख़लाक़ी क़द्रों का वह हसीन गुलदस्ता है जिस से मुसलमान सब से पहले नवाज़ा जाता है। यूँ ईमान व इल्म की रोशनी ने मेरे दिल व दिमाग़ को भी रोशन कर दिया और मैं ने इस्लाम क़ुबूल करने का बाक़ायदा एलान कर दिया।

अब मैं यह बताऊँगा कि इस्लाम की कौन सी बातों ने मुझे प्रभावित किया:-

1. सिर्फ़ एक उत्तम व श्रेष्ठ हस्ती, अल्लाह का इक़रार, यह नज़रिया फ़ितरत के इतना क़रीब है कि सूझ बूझ रखने वाला कोई भी इंसान इसे आसानी के साथ समझ सकता है अल्लाह बड़ा

ही बेनियाज़ है सारी दुनिया उसी की मोहताज हैं वह किसी की औलाद नहीं मगर हर चीज़ को उसी ने पैदा किया और सारी दुनिया में कोई भी उस का हमसर (बराबर) नहीं है वह हिकमत, ताक़त और हुस्न का मम्बा (सोता) है वह बड़ा ही मेहरबान और बहुत ही ज़्यादा सख़ी (दयावान) है।

2. अल्लाह का अपनी दुनिया, जानदार और अशरफ़्फुल-मख़लूक़ात (मानवजाति) से सीधा संबंध है। उस तक पहुँचने के लिये किसी दूसरे ज़रिये की ज़रूरत नहीं इस्लाम में ईसाइयत की तरह पापाइयत का कोई तसव्वुर नहीं इस मज़हब में इंसान अपने कर्मों के लिये आज़ाद व ख़ुदमुख़तार पैदा किया गया है यह दुनिया उस के लिये इम्तिहान का घर है जहाँ उसे दूसरी ज़िन्दगी के लिये तयारी करना है वह अपने अच्छे बुरे का ख़ुद ज़िम्मेदार है और किसी दूसरे की कुर्बानी उसे कुछ फ़ायदा नहीं पहुँचा सकती।

3. "मज़हब में कोई ज़बरदस्ती नहीं" "सच्चाई जहाँ से भी मिले उसे कुबूल कर लो" इस्लाम के इन सुनेहरे उसूलों में रवादारी और हक़शनासी का जो जौहर पाया जाता है उस की मिसाल दुनिया के किसी धर्म में नहीं मिलती।

4. इस्लाम इंसानों को नस्ल रंग और इलाक़े से अलग हो कर भाईचारगी के रिश्ते में बाँधता है और सिर्फ़ यही वह धर्म है जिस ने अमली तौर पर इस उसूल को अपना कर दिखा भी दिया है। मुसलमान दुनिया में कहीं भी हों वह दूसरे मुसलमानों को अपना भाई समझते हैं ख़ुदा के सामने सारे इंसान एक सा दर्जा (पद) रखते हैं इस का सब से ख़ुबसूरत और रूहपरवर (प्राणवर्धक) प्रदर्शन हज के मौक़ा पर एहराम बाँध कर किया जाता है।

5. इस्लाम ज़िन्दगी में रूह और माद्दे दोनों के महत्व को स्वीकार करता है इंसान की ज़ेहनी व रूहानी परवरिश का गहरा

संबंध उस की शारीरिक ज़रूरतों के साथ जुड़ा हुआ है उसे ज़िन्दगी में ऐसा अंदाज़ इख़्तियार करना चाहिये कि रूह और शरीर अपने अपने दायरों में तरक़्क़ी कर सकें।

6. शराब और दूसरी नशीली चीज़ों से रोकने का काम अपने अन्दर वह महानता रखता है जिस ने इस्लाम को दूसरे धर्मों के मुक़ाबिले में सदियों आगे ला खड़ा किया है।

इब्राहीम कोआन (मलेशिया)

(Ibrahim Kuan)

मैं ने साठ साल की उम्र तक एक प्रोटेसटेन्ट ईसाई की हैसियत से ज़िन्दगी गुज़ारी और उस दौरान तक़रीबन तीन साल तक कुवालालीप्स (मलेशिया) के चर्च में पादरी की ख़िदमात भी अंजाम दीं, मगर आख़िर में इस्लाम की आग़ोश में आ गया। आज मैं ख़ुशी के साथ वह बातें बयान करूँगा जो मेरे इस्लाम कुबूल करने का कारण बनीं।

मैं 3 फ़रवरी 1907 ई० को पैदा हुआ। मेरे माँ बाप बुद्धमत से संबंध रखते थे छः वर्ष की उम्र में मुझे एक चीनी स्कूल में दाख़िल कराया गया जहाँ मैं ने कनफ़ूशस धर्म की एक बुनियादी पुस्तक "चेहार कुतुब" और दूसरी कई पुस्तकें पढ़ीं जिन के ज़ेरे असर मैं कनफ़ूशस मत के एक ख़ुदा के अक़ीदे का क़ायल हो गया।

मेरी उम्र 9 वर्ष की थी जबकि मैं कुवालालमपुर के "विकटोरिया इन्सटीटयूशन" में अंग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त करने लगा। यहीं से मैं ने बाइबल के अहदनामा पुराना और नया का थोड़ा थोड़ा अध्ययन किया और ईसाई धर्म इख़्तियार कर लिया। मेरी उम्र उस समय 16-17 वर्ष के लगभग थी।

सितम्बर 1963 ई० में जब कि मैं कुवालालीप्स के चर्च में

पादरी बन कर जाने ही वाला था। मेरे एक हिन्दुस्तानी दोस्त के-के मुहम्मद ने मुझे कुरआन पाक के अंग्रेज़ी अनुवाद का एक नुस्ख़ा दिया। मैं ने उस का अध्ययन किया और उस के विषयों के हुस्न से बेहद प्रभावित हुआ। अगरचे इस प्रभाव की शिद्दत इतनी ज़्यादा न थी कि मैं इस्लाम कुबूल कर लेता।

कुवालालीम्प्स में ईसाईयत का (प्रचार) करते हुये मुझे यह देख कर बहुत दुख हुआ, और मेरा ज़ेहन यह महसूस कर के झनझना उठा कि प्रोटेसटेन्ट चर्च की कितनी ही शाख़ाएँ हैं और "धार्मिक विश्वास" की बिना पर हर शाख़ा दूसरी से टकराव के लिये त्यार रहती है। आप को यह भी अंदाज़ा होगा कि प्रोटेसटेन्ट और कैथोलिक फ़िरक़ों में दूरी और इख़्तिलाफ़ का क्या आलम है और उन के धार्मिक विश्वास आपस में कितने विभिन्न हैं। इस हालत ने मुझे सख़्त परेशान किया और घबरा कर मैं ने कुरआन का सहारा लिया। जिन आयतों ने मेरी रहनुमाई फ़रमाई यह हैं:–

"उस ने आप पर (ऐ नबी) यह किताब नाज़िल (उतारी) की जो हक़ ले कर आई है और उन किताबों की तसदीक़ (पुष्टि) कर रही है जो पहले से आई हुई थीं इस से पहले वह इंसानों की हिदायत के लिये तौरात और इंजील नाज़िल कर चुका है"। (आल इमरान 3)

"ऐ नबी कह दीजिये कि हम अल्लाह को मानते हैं उस शिक्षा को मानते हैं जो हम पर उतारी गई है उन शिक्षाओं को भी मानते हैं, जो इब्राहीम, इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब और याक़ूब की औलाद पर नाज़िल हुई थीं और उन हिदायात पर भी ईमान रखते हैं जो मूसा और ईसा और दूसरे पैग़म्बरों को उन के रब की तरफ़ से दी गई। हम उन के दर्मियान फ़र्क़ नहीं करते और हम अल्लाह के ताबे फ़रमान (मुस्लिम) हैं।" (आल इमरान 84)

कुरआन के लगातार और गहरे अध्ययन ने मुझे हक़ीक़त के क़रीब कर दिया और ईसाइयत के विश्वास का खोखलापन मुझ

पर ज़ाहिर होता गया। मिसाल के तौर पर तसलीस का विश्वास वह गोर्ख धंदा है जिसे हर ईसाई समझे बग़ैर इख़्तियार करता है कि दुनिया में कोई ऐसी किताब है ही नहीं जिस में इस मुश्किल समस्या का स्पष्टीकरण मौजूद हो। इस के मुक़ाबिले में इस्लाम तौहीद का साफ़ सुथरा और अक़ली व नैयायिक अक़ीदा रखता है यानी अल्लाह तआला की बड़ाई में कोई शरीक नहीं। उस के सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं। ज़ात व सिफ़ात में वह अकेला है और मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम उस के आख़िरी रसूल (औतार) हैं मेरे नज़दीक इस्लाम और ईसाइयत में यही फ़र्क़ का कारण है।

ईसाईयत, और इस्लाम के अध्ययन ने मुझे यकसू (संतुष्ट) कर दिया मैं ने दिल की गहराइयों से इस्लाम कुबूल कर लिया और सच्चे मुसलमान की तरह इस्लामी क़वानीन की पैरवी कुबूल कर ली। इस्लाम ने मुझे यह सिखाया कि मैं ग़रीबों और ज़रूरतमन्दों की ज़रूरियात व मुश्किलात को समझूँ और उन की मदद करने में कोई कोताही न करूँ। मैं अपने आप को बेहद ख़ुशक़िस्मत समझता हूँ, जो कुछ उस ने मुझे इनायत फ़रमाया है मैं उस पर ख़ुश रहूँ और उस के फ़ज़्ल व करम का शुक्रिया अदा करता हूँ, जो वह रात व दिन हम पर नाज़िल करता है। हमें इस पुरआशोब (फ़ितना व फ़साद से भरा हुआ) दौर में सिर्फ़ अल्लाह की मदद की ज़रूरत है। हम उस से सब्र, नर्मदिली, और मुहब्बत की भीक माँगते हैं ताकि एक शान्ति पूर्वक दुनिया बनाई जा सके।

हाँ इस बात का भी इज़हार करता चलूँ कि कुरआन में कितनी ही ऐसी बातें हैं जिन की पुष्टि बाइबल भी करती है। जैसे ख़ुदा का आज्ञापालन, भाईचारगी व बराबरी, मरने के बाद ज़िन्दा होना और आख़िरत पर यक़ीन। इस लिये में समझता हूँ कि सही मानों में हज़रत ईसा पर मैं अब ईमान लाया हूँ उस दौर के

मुक़ाबिले में जब मैं कहने को ईसाई था।

इस्लाम की जिन बातों से मैं प्रभावित हुआ वह यह हैं:-

1. इस्लाम ईसाईयत के मुक़ाबिले में कहीं ज़्यादा अक़ली, अमली, समझने के क़ाबिल, नैयायिक और सादा धर्म है।
2. इस्लामी इबादात अल्लाह से सीधा संबंध जोड़ती हैं।
3. इस्लाम में ख़ुदा का तसव्वुर बड़ा ही बावक़ार और पुरशुकोह है।
4. इस्लामी इबादात में ज़िन्दगी और तकमील (पूर्ति) का एहसास होता है। ईसाई इबादत की तरह अधूरापन नहीं है।

5. कुरआनी शिक्षाओं के मुताबिक़ मुसलमान गुज़िश्ता (गुज़रा हुआ) सारी किताबों को मुक़द्दस (पवित्र) और इलहामी मानते हैं। अगरचे वह तहरीफ़ (किसी लेख में शब्दों का उलट फेर) की नज़र हो चुकी हैं। कुरआन हर प्रकार के परिवर्तन व काट छाट से सुरक्षित है और पहली किताबों और रसूलों की पुष्टि करता है।

इस्माईल जज़ाइरस्की (पोलेन्ड)

(Ismail Wieslaw Jazierski)

मैं 8 जनवरी 1900 ई॰ को पोलेन्ड के शह्र कराकोफ़ में पैदा हुआ। मेरा संबंध पोलेन्ड के एक ऊँचे घराने से है अगरचे मेरे पिता पक्के और सच्चे दहरिये थे मगर बड़े रवादार थे। उन्हों ने अपने बच्चों को रोमन कैथोलिक धर्म की शिक्षा प्राप्त करने पर कोई एतराज़ नहीं किया। असल में यह धर्म हमारी माँ का था और पिता जी उन की इच्छाओं में दख़लअंदाज़ी (बाधा) नहीं करते थे। यूँ भी उन्हें पता था कि यह शिक्षा सिर्फ़ रस्मी और सतही क़िस्म की है और इस का कोई असर इंसान की ज़ाती या इजतिमाई ज़िन्दगी पर नहीं पड़ता, मगर जहाँ तक मेरी ज़ात का संबंध है यही वह समस्या थी जबकि धर्म का एहतराम मेरे ज़ेहन पर नक़्श हो गया और मैं इनफ़िरादी (अकेले) और सामाजिक सतेह पर उस की ज़बरदस्त अहमियत का क़ाइल हो गया।

हमारे घर की दूसरी ख़ुसूसियत उस का बैनल-अक़वामी क़िस्म का माहौल था। मेरे पिता ने अपनी जवानी में यूरोप के बहुत से मुल्कों का सफ़र किया था और वह अपने सफ़र के प्रभाव मज़े ले ले कर बयान करते थे नतीजा यह हुआ कि नसली, क़ौमी और तहज़ीबी पक्षपात मेरे नज़दीक ग़लत हो कर रह गये और मेरी बुद्धि इंसानी सतेह पर सोचने लगी। मैं अपने आप को दुनिया भर

का शहरी समझता था।

मेरे ख़ानदान की तीसरी ख़ूबी यहाँ की बराबरी में छुपी हुई थी। मेरे पिता अगरचे एक अमीर और नवाब घराने से संबंध रखते थे मगर वह इस वर्ग के आम लोगों के विपरीत बेकार वक़्त गंवाने के सख़्त ख़िलाफ़ रहे वह उन लोगों से भी बेज़ार और दूर भागते रहे जो तशद्दुद या मुकम्मल इख़्तियार को मानते हैं वह बड़े वज़अदार थे और सामाजिक रिवायात के ख़िलाफ़ बग़ावत को मुनासिब नहीं समझते थे। बल्कि वह ऐसी तरक़्क़ी की प्रशंसा करते थे जिस की बुनियाद माज़ी की रिवायात पर पायदार हो। ग़र्ज़ वह बराबरी की बेहतरीन मिसाल पेश करते थे। चुनाचे आप को यह सुन कर तअज्जुब न होगा कि जब मैं ने सोचना शुरू किया और आम सामाजिक समस्याओं में दिलचस्पी लेनी शुरू की तो जब भी कोई समाजी, सियासी, माली या तहज़ीबी उलझन पैदा हुई तो मैं ने हमेशा दर्मियानी रास्ता इख़्तियार किया।

मेरी उम्र अभी 16 साल ही की थी कि रोमन कैथोलिक चर्च के मुख़्तलिफ़ तवह्हुमात (संदेह) ने मुझे उस मज़्हब से नफ़रत की हद तक बेज़ार कर दिया। मज़े की बात यह है कि उन तवह्हुमात (संदेह) का प्रचार यक़ीनी और बुनियादी अक़ाइद की हैसियत से किया जाता है मिसाल के तौर पर तसलीस का फ़ारमूला मेरे नज़दीक़ अहमक़ाना था। यह तसव्वुर भी वहशतनाक था कि इशाए रब्बानी में रोटी और शराब हज़रत ईसा के ख़ून और गोश्त में बदल जाते हैं। इसी तरह पादरियों का ख़ुदा और मख़्लूक़ के बीच वास्ता बनना, पोप का गुनाहों से पाक साफ़ होना और पुरअसरार तेलिस्मी नौइयत के लफ़्ज़ों और इशारों की तासीर का तसव्वुर और इसी तरह के दूसरे तवह्हुमात (संदेह) मेरे दिल में बेज़ारी का शदीद एहसास बेदार रखते थे फिर मैं अपने ज़हन को कभी भी मरयम, मुख़्तलिफ़ बुज़ुर्गों, तबर्रुकात,

तसवीरों, मूर्तियों वग़ैरा की परस्तिश (पूजा) पर राज़ी न कर सका। इन सब बेढंगी बातों का नतीजा यह निकला कि मेरा धर्म पर से विश्वास उठ गया और जिन बातों पर मेरा विश्वास था उन से संबंध टूट गया।

दूसरी जंगे अज़ीम शुरू हुई तो मेरे अन्दर एक नई धार्मिक उमंग करवट लेने लगी ख़ुदा ने मेरी आँखें खोल दीं। मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि इंसानियत को किसी ऊँचे व महान असली मक़सद की ज़रूरत है और अगर वह मिसाली असली मक़सद न मिला तो आदम की औलाद पूरे तौर पर तबाही की गहरी खाई में डूब जाएगी। यह हक़ीक़त भी मेरे दिल के आईना पर रोशन हो गई कि सिर्फ़ धर्म ही चाहत के अनुसार ज़िन्दगी देने वाला असल मक़सद दे सकता है लेकिन यह इबरतनाक मंज़र भी नज़रों के सामने था कि मौजूदा ज़माने का इंसान इस धर्म से किसी तरह भी संतुष्ट नहीं हो सकता, जिस की बुनियाद ख़िलाफ़े अक़्ल रस्म व रिवाज और तवह्हुमात (संदेह) पर खड़ी हो। मेरी जानकारी यह थी कि इंसान की रहनुमाई वही धर्म कर सकता है जो ज़ाती और इजतिमाई सतेह पर एक मुकम्मल और ठोस ज़िन्दगी गुज़ारने का क़ानून पेश करता हो।

रूहानी प्यास बहुत बढ़ गई तो मैं ने हक़ को तलाश करने के लिये बहुत से धर्मों का अध्ययन शुरू किया। शुरूआत में मेरे क़रीब क्वाकरिज़्म[1] (UNITARIANISM) यानी तौहीद परस्ती, बुद्ध इज़्म और बहाई इज़्म थे, मगर सच्ची बात है कि उन में से किसी धर्म और नज़रिये ने भी मुझे संतुष्ट न किया।

---

1. QUAKERISM अमरीका की एक समाजी अंजुमन जिसे जार्जफ़ाक्स ने क़ायम किया। उस का मक़सद यह है कि अम्न व अमान की तबलीग़ की जाये और ज़ुबान व लिबास की सादगी पर ज़ोर दिया जाये।

आख़िरकार फ़रवरी 1949 ई० में मैं ने इस्लाम को "दर्याफ़्त" कर लिया एक अंग्रेज़ नौमुस्लिम (जो मुसलमान हो गया हो) इस्माईल क्वालन एयूनज़ का इस्लाम पर लिखा हुआ एक पमफ़लेट मेरे हाथ लग गया। उस के बाद दारूत्तबलीग़ुल-इस्लाम क़ाहिरा की प्रकाशित कुछ पुस्तकें और किताबचे मुझ तक पहुँचे और मैं दिल से इस्लाम को समझने की कोशिश करने लगा। इस्लामी शिक्षाओं ने मेरे दिल की आँखें रोशन कर दीं। उस की शिक्षाएँ मेरे ज़हनी तसव्वुरात से मुकम्मल मेल रखती थीं। मैं ने इस्लाम की सूरत में एक मुकम्मल ज़िन्दगी गुज़ारने का उसूल पा लिया था, जो ज़मीन पर अल्लाह की शहनशाहियत क़ायम करने में ज़ाती और इजतिमाई सतेह पर इंसान की पूरी रहनुमाई करता है और जिस में इतनी लचक भी है कि हर पल बदलते हुये ज़माने के तक़ाज़ों का साथ दे सके। मैं सक़ाफ़त और समाजी उलूम से ख़ुसूसी दिलचस्पी रखता था, चुनाचे मुझे इस्लाम की विभिन्न सामाजिक संस्थाओं ने बहुत प्रभावित किया ख़ास तौर से ज़कात का निज़ाम (नियम), विरासत का निज़ाम, सूद का हराम होना, दूसरे मुल्कों पर नाजाइज़ जंगों की मनाही, हज के मौक़े पर विश्वव्यापी तौर पर लोगों का इकट्ठा होना और तादादे इज़दवाज (बीवियों की संख्या) की इजाज़त ने मुझ पर जादू सा कर दिया। यह सारी ख़ुसूसियात सरमायादाराना तहज़ीब व निज़ाम और कमियूनिज़्म के बीच इंसाफ़, न्याय और बराबरी की बेहतरीन मिसालें थीं फिर इस्लाम विभिन्न रियासतों के बीच पैदा होने वाले झगड़ों का जो अक़ली हल पेश करता है उस का कहीं कोई जवाब नहीं। सारे अहले इस्लाम को नस्ल, ज़ुबान, सक़ाफ़त, रंग और इलाक़े की हदबन्दियों से निकाल कर एक भाईचारगी के रिश्ते में पिरो दिया गया है जहाँ तक शादी और शादीशुदा ज़िन्दगी का संबंध है इस्लाम में उस की बुनियादें बड़ी गहरी हैं।

बह्रहाल मैं ख़ुदाए पाक का शुक्रिया अदा करता हूँ कि उस ने मुझे कुफ़्र व ज़लालत के अंधेरों से निजात दी और इस्लाम के रोशन और सीधे रास्ते पर ला कर खड़ा किया।

लेडी बार्नस (इंगलिस्तान)

इस क़िस्से की रिवायत (किसी की कही हुई बात कहना) अल्लामा इक़बाल ने की है। यह दिल को रोशन करने वाली दासतान अल्लामा मरहूम की फ़रमाइश पर लिखी जाने वाली किताब "इस्लाम ज़िन्दाबाद" में छपी थी और वहीं से नक़्ल की जा रही है।

☆☆☆☆

हकीमुल–उम्मत अल्लामा इक़बाल ने बयान फ़रमायाः–

मिस्टर दाऊद आपसन की तरह लेडी बार्नस का इस्लाम कुबूल करना भी अपने अन्दर अहंकार के कई पहलू रखता है आप एक नौमुस्लिम फ़ौजी अंग्रेज़ की बीवी थीं। चन्द साल का ज़िक्र है यह दोनों मियाँ बीवी एक मुक़द्दमे में फँस कर मेरे पास आये चूँकि इलज़ामात सरासर झूटे थे इस लिये अदालत ने उन्हें बाइज़्ज़त बरी कर दिया। चूँकि वक़ालत के फ़राइज़ मैं ने अंजाम दिये थे इस लिये कुछ दिनों बाद लेडी बार्नस मेरा शुक्रिया अदा करने के लिये लाहौर तशरीफ़ लाई उस वक़्त मैं ने सवाल किया, लेडी साहिबा! आप के इस्लाम कुबूल करने के कारण क्या हैं?।

"मुसलमानों के ईमान की मज़बूती, डॉक्टर साहब" लेडी बार्नस ने जवाब दिया और वज़ाहत में एक वाक़िआ सुनायाः–

"डॉक्टर साहब! मैं ने देखा है कि दुनिया भर में कोई भी

क़ौम ऐसी नहीं है जिस का मुसलमानों की तरह ईमान मज़बूत हो। बस इसी चीज़ ने मुझे इस्लाम कुबूल करने पर राज़ी कर दिया"। लेडी बार्नस ने थोड़ा सा रूक कर फ़रमाया "डॉक्टर साहब! मैं एक होटल की मालिका थी मेरे होटल में एक 70 साला बूढ़ा मुसलमान मुलाज़िम था। उस बूढ़े का बेटा निहायत ही ख़ूबसूरत जवान था। एक वबाई बीमारी में यह लड़का चल बसा तो मुझे बेहद सदमा हुआ। मैं बूढ़े के पास ताज़ियत (किसी की मौत पर पुर्सा करना) के लिये गई, उसे तसल्ली दी और दिली रंज व ग़म का इज़हार किया। बूढ़ा निहायत ग़ैर प्रभावित हालत में मेरी बातें सुनता रहा और जब मैं ख़ामोश हो गई तो उस ने निहायत शाकिराना (शुक्रगुज़ार) अंदाज़ में आसमान की तरफ़ उंगली उठाई और कहा "मेम साहिबा! यह ख़ुदा की तक़दीर है ख़ुदा की अमानत थी, ख़ुदा ले गया इस में ग़मज़दा होने की क्या बात है हमें तो हर हालत में ख़ुदा का शुक्रिया अदा करना चाहिये।

डॉक्टर साहब बूढ़े का आसमान की तरफ़ उंगली उठाना हमेशा के लिये मेरे दिल में जुड़ गया। मैं बार-बार उस के अलफ़ाज़ पर ग़ौर करती थी और हैरान थी कि इलाही इस दुनिया में इस क़िस्म के साबिर, शाकिर और मुतमइन दिल भी मौजूद हैं। यह जानने का शौक़ पैदा हुआ कि बूढ़े ने ऐसा मज़बूत दिल कैसे पाया? इसी ग़र्ज़ से मैं ने पूछा कि क्या मरने वाले के बीवी बच्चे भी हैं वह कहने लगा "एक बीवी है और एक छोटा बच्चा" बूढ़े के इस जवाब ने मेरी हैरत को कम कर दिया। मैं ने उस के दिल के मुतमइन होने का यह नतीजा निकाला कि चूँकि उस का पोता ज़िन्दा है इस वास्ते वह उस की ज़िन्दगी और मुहब्बत का सहारा बना रहेगा।

इस वाक़िआ को ज़्यादा मुद्दत नहीं गुज़री थी कि यतीम बच्चे

की माँ भी चल बसी इस से मेरे दिल को बहुत तकलीफ़ हुई बूढ़े की बहू का ग़म मेरे ज़हन पर छा गया। ताज़ियत (किसी की मौत पर पुर्सा करना) के लिये मैं उस के गाँव रवाना हुई उस वक़्त जज़्बात व ख़यालात की एक दुनिया मेरे साथ थी। सोचती थी इस ताज़ा मुसीबत ने बूढ़े की कमर तोड़ दी होगी वह होश व हवास खो चुका होगा। यतीम बच्चे की कमउम्री उसे निढाल कर रही होगी। मैं इन्हीं ख़यालात में डूबी हुई बूढ़े के घर पहुँची तो वह सिर झुकाये लोगों की भीड़ में बैठा था। मैं ने उस की ताज़ा मुसीबत पर अफ़सोस ज़ाहिर किया और उसे अपनी हमदर्दी का यक़ीन दिलाया। बूढ़ा मेरी हमदर्दाना बातें बड़े सुकून से सुनता रहा, लेकिन उस के जवाब की नौबत आई तो उस ने फिर अपनी उंगली आसमान की तरफ़ उठा दी और कहा "मेम साहिबा! ख़ुदा की मर्ज़ी में कोई इंसान दम नहीं मार सकता उसी की चीज़ थी वही ले गया है हमें हर हाल में उस का शुक्रिया अदा करना चाहिये"।

"डॉक्टर साहब!" लेडी बार्नस ने हैरत के अंदाज़ में कहा "मैं जब तक बूढ़े के पास बैठी रही न उस के सीने से आह निकली, न आँख से आँसू गिरा वह इस तरह इतमीनान की बातें करता था गोया उस ने अपने बेटे और बहू को ज़मीन में दफ़न नहीं किया बल्कि कोई फ़र्ज़ अदा किया है। थोड़ी देर के बाद मैं वापस लौट आई मगर सारे रास्ते बूढ़े के ईमान की मज़बूती पर ग़ौर करती रही। यह ख़याल मुझे तंग करता था और हैरत में भी डालता था कि इस दरजा मुसीबत में किसी इंसान को यह इसतिक़ामत (दृढ़ता) सब्र व शुक्र की नेमत कैसे नसीब हो सकती है।

बदक़िस्मती यह कि कुछ दिन बाद बूढ़े के पोते की भी मृत्यु हो गई इस ख़बर के बाद मैं ने अपने अंदाज़ा लगाने की तमाम क़ाबलियतों को नये सिरे से जमा किया और बेक़रारी के आलम

में उस के पास गाँव पहुँची मुझे यक़ीन था कि अब लावारिस बूढ़ा सब्र व क़रार खो चुका होगा। उस का दिल व दिमाग़ बेकार हो गया होगा और नाउम्मीदी उस की उम्मीद के तमाम रिश्ते तोड़ चुकी होगी मगर यह देख कर ख़ुद मेरे हवास जवाब देने लगे कि बूढ़ा उसी सुकून की हालत में है जिस का तजर्बा मैं दो बार कर चुकी थी। मैं ने निहायत दिलसोज़ी के साथ उस की मुसीबतों पर ग़म का इज़हार किया वह सिर झुकाये मेरी बातें सुनता रहा कभी कभी उस के सीने से आहों की सदा भी आती थी। वह सख़्त ग़मगीन भी था, मगर मेरे ख़ामोश होने पर उस ने पूरे सब्र व तहम्मुल से जवाब दिया। "मेम साहब यह सब ख़ुदा की हिकमत के खेल हैं उस ने जो कुछ दिया था ख़ुद ही वापस ले लिया है। इस में हमारा था ही क्या। फिर हम अपने दिल को बुरा क्यों करें बन्दे को हर हाल में ख़ुदा का शुक्र ही अदा करना चाहिये। हम मुसलमानों को यही हुक्म है कि अल्लाह की मर्ज़ी पर सब्र करें"।

लेडी बार्नस दिल के दर्द की कैफ़ियतों से भरी हुई थी। उस ने अपना दायाँ हाथ उठाया और रुँधी हुई आवाज़ में कहाः डॉक्टर साहब बूढ़े का यह जवाब मेरे लिये क़त्ल का पैग़ाम था उस की उंगली आसमान की तरफ़ उठी हुई थी मगर काँटे बन कर मेरे दिल में उतर गई थी। मैं ने उस बूढ़े शख़्स की ईमान की पुख़्तगी के सामने हमेशा के लिये सिर झुका दिया। मुझे यक़ीन हासिल हो गया कि बूढ़े के दिल का यह इतमीनान बनावटी नहीं हक़ीक़ी है अब वह गाँव में अकेला था। मैं ने उसे अपने साथ चलने की दावत दी उस ने शुक्रिया अदा किया और बेतकल्लुफ़ मेरे साथ होटल में चला आया यहाँ वह दिन भर होटल की ख़िदमत करता था और रात को ख़ुदा की याद में मशग़ूल हो जाता था।

कुछ दिनों के बाद एक दिन बूढ़े ने क़ब्रसतान जाने का इरादा किया तहक़ीक़ (जाँच पड़ताल) का जज़्बा मुझे भी उस के साथ ले

गया मैं देखना चाहती थी कि अब उस के जज़्बात क्या सूरत इख़्तियार करते हैं। क़ब्रसतान में पहुँच कर वह टूटी फूटी क़ब्रों को ठीक करने लगा। वह मिट्टी खोद-खोद कर लाता और क़ब्रों पर डालता। फिर वह पानी ले आया और क़ब्रों पर छिड़कने लगा उस के बाद उस ने वुज़ू किया हाथ उठाये और क़ब्र वालों के हक़ में दुआ कर के वापस चल दिया मैं ने तमाम समय निहायत एहतियात से उस की एक एक हरकत का जायज़ा लिया और महसूस किया कि उस के हर काम में इतमीनान का नूर और ईमान की मज़बूती है मेरे दिल में वह चिंगारी जो एक मुद्दत से आहिस्ता-आहिस्ता सुलग रही थी, यकायक भड़क उठी मुझे यक़ीन हो गया कि यह बूढ़े की ख़ूबी नहीं बल्कि उस दीने हक़ (सत्य धर्म) का कमाल है जिस का यह बूढ़ा मानने वाला है मैं ने उसी वक़्त मुसलमान होने का पक्का फ़ैसला कर लिया और होटल में पहुँच कर उस से कहा कि वह कोई ऐसी मुसलमान औरत बुला लाये जो मुझे इस्लामी शिक्षा दे। बूढ़ा तुरन्त उठा और अपने मुल्ला की लड़की को बुला लाया। उस ने मुझे ख़ुदा और रसूल स० पर ईमान लाने की तरग़ीब दी और ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर-रसूलुल्लाह का सबक़ सिखाया।

"डॉक्टर साहब" लेडी बार्नस ने रूहपरवर (प्राणवर्धक) आवाज़ में कहाः "अब मैं अल्लाह तआला के फ़ज़्ल व करम से मुसलमान हूँ और वही मज़बूत ईमान जिस से बूढ़े का दिल भरा हुआ था अपने सीने में मौजूद पाती हूँ"।

बैगम मौलाना अज़ीज़ गुल

(इंगलिस्तान)

मौलाना अज़ीज़ गुल शैख़ुल-हिन्द मौलाना महमूदुल-हसन के साथ मालटा में क़ैद थे। एक अंग्रेज़ औरत ने मौलाना हुसैन अहमद मदनी के ज़रिये इस्लाम क़ुबूल कर लिया। फिर उन्हीं के मशवरे और ख़्वाहिश से मौलाना अज़ीज़ गुल से शादी कर ली। यह आपबीती उस नेक बख़्त मोमिना की है। मौलाना अज़ीज़ गुल अभी तक ज़िन्दा हैं लेकिन यह औरत अपने मालिके हक़ीक़ी के पास पहुँच चुकी हैं।

☆☆☆☆

मैं अपने बाप चारलस एडवर्ड स्टीफ़ोर्ड स्टेल की सातवीं लड़की हूँ। मैं 1885 ई० में हैदराबाद सिंध में पैदा हुई। मेरे वालिद साहब इंसाफ़ पसन्द और बात के पक्के इंसान थे। उन्हें हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान के लोगों से बड़ा लगाव था। कभी-कभी तो वह खुद को सिंधी कह दिया करते थे। हमारे परिवारिक संबंध और परमपराएँ बड़ी महान थीं मगर हमारे पिता का कहना था कि शराफ़त का मेयार (कसौटी) चरित्र है, न कि ख़ून, बहरहाल मैं छः साल की ही थी कि मुझे शिक्षा के लिये इंगलिस्तान भेज दिया गया मुझे सच्ची बात से हमेशा प्यार रहा। मैं हर बात का कारण

खोजने की कोशिश किया करती थी। मेरे दोस्त व साथी मुझे प्यार से कक्कू कहा करते थे क्यों कि मैं हर बात में क्या क्यों और कैसे जैसे सवाल करने की आदी थी।

मैं एक ईसाई ख़ानदान में पैदा हुई थी मगर ईसाई किसी एक अक़ीदे (विश्वास) में भी सहमत न थे। ईसाईयों के बहुत से फ़िरक़े (वर्ग) थे जो एक दूसरे को जहन्नमी कहते थे। इस लिये ईसाई धर्म मुझे गोरखधन्दा सा लगा। मेरी समझ में नहीं आता था कि हज़रत ईसा ख़ुदा के बेटे कैसे हो सकते हैं मगर मुझे दुआ से बड़ा प्रेम था और मैं अकसर अनदेखे मालिक से लौ लगा कर दुआएँ करती रहती थी। जब मैं बड़ी हो गई तो मैं ने बाइबल को तनक़ीदी नज़र से पढ़ना शुरू किया। मुझे बाइबल के बहुत से बयानात एक दूसरे के विपरीत मालूम हुये मुझे बाइबल के कलामे ख़ुदा होने में शक होने लगा।

कुछ दिनों के बाद मेरी शादी हो गई मगर मेरे शौहर एक दुनियादार ईसाई थे। वह मेरे फ़िक्र व ख़याल के साथी न बन सके। इस लिये मैं ने ख़ाली समय में फ़लसफ़ा का अध्ययन करना शुरू किया मगर उन ख़याली भूल भुलय्यों से मुझे कुछ न मिला।

उन्हीं दिनों मैं अपने पिता के पास हिन्दुस्तान आई। मेरी 12 साल की लड़की और 10 साल का लड़का मेरे साथ थे। यहाँ मुझे वैदान्त[1] पढ़ने का मौक़ा मिला। मुझे उस के पढ़ने से बहुत सुकून मिला। मुझे महसूस हुआ कि वही चीज़ मिल गई जिस की मुझे तलाश थी। वैदान्त के अध्ययन ने मुझे हिन्दू धर्म के क़रीब कर दिया, मैं कुछ दिनों के लिये एक हिन्दू आश्रम में मेहमान बन कर रही और आख़िरकार हिन्दू हो गई। मुझे रामा क्रिषन के वैदान्ती

---

1. वैदान्तः हिन्दुओं के फ़लसफ़े और मज़हबिय्यात का एक नियम, जिस में ख़ुदा पर बहस की गई है।

सिलसिले में शामिल कर लिया गया मगर मुझे यह शिर्क सा महसूस हुआ चुनाचे मेरा यक़ीन हिल गया। मुझे महसूस हुआ कि हक़ीक़त अभी और आगे है।

मैं उसी ज़माने में बीमार हो गई और मुझे इलाज के लिये फ़्रान्स जाना पड़ा। वहाँ मेरे सात आप्रेशन हुये। हर आप्रेशन पर मौत सामने खड़ी नज़र आती थी। मैं चाहती थी कि मैं मौत के लिये तयारी कर लूँ मैं ने सोचा कि दुनिया छोड़ दूँ और आख़िरत की तयारी में लग जाऊँ। इस लिये मैं जब वापस हिन्दुस्तान आई तो मैं ने संन्यास ले लिया। मैं ने 108 उपनशद पढ़े। लेकिन यह क्या ....यहाँ भी बाइबल की तरह के बहुत से फ़र्क़ थे। उन में कौन सी बात हक़ है और कौन सी ग़लत है। यह कैसे मालूम हो, मैं एक बार फिर उलझ गई। मुझे डर हो गया कि इसी ज़ेहनी उलझन में कहीं पागल न हो जाऊँ मुझे यह भी एहसास हुआ कि संन्यास से मेरी रूहानियत नहीं बढ़ रही है बल्कि नफ़सियाती कशमकश में बढ़ोतरी होती जा रही है। उसी ज़माने में हिन्दुस्तान में आपसी सहयोग न करने का आनदोलन चल पड़ा। हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानियों से लड़ पड़े अलमोड़ा भी फ़सादात से बचा न रहा। उस वक़्त मेरे दिल ने कहा कि यह आश्रम में बैठ कर ध्यान ग्यान का वक़्त नहीं है बल्कि बाहर निकल कर ज़ख़्मियों और दुखियों की मदद करने का वक़्त है। मैं ने अपने गुरू जी से यह बात कही मगर उन्हों ने कहा कि हम लोग दुनियादार नहीं हैं। तुम जिन बातों के करने को कह रही हो यह सियासत की बातें हैं हम उन बातों में नहीं पड़ते।

मुझे उन के सोचने के अन्दाज़ पर हैरत हुई मैं उन्हें तो आश्रम छोड़ कर ज़ख़्मियों की मदद पर राज़ी न कर सकी मगर ख़ुद आश्रम से निकल आई, मैं ने ज़ख़्मियों, मरीज़ों और दुखियों की मदद की। उस से दिल को सुकून मिला........ और मैं ने तैय

किया कि रूहानी तरक़्क़ी इंसानियत की ख़िदमत के ज़रिए हासिल हो सकती है। आश्रमों की ज़िन्दगी से नहीं, चुनाचे मैं ने एक आश्रम खोलने का फ़ैसला किया। जिस में नवजवान लड़कों की अख़लाक़ी तर्बियत की जाये। उस आश्रम में मैं ने हिन्दू मुसलमान की क़ैद नहीं रखी। वहाँ एक मुसलमान लड़का दाख़िले के लिये लाया गया। यह लड़का अपने माँ बाप के लिये एक समस्या बन गया था। मैं ने सोचा जब तक मैं मुसलमानों के जीवन व्यवस्था के बारे में मालूमात हासिल न करूँ, मैं इस लड़के की तर्बियत का हक़ अदा न कर सकूँगी। इस नियत से मैं ने क़ुरआन पढ़ना शुरू किया।

अब तक मैं मुसलमानों से डरती थी मैं समझती थी कि मुसलमान एक क़िस्म के "डाकू" होते हैं जो हर क़िस्म का ज़ुल्म कर सकते हैं लेकिन इस किताब ने मेरी आँखें खोल दीं यह तो सरासर हक़ था और दिल में उतरता चला जाता था। यह अमली वैदान्त था। आह! मैं अब तक किन अंधेरों में थी। अफ़सोस कि यूरोपी मुसतशरिकों ने इस्लाम की कितनी ग़लत तसवीर पेश की है वह धर्म जिसे मैं ख़ूँख़्वार भेड़ियों का धर्म समझती थी मुकम्मल सच्चाई का धर्म था। "मेरे अल्लाह मैं अब क्या करूँ मैं ने तो सारी ज़िन्दगी बेकार कर दी" मैं ने सोचा मैं हिन्दू ही रहूँ या हिन्दूमत को छोड़ दूँ। मैं ने फ़क़ीराना ज़िन्दगी इख़्तियार कर ली थी यह एक तरह की मौत थी। क़ुरआन मुझे ज़िन्दगी की तरफ़ बुला रहा था ऐसी ज़िन्दगी की तरफ़ जो आख़िरत की ज़िन्दगी की बुनियाद बनती है मगर मुश्किल यह थी कि मैं एक मुक़द्दस (पवित्र) आश्रम की राहिबा (ईसाई पादरी) थी लोग मुझे प्यार से माँ कहते थे। मैं मुसलमान हो जाऊँगी तो दुनिया क्या कहेगी? मगर मुझे अपनी रूह को चिंता से बचाना था मैं ने लोगों के कहने की परवाह न की, और मैं ने मुसलमान होने का एलान कर दिया।

मेरे गुरू भाई बड़े नाराज़ हुये मगर मैं ने उन्हें ख़ुलूस से बताया कि असल वैदान्त यह है जो अब मैं कुबूल कर रही हूँ। मेरे गुरू भाई ने कहा कि यह काम मुसलमान हुये बग़ैर भी जारी रह सकता है वैदान्ती रह कर भी तुम कुरआन की राह इख़्तियार कर सकती हो यह भी वैदान्त का ही एक सिलसिला होगा लेकिन यह बात मेरे दिल में न उतर सकी मैं समझ रही थी रामा क्रिश्न ने हक़ीक़त का रास्ता नहीं इख़्तियार किया था बल्कि वह ख़ुद उन के ज़ेहन की उपज और एक भरम था। हो सकता है कि किसी नाम के सूफ़ी ने उन्हें यह भरम दिला दिया हो। मेरे हिन्दू दोस्तों ने मुझ से कहा कि मैं अपने आप को मुसलमान न कहूँ तो वह मुझे आगरा में रामा क्रिश्न मिशन का महंत बना देंगे। मगर मुझे दुनियावी लालच न था मुझे रूह के आराम की ज़रूरत थी इस लिये मैं ने उन की बात मानने से इंकार कर दिया।

अब एक और मुश्किल आई मुसलमानों ने मुझे मुसलमान मानने से इंकार कर दिया। वह कहते थे कि यह हमें हिन्दू बनाने के लिये नया रूप धारन कर रही है। मैं ख़ुद शक में पड़ गई मैं कुरआन को अपना सदुपदेशक (हिदायत देने वाला) और सीधी राह दिखाने वाला मान रही थी तो क्या यह बात मुसलमान होने के लिये काफ़ी न थी। अपने दिल की बेक़रारी को दूर करने के लिये मैं देवबन्द गई। मेरी लड़की मेरे साथ थी। हम दोनों बेपर्दा थीं। हम ने मौलाना हुसैन अहमद मदनी से मुलाक़ात की। अपनी बात उन के सामने रखी और पूछा। "क्या हम मुसलमान नहीं हैं?"

"तुम हक़ीक़त में मुसलमान हो!" मौलाना ने एक ज़ोरदार क़हक़हा लगा कर कहा। "तुम्हें इस में शक क्यों है?"

मौलाना हुसैन अहमद साहब की अज़मत (श्रेष्ठता) हम दोनों के दिल में बैठ गई। उन्हों ने हमारी बहुत ख़ातिर की, बाद में वह एक बार मुझ से मिलने मंगलोर भी आये थे। उन्हीं के साथ

मौलवी अज़ीज़ गुल भी थे। मौलाना हुसैन अहमद उन्हें बहुत चाहते थे। ऐसा लगता था जैसे वह दो दोस्त लड़के हों। वह एक दूसरे से मासूम मज़ाक़ करते, एक दूसरे की हंसी उड़ाते और कभी-कभी एक दूसरे को चिड़ाते भी थे। मुझे उन की मुहब्बत पर रश्क महसूस होता।

वह दिन भर हमारे पास रहे। जब वह चलने लगे तो मैं ने मौलाना हुसैन अहमद साहब से कहा कि वह फिर तशरीफ़ लाएँ। उस पर उन्हों ने कहा कि मैं तो ज़्यादा न आ सकूँगा मगर अज़ीज़ गुल कभी-कभी आया करेंगे। चुनाचे मौलवी अज़ीज़ गुल साहब आते रहे। मैं उन से पर्दा और दूसरे मसाइल पर बिला झिझक बात चीत करती रही। शुरू में यह समझती थी कि यह मौलवी लोग बड़े ही तंगनज़र होते हैं मगर बाद में पर्दे की हक़ीक़त मुझ पर खुली तो मैं उन की बातों को मानने लग गई।

यहाँ मैं इस्लाम के अध्ययन में लगी हुई थी कि अचानक मेरे पती का ख़त आया कि अगर मैं तुरन्त इंगलिस्तान न लौटी तो वह मुझे ख़र्च देना बन्द कर देंगे। बच्चों की शिक्षा का ख़र्च मुझ से वुसूल करेंगे और मुझ से संबंध तोड़ लेंगे। इस पर मुझे तअज्जुब हुआ और न अफ़सोस। मैं मुसलमान हो चुकी थी अब मैं किसी ईसाई शौहर की बीवी कैसे रह सकती थी। रही रिज़्क़ की बात तो यह अल्लाह की देन है कम या ज़्यादा मिलेगा ही।

अज़ीज़ गुल साहब को जब यह बात मालूम हुई तो उन्हों ने मेरा हाथ थामने की पेशकश को कुबूल कर लिया मैं जानती थी कि उन के यहाँ ग़रीबी है, पर्दा है मगर मेरे लिये तो यही अल्लाह की पसंदीदा जगह थी। अज़ीज़ गुल के घर मैं ने सीखा की ख़ुद भूके रह कर मेहमानों की आवभगत में क्या लज़्ज़त है। अज़ीज़ गुल के घर में मुझे ज़िन्दगी की हक़ीक़ी राहत मिली। वह निहायत शरीफ़ और दयालू शौहर (पती) साबित हुये।

यूँ भी वह सय्यद हैं और उन्हों ने श्रेष्ठता (बुज़ुर्गी) की लाज रखी है। उन के घर वाले अरब से अफ़ग़ानिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान से हिन्दुस्तान आ गये थे और हक़ के रास्ते की तरफ़ जाने वाली यात्रा में पूरब व पच्छिम के लिये हमारी राह एक थी, हमारी मंज़िल एक थी। हमारी रूहें एक थीं। हम दोनों अल्लाह के प्यारे नबी स० के बताये हुए रास्ते पर चलने का इरादा (संकल्प) ले कर उठे थे मुझे ख़ुशी है कि इस राह में मेरी बेटी, मेरा बेटा और मेरा भाई सब मुझ से हमदर्दी करते रहे। उन्हों ने मुझे हक़ की राह में क़दम बढ़ाने से रोका नहीं। मेरी ज़िन्दगी एक सफ़र है। वह "बरसों की मेहराबों" से गुज़र कर इस्लाम की हसीन वादी में ख़त्म हो रहा है।

(बशुक्रिया "अल-फ़ुरक़ान" लखनऊ व "एशिया" लाहौर)

☆☆☆☆☆

पेकी राडर्क (हिन्दुस्तान)

मैं हिन्दुस्तान में बरतानवी राज के समय एक एंगलो इंडियन ख़ानदान में पैदा हुआ। मैं ने शुरू की शिक्षा एक मिशन स्कूल में हासिल की जहाँ धर्म पर ख़ास तौर पर तवज्जोह दी जाती थी। मैं मसीह अलैहिस्सलाम की ज़िन्दगी से बहुत प्रभावित हुआ मगर शुरू ही में मुझ एहसास होने लगा कि इंजील की शिक्षाएँ इंसानी फ़ितरत और हक़ीक़त के विपरीत हैं चुनाचे अगर हम उन पर अपनी ज़िन्दगी में अमल करें तो इंसानी तहज़ीब का जनाज़ा निकल जाये इस सिलसिले में नीचे की मिसालें पढ़ें और ग़ौर करें।

"अगर कोई मेरे पास आये और अपने बाप और माँ और बीवी बच्चों और भाईयों बहनों बल्कि अपनी जान से भी दुश्मनी न करे तो मेरा शागिर्द (छात्र) नहीं हो सकता"। (लोक़ा 14:26)

"इसी तरह तुम में से जो कोई अपना सब कुछ न छोड़े वह मेरा शागिर्द (छात्र) नहीं हो सकता"। (लोक़ा 14:23)

"क्यों कि कुछ ख़ोजे[1] ऐसे हैं जो माँ के पेट ही से ऐसे पैदा हुये और कुछ ख़ोजे ऐसे हैं जिन को आदमियों ने ख़ोजा बनाया और कुछ ख़ोजे ऐसे हैं जिन्हों ने आसमान की बादशाही के लिये अपने आप को ख़ोजा बनाया जो कुबूल कर सकता है वह कुबूल

---

1. ख़ोजा, ख़्वाजा का मुख़फ़्फ़ (किसी शब्द की छोटी शक्ल) है जिस के माने मालिक, सरदार, और आक़ा के हैं।

करे"। (मता 19:12)

"लेकिन मैं तुम से कहता हूँ कि शरीर का मुक़ाबिला न करो बल्कि जो कोई तेरे दाहने गाल पर तमाचा मारे तो दूसरा भी उस की तरफ़ कर दे और अगर कोई तुझ पर दावा कर के तेरा कुरता लेना चाहे तो चोग़ा भी उसे ले लेने दे और जो कोई तुझे एक कोस बेगार में ले जाये उस के साथ दो कोस चला जा"। (मता 5:39-41)

ज़ाहिर है यह शिक्षाएँ या तो आश्रमों में रहने वाले राहिबों के लिये हो सकती हैं या दुनिया को बिल्कुल भूल जाने वाले सूफ़ियों के लिये, रोज़ाना की ज़िन्दगी से उन का कोई संबंध नहीं हो सकता और न कोई मर्द या औरत अपने मामूलात में उन की उपासना कर सकता है चुनाचे मौजूदा ज़माने में अगर कोई हुकूमत इन "उसूलों" के मुताबिक़ क़ानून बनाये और लोग अपनी ज़िन्दगी में उन पर अमल करें तो हर तरफ़ हलचल पैदा हो जाएगी।

दूसरी चीज़ जिस पर मुझे किसी तरह इतमीनान नहीं होता था। वह ईसाईयत में धर्म और सियासत का अलाहदगी (व्यव कलन) है इसी नज़रिये ने यूरोप में मेकिया वीलेन नुक़तए नज़र (धोंस, धांदली और धोके की सियासत) पैदा किया। बाइबल के मुताबिक़ यसूअ मसीह ने कहा था।

"यह न समझो कि मैं ज़मीन पर सुलह कराने आया हूँ सुलह कराने नहीं बल्कि तलवार चलवाने आया हूँ"। (मता 10:23)

चुनाचे उस ने अपने छात्रों को हिदायत (सदुपदेश) की

"जिस के पास तलवार न हो वह अपना वस्त्र बेच कर तलवार ख़रीदे। (लोक़ा 22:36)

मगर ख़राबी यह हुई कि ईसाईयों को तलवार का जाइज़ इस्तेमाल न सिखाया गया। नतीजा यह हुआ कि हज़रत मसीह की

उपासना करने वालों के हाथ में हमेशा ही तलवार नज़र आती है, यही तलवार थी जिस का सलेबी जंगों में बार-बार इस्तेमाल किया गया और ग़ैर मसीही इलाक़ों में बेगुनाह इंसानों को बेरहमी से मौत के घाट उतारा गया। यहाँ तक कि एक मसीही फ़िरक़े ने दूसरे मसीही फ़िरक़े का बिला झिझक क़त्ले आम किया फिर सामराजी ताक़तों ने भी चर्च के पवित्र आशिरवाद के साथ तलवार उठाई और एशिया और अफ़रीक़ा में क़त्ल व ग़ारतगरी और अपहरण की हद कर दी यहाँ तक कि न्यूज़ीलैन्ड, आस्ट्रेलिया और उत्तरी अमरीका के पुराने निवासियों को बिल्कुल ही ख़त्म कर दिया।

मेरी ज़िन्दगी में फ़ैसला करने का मोड़ उस वक़्त आया जब 1945 ई० में अमरीकियों ने जापान के शह्र हीरोशीमा और नागासाकी पर ऐटम बम गिराये। लाखों की तादाद में मर्द औरतें और बच्चे मौत के घाट उतर गये। जबकि बहुत सी तादाद ऐसे लोगों की थी जो मौत के मुँह से बच गये थे मगर ऐसी तकलीफ़ों और सज़ाओं में फंस कर रह गये थे जिन का तसव्वुर भी नहीं किया जा सकता था। मेरा दिल डर से भर गया और इस घटना के बाद मैं कई रातों तक इतमीनान की नींन्द न सो सका फिर जब मैं ने पढ़ा कि अमरीकी फ़ौजों ने जापान में क्या कोहराम मचाया है तो मुझे सख़्त नफ़रत के एहसास ने घेर लिया और उस वक़्त तो मेरे जज़बात में आग लग गई जब मैं ने सुना कि जनरल मेकार्थर की निगरानी में ईसाई पादरियों के ग़ोल जापानी जज़ीरों में उतर आये हैं ताकि मक़ामी निवासियों के ज़मीर (अन्तरात्मा) ख़रीद कर उन्हें ईसाई बनाएँ और उन से जासूसी का काम ले सकें। सामराजी ताक़तों की हमेशा से यही चाल रही है वह लालच दे कर मक़ामी लोगों में से एक गिरोह को ईसाई बनाते हैं और फिर यह गिरोह अपनी क़ौम से ग़द्दारी कर के सफ़ेद फ़ाम आक़ाओं की ग़ुलामी करता है।

जब मैं कालेज में पढ़ता था तो तरह तरह के अक़ीदों के मर्दों और औरतों से मेरा परिचय था। मुझे यह बताया गया था कि तमाम ग़ैर ईसाई लोग काफ़िर और गुमराह हैं मगर मैं उन लोगों के क़रीब आया और ग़ौर से उन के रहन सहन और ख़यालात का अध्ययन किया तो इस नतीजे पर पहुँचा कि यह काफ़िर लोग और ग़लत मज़ाहिब ईसाइयों और ईसाईयत के मुक़ाबिले में कहीं ज़्यादा रवादारी, मुरव्वत और इंसानियत के एहतराम के क़ाइल हैं मेरे दिल में उन धर्मों के लिये ख़ुशगवार जज़्बात पैदा होने लगे। ख़ासतौर से एक मुसलमान मेरा गहरा दोस्त था। उस ने मुझे अपने अक़ीदे के बारे में ज़रूरी तफ़सीलात बताईं तो मैं ने बहुत जल्द यह नतीजा निकाल लिया कि ईसाईयत के मुक़ाबिले में इस्लाम एक ऐसा धर्म है जो इंसानी फ़ितरत और अक़्ल को मुतमईन करता है ख़ास तौर पर इस्लाम में तौहीद का मसला तसलीस की निसबत अक़्ल व शुऊर को वाक़ई अपील करता है फिर इस्लाम तमाम बड़े-बड़े धर्मों का संबंध वह्‌ी और इलहाम (ख़ुदा की तरफ़ से दिल में आई हुई बात) के ज़रिए ख़ुदा से जोड़ता है और यह बिल्कुल अक़्ली बात नज़र आती है मगर ईसाई हर दूसरे मज़हब को कुफ़्र से जोड़ते हैं। इस्लाम की अख़लाक़ी शिक्षाएँ मिसाली हैं जिन को अपना कर एक इंसान भरपूर क़िस्म की दुनियावी ज़िन्दगी गुज़ारने के बावजूद अल्लाह के क़रीब भी हो सकता है यहाँ मज़हब और सियासत में कोई फ़र्क़ नहीं।

इस्लाम का जिहाद का नज़रिया औरतों, बच्चों, बूढ़ों और निहत्तों की हिफ़ाज़त करता है। यहाँ अस्पतालों, स्कूलों, इबादतगाहों और मकानों पर बमबारी की कहीं गुंजाइश नहीं। इस्लाम सिर्फ़ इंसान को इंसान की ग़ुलामी से निजात देने के लिये लड़ता है या फिर उस वक़्त तलवार उठाता है जब धर्म के प्रचार के रास्ते में रूकावटें खड़ी की जाएँ या दुश्मन ख़ूँख़्वारी पर उतर आएँ। मगर

यहाँ किसी ग़ैर मुस्लिम को इस्लाम कुबूल करने पर मजबूर नहीं किया जाता न ही वह किसी मज़लूम व बेसहारा अवाम पर अत्याचार को बरदाश्त करता है। मुसलमान हर वक़्त जंगबन्दी और सुलह पर तयार रहता है ख़्वाह दुश्मन इस बहाने उन्हें धोका ही क्यों न दे रहा हो। इस्लाम अम्न व दोस्ती का धर्म है। इस्लाम में सब से बड़ी नेकी यह है कि ख़ुदा की मख़लूक़ (मानवजाति) की सेवा की जाये और उन की परेशानियों को दूर किया जाये चुनाचे एक बार नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से पूछा गया कि कौन सा काम सब से अच्छा है तो आप स० ने फ़रमाया। "किसी इंसान का दिल ख़ुश कर देना, भूके को खाना खिलाना, मज़लूम के साथ न्याय करना, किसी परेशानहाल का दुख बाँट लेना और किसी ज़ख़्मी का इलाज कर देना"।

मैं इस्लाम के भाईचारगी के नज़रिये से बेहद प्रभावित हुआ हूँ जो रंग, नस्ल और क़बीले के इम्तियाज़ से बुलंद हो कर सब को अपनी आग़ोश में ले लेता है इस्लाम में सब लोग बराबर हैं और बराबरी का यह अमल विश्वव्यापी है इस्लाम ने अमली तौर पर इंसानों के बीच पैदा होने वाली दूरी और खाइयों को पाट दिया है और सही तौर पर हर क़िस्म के इंसानों को ख़ुदा का क़बीला बना दिया है जैसा कि पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया। अल्लाह की सारी मख़लूक़ात (मानवजाति) उस का कुंबा (ख़ानदान) हैं और ख़ुदा को वही सब से ज़्यादा महबूब है जो उस के कुंबे के साथ भलाई से पेश आता है।

(यह तफ़सीलात अंग्रेज़ी 15 रोज़ा "यक़ीन" 22 नवम्बर 1968 ई० से तरजुमा (अनुवाद) की गई हैं)

★★★★★

राजकुमारी जावेद बानो बैगम

(हिन्दुस्तानी)

कलकत्ता की प्रसिद्ध श्रीमति जावेद बानो बैगम बंगाल के एक हिन्दू राजा की पुत्री थी और उच्च शिक्षा प्राप्त की थी उन्हों ने पूरी तहक़ीक़ (रिसर्च) के बाद इस्लाम कुबूल किया और इस सिलसिले में बहुत सी तकलीफ़ें बरदाश्त की। नीचे लिखी हुई तक़रीर (भाषण) उन्हों ने इस्लाम कुबूल करने के बाद कलकत्ता के एक जलसे (समारोह) में की।

☆☆☆☆

इस्लामी भाईयो धार्मिक साथियो! मैं एक नई मुसलमान औरत हूँ और मैं एक सच्चे और विश्वव्यापी धर्म इस्लाम को पाकर बहुत ही ख़ुश हुई हूँ। मेरा दिल हक़ीक़ी ख़ुशी से भरा हुआ है और मेरी दिली आरज़ू है कि मैं हर इंसान से जिस तक मेरी पहुँच हो, अपने आक़ा-ए-नामदार मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के बुलंद अख़लाक़ और शिक्षा का ज़िक्र करूँ।

शायद आप मेरे तजर्बात का मुख़तसर ख़ुलासा जो मुझे धार्मिक रिसर्च के सिलसिले में पेश आये सुन कर ख़ुश होंगे मैं हिन्दू माँ बाप के घर पैदा हुई मगर हमारी परवरिश ईसाई असर के तहेत हुई। हिन्दू धर्म से बिल्कुल परिचित न थी।

मैं ने 1924 ई० में धर्म और फ़लसफ़ा का बहुत ज़्यादा अध्ययन शुरू किया मैं उन का अध्ययन आलिम फ़ाज़िल बनने के लिये न करती थी, बल्कि मैं हक़ की तहक़ीक़ करना चाहती थी मेरे दिल में ख़ुदा तआला के एक मुख़लिस और सच्चे बन्दे की तरह इबादत करने की तड़प पैदा हुई थी। मैं ने बुद्ध मज़हब को समझने की कोशिश की, लेकिन नाकामी का सामना हुआ। ईसाईयत की तरफ़ जो समझने में निहायत सीधी साधी मालूम हुई इस की तरफ़ बढ़ी। इस सिलसिले में मैं ने ईसाई पादरियों से संबंध पैदा किया मगर मुझे कोई ऐसा रास्ता न मिला जिस से मैं मौजूदा ज़माने में ईसाईयत की एक मुख़लिस और सच्ची उपासना करने वाली बन सकूँ अगरचे बड़े बड़े दलाइल और सुबूत पेश किये जाते थे लेकिन मैं ईसाई गिरजों की लातादाद फ़िरक़ाबंदियों में ज़ाती मतलब और अपने ही फ़ायदे के सिवा और कुछ न देख सकी और बिल्कुल निराश हो कर हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया। लेकिन यहाँ भी मुझे वह सुकून न मिल सका जिस की मुझे तलाश थी।

ऊपर ज़िक्र की गई हक़ीक़तों से आप अंदाज़ा कर सकते हैं कि मुझे सच्चे धर्म इस्लाम को कुबूल करने में कितनी ख़ुशी हुई होगी! इस्लाम के अलावा और कोई धर्म दुनिया में ऐसा नहीं जिस के अक़ाइद को उस के उपासना करने वाले ईमानदारी के साथ सही मानते हों। आख़िरकार मैं ने सच्चाई को पा लिया मैं बहुत ही ख़ुश हूँ और मेरी रूह मुतमइन है क्या हम आज किसी धार्मिक संस्कृति सुधार को नहीं चाहते जिस की ताईद क़ुरआन पाक से नहीं हो सकती? क्या हमारे आक़ा-ए-नामदार मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम तमाम रूहानी रहनुमाओं में एक ऐसी शख़सियत नहीं जिन्हों ने आज़ादी, भाईचारगी और बराबरी जैसे अहवाल बताये हैं जिन के ज़रिये हम सीधे रास्ते पर चल कर निजात (मुक्ति) हासिल कर सकते हैं। सिर्फ़ इस्लाम ही दुनिया में एक

ऐसा धर्म है जो रोज़ाना की ज़िन्दगी में हमारा सच्चा रहनुमा हो सकता है क्या दुनिया में इस्लाम के अलावा ऐसा कोई धर्म है जिस में ख़ुदा का नाम विश्वव्यापी ज़ुबान में हो। अल्लाह का लफ़्ज़ तमाम मुसलमानों के लिये चाहे वह चीनी हों या हिन्दी एक है। अस्सलामु अलैकुम तमाम मुसलमानों को भाई-भाई होने का सबक़ देता है चाहे वह किसी क़ौमियत और किसी मुल्क के हों और उन की कोई ज़ुबान हो।

क्या दुनिया में किसी धर्म की इलहामी किताब अपनी कुशादा दिली और दानशीलता पर गर्व कर सकती है सिवाए हमारे कुरआन करीम के जिस में हर एक मुसलमान को कहा गया है कि उन के लिये तमाम पैग़म्बरों पर ईमान लाना ज़रूरी है।

सिर्फ़ इस्लाम ही इंसाफ़ व इंसानियत और आज़ादी का धर्म है जिस की मिसाल और कोई धर्म पेश नहीं कर सकता, हमें इस्लामी उसूलों के तहेत जायदाद पर क़ब्ज़ा जमाने के लिये कौनसिल व क़ानून के दरवाज़े खटखटाने की ज़रूरत नहीं वह तमाम क़वानीन जो अब से 1300 साल पहले हम मुसलमानों के लिये उतारे गये थे। आज कल दुनिया के धर्म जिस मक़सद को अपना मक़सद बना कर अख़लाक़ी और संस्कृति, समाजी फ़ायदों के लिये कोशिश कर रहे हैं वह तमाम फ़ायदे मुसलमानों के लिये जिस दिन से कुरआन मजीद नाज़िल हुआ मौजूद हैं।

मैं ने इस सूरतेहाल को महसूस किया और उस पर ग़ौर किया तो मेरे लिये इस्लाम कुबूल करना ज़रूरी हो गया। क्यों कि मैं ने उस में तमाम सच्चाइयाँ देख लीं। इस्लाम में वह हर एक बात पाई जाती है जिस को दूसरे तमाम धर्म की उपासना करने वाले तलाश कर रहे हैं इस्लाम में वह सब कुछ मौजूद है जो कुछ वह करना चाहते हैं। मैं पूरे यक़ीन के साथ कहती हूँ कि कोई दूसरा धर्म सुधार और ख़ुशी का सबब नहीं हो सकता सिवाए

इस्लाम के जो ख़ुदा की सच्ची मुहब्बत, इंसानियत की सच्ची उलफ़त और हक़्क़ानियत पर निर्धारित है। इस्लाम को किसी प्रकार के सुधार की ज़रूरत नहीं। इस्लाम के बुनियादी उसूले वहदानियत, (ख़ुदा का एक होना) हक़्क़ानियत (सच्चाई) और भाईचारगी व बराबरी बहुत ज़्यादा प्रभावित और लाभदायक हैं।

सर जलालुद्दीन लाडर ब्रनटन

(इंगलिस्तान)

(Sir Jalaluddin Lauder Brunton)

सर जलालुद्दीन लाडर ब्रनटन आक्सफ़ोर्ड यूनीवर्सिटी के फ़ारिग़ थे वह इंगलिस्तान के एक ऊँचे जागीरदार घराने से संबंध रखते थे और ज़बरदस्त इज़्ज़त व शोहरत रखते थे।

☆☆☆☆

इस्लाम कुबूल करने के कारण बयान करते हुये मैं अल्लाह तआला का बहुत ज़्यादा शुक्र अदा करता हूँ आज मेरा दिल ख़ुशी व प्रसन्नता के ऐसे जज़्बात से भरपूर है जिन्हें बयान करना मेरे लिये मुश्किल है।

मेरे माँ बाप ईसाई थे वह मुझे शुरू ही से पादरी बनाना चाहते थे। चुनाचे मैं ने ईसाईयत की बाक़ायदा शिक्षा हासिल की और फ़ारिग़ होने के बाद चर्च आफ़ इंगलैन्ड से जुड़ गया लेकिन सच्ची बात यह है कि उस काम में मैं कभी गहरी दिलचस्पी न ले सका कुछ वक़्त गुज़रने के बाद मुझे जिस अक़ीदे ने सख़्त परेशान करना शुरू किया वह इंसान के शुरू से पापी होने का अक़ीदा था। फिर उस पर यह तसव्वुर कि गिने चुने कुछ लोगों के अलावा बाक़ी सारी मख़लूक़ हमेशा के अज़ाब से दोचार होगी।

यह विचार इतने नापसंदीदा थे और मुझे उन से इतनी घिन आती थी कि कुछ दिन गुज़रने के बाद मैं तक़रीबन बेधर्म हो गया। धर्म का सारा ढाँचा मेरी नज़रों में मशकूक (शक वाला) हो गया था। मैं अकसर सोचता कि इंसान ख़ुदा का शाहकार (बड़ा कारनामा) है यह सारी मानवजाति से महान है फिर इसे शुरू से पापी क़रार देना और हमेशा के अज़ाब का योग्य ठहराना कहाँ की बुद्धिमानी है यह तसव्वुर तो सीधा संसार बनाने वाले पर अपराध की हैसियत रखता है और इस आईने में तो इस की तसवीर कुछ ऐसी पसंदीदा नहीं है मैं अगरचे अब भी वहमी (फ़र्ज़ी) अंदाज़ में ख़ुदा पर यक़ीन रखता था, मगर ईसाईयत के हवाले से ख़ुदा की बातें मेरी समझ में नहीं आती थीं हक़ीक़त की तह तक पहुँचने के लिये मैं ने दूसरे धर्मों का अध्ययन शुरू किया।

इस्लाम के अध्ययन की शुरूआत ही से यह राज़ मुझ पर खुल गया कि यह धर्म इंसानी फ़ितरत के क़रीब है शुकूक व शुबहात की गाँठें खुलती चली गई और मेरे अंदर सच्चे ख़ुदा की इबादत और ख़िदमत का जज़बा पैदा होने लगा। मैं ने देखा कि ईसाईयत के सारे अक़ाइद की बुनियाद बाइबल की तालीमात पर निर्धारित बताई जाती है मगर उन में तो ज़बरदस्त फ़र्क़ पाया जाता है क्या उस का मतलब यह है कि बाइबल और हज़रत ईसा की तालीमात तहरीफ़ (उलट फेर) का शिकार हो चुकी हैं? इस सवाल का जवाब पाने के लिये मैं ने बाइबल का गहरा अध्ययन जारी रखा और इस नतीजे पर पहुँचा कि वाक़ई यह किताब उलट फेर और घटाव बढ़ाव से महफ़ूज़ नहीं है और इस में बहुत से लोगों के अपने बनाये हुये अक़ाइद रास्ता पा गये हैं।

इस्लाम के अध्ययन ने मुझे बताया कि इंसान में "रूह" नाम की एक न देखी जाने वाली कुव्वत होती है जो कभी नहीं मरती। गुनाहों की सज़ा इस दुनिया में भी मिलती है और आख़िरत में

भी और अगर इंसान ख़ुलूस दिल से तौबा करे तो अल्लाह तआला अपनी सारी कृपा के साथ गुनाहों को माफ़ करने के लिये हर वक़्त तयार रहता है।

अब मैं ने अपना तमाम समय सिर्फ़ इस्लाम के अध्ययन के लिये समर्पण कर दिया और उस ने मुझे निराश नहीं किया। हक़ को तलाश करने के लिये मैं ने जो अध्ययन और ग़ौर व फ़िक्र किया वह बेकार नहीं गया और मैं ने अपने अन्दर उस धर्म के लिये बेपनाह कशिश महसूस की यही कशिश मुझे बर्रेसग़ीर के एक शहूर लाहौर में ले गई। यहाँ मैं एक नवाही बस्ती उछरा में ठहरा जहाँ की ज़्यादातर आबादी इस्लाम के मानने वालों की थी। मेरे रात और दिन उन्हीं लोगों के बीच गुज़रते थे जो मेहनती और सादादिल थे और ग़रीबी के बावजूद सब्र करने वाले और जितना मिल गया उसी पर ख़ुश रहने वाले थे। मैं ने उन से इस्लाम का अमली सबक़ लिया। दीनदारी और भाईचारे का एहसास यहाँ के सारे माहौल पर हावी था। मैं ने उन लोगों के साथ बज़ाते ख़ुद ख़ून पसीना एक किया और एक लम्बे समय तक उन के साथ रह कर उन की आदात और अक़ाइद का ग़ौर से मुशाहिदा किया।

अब तक मैं इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की ज़िन्दगी के बारे में कुछ नहीं जानता था। मुझे मालूम था कि ईसाई रसूले अरबी के सख़्त मुख़ालिफ़ और आप के अन्दर कमियाँ निकालने वाले हैं बहरहाल मैं ने उस तरफ़ तवज्जोह की और मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की ज़िन्दगी का अध्ययन शुरू किया और बहुत जल्द महसूस कर लिया कि आप हक़ व सच्चाई का रोशन मीनार हैं और ख़ुदा तक आप की पूरी तरह से पहुँच है मैं ने देखा कि इंसानियत पर उस महान इंसान के इतने एहसानात हैं कि उन के ख़िलाफ़ कीना व कपट का इज़हार करना

बहुत बड़ा ज़ुल्म (अत्याचार) है वह लोग जो वहशी थे, बुतों की पूजा करते थे, जुर्म व गुनाह और बेहयाई में सिर से पैर तक डूबे हुये थे। आप ने उन को इज़्ज़ते नफ़्स, वक़ार, इंसानियत का एहतराम और पाकीज़गी का सबक़ दिया और उन सारी ख़ूबियों के साथ एक ख़ुदा के सामने ला खड़ा किया। बुलंद इंसानी क़द्रों ने तरक़्क़ी पाई। शराबनोशी का ख़ात्मा हो गया और इस्लामी समाज पाकीज़गी और पवित्रता की उस सतेह तक पहुँच गया कि इतिहास में उस की कहीं कोई मिसाल नहीं मिलती। मैं ने सोचा इन बेमिसाल कारनामों के अलावा इस्लाम के पैग़म्बर की अपनी ज़ात जिस क़द्र बेऐब और पाक थी उस की मौजूदगी में उन पर ईसाईयों की ख़ुर्दागीरी (दोश ढूँढना) बहुत बुरी बदबख़ती और सियाह दिली के अलावा कुछ नहीं ईसाईयत के ख़िलाफ़ मेरी बग़ावत आहिस्ता-आहिस्ता तेज़ होती जा रही थी और मैं अकसर ग़ौर व फ़िक्र की हालत में रहता कि एक दिन एक मुसलमान मियाँ अमीरूद्दीन से मेरी मुलाक़ात हुई। इस्लाम के विषय पर उन से बातें हुई। मैं ने बहुत से सवाल कर डाले और मियाँ साहब ने हर बात का जंचे तुले अंदाज़ में जवाब दिया। मुझे पूरा इतमीनान और यकसूई हासिल हो गई। मियाँ अमीरूद्दीन ने मेरी चिंगारी को शोले में बदल दिया और जब मुझे यक़ीन हो गया कि इस्लाम ही हक़ का धर्म और मुकम्मल ज़िन्दगी गुज़ारने का क़ानून है तो मैं ने एक दिन इस्लाम क़ुबूल करने का फ़ैसला कर लिया। और अलहमदु-लिल्लाह अब मैं मुसलमान हूँ और इस्लाम की रूहानी नेमतों से मालामाल हूँ। मैं ने पक्का इरादा कर लिया है कि इन नेमतों से दूसरी इंसानियत (मानवता) को भी फ़ायदा कराऊँगा। (इंशाअल्लाह)

☆☆☆☆☆

डॉक्टर हमीद मारकोस (जर्मनी)

Dr. Hamid Marcus

डॉक्टर हमीद मारकोस एक साइंसदाँ, ग्रंथकार और पत्रकार की हैसियत से जर्मनी में काफ़ी चर्चा व इज़्ज़त रखते हैं आप मशहूर जरमन रिसाला "मुस्लिम रीविव" के एडीटर भी थे।

★★★★

यह मैं नहीं जानता कि क्यों, मगर बचपन ही से मेरे अन्दर इस्लाम को समझने की लगन मौजूद थी। चुनाचे दूसरे लिटरेचरों के अलावा मैं ने होश संभालने पर कुरआन का ध्यानपूर्वक अध्ययन शुरू किया कुरआन की यह जिल्द 1750 ई० में छपी थी और हमारे ख़ानदानी क़सबे की लाइब्रेरी में मौजूद थी यह वही नुस्ख़ा था जिस से जर्मनी के प्रसिद्ध विचारक गोयटे ने इस्लाम के बारे में मालूमात हासिल की थीं।

मैं यह देख कर दंग रह गया और ख़ुशी के गहरे एहसास से परिचित हुआ कि कुरआन के हवाले से इस्लाम की अपरोच सरासर न्याय शास्त्र और सुबूत पर निर्धारित है फिर इस्लामी शिक्षाएँ अपने मिज़ाज के एतबार से प्राकृतिक भी हैं और हैरतअंगेज़ हद तक आतंकित करने वाली भी। मैं इस बात से भी बेहद प्रभावित हुआ कि इस्लाम ने अपने मानने वालों में ज़बरदस्त

रूहानी व समाजी इंक़लाब पैदा किया जिस का सिलसिला मुसलमानों की कोताहियों के बावजूद अब तक चला आ रहा है।

यह मेरी ख़ुशनसीबी है कि उन्हीं दिनों मुझे जर्मनी में मुसलमानों के साथ रहने और काम करने का मौक़ा मिला और उन के आदात व तौर तरीकों से काफ़ी प्रभावित हुआ। साथ ही में ब्रिलन मस्जिद के संस्थापक और जरमन मुस्लिम मिशन के प्रवर्तक से परिचित हुआ और कुरआन पर उन के तफ़सीरी दर्स में शरीक होने लगा। मैं कुबूल करता हूँ कि कई वर्षो तक मैं ने उस ग़ैर मामूली इंसान का क़रीब से अध्ययन किया उन की रूहानी पवित्रता और शारीरिक मेहनत व मशक़्क़त ने मेरे दिल की दुनिया बदल कर रख दी और मैं ने उन्हीं के हाथ पर इस्लाम कुबूल कर लिया।

इस्लाम कुबूल करने और अपने नये धर्म का गहरा अध्ययन करने के बाद जिस बात ने मुझे ख़ुशी और हैरत से दोचार किया वह यह है कि इंसान के बारे में ग़ौर व फ़िक्र के बाद जिन ख़यालात तक पहुँचा था इस्लाम ने उन की ख़ूबसूरत तरीक़े से पुर्ती कर दी मुझे इस हक़ीक़त ने भी रूहानी खुशियों से नवाज़ा कि इस्लाम में ख़ुदा पर ईमान बुनियाद की हैसियत रखता है और उस ने ऐसा कोई दावा नहीं किया जिसे नई साइंस झुटलाने की हिम्मत कर सकी हो, चुनाचे इस्लामी अक़ाइद और साइंस के माडर्न दृष्टिकोण में कोई टकराव नहीं है यह सूरतेहाल मुझ जैसे एक ऐसे शख़्स के लिये ख़त्म न होने वाली नेमत की हैसियत रखती है जो बुनियादी तौर पर साइंसदाँ हो और साइंसी तहक़ीक़ात का शैदा (मुग्ध, आशिक़) मौजूदा ज़माने के एक इंसान के लिये इस्लाम का यह पहलू भी ज़बरदस्त फ़ायदेमंद है कि यह धर्म समाजी ज़िन्दगी की हद तक ख़ुश्क और बेलचक रवय्या नहीं रखता न यह ज़िन्दगी के साथ दौड़ने का क़ाइल है बल्कि ऐसे

प्राकृतिक और ऐसी व्यवस्था का प्रचार करता है जो पूरी ज़िन्दगी को प्रभावित करता है। इस्लामी नियम इंसान की जाइज़ आज़ादियों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाते बल्कि इस तरह के रहनुमा उसूल देते हैं जो इंसानी इज़्ज़त व शराफ़त और एहतिराम में बढ़ोतरी करते हैं।

बरसों से मैं इस हक़ीक़त को देखता चला आ रहा हूँ कि इस्लाम समता व बराबरी का हसीन मिलान है यह व्यक्ति की ज़ात की सुरक्षा और एहतिराम भी करता है और समाज के इजतिमाई तक़ाज़ों से भी आँखें बन्द नहीं करता। यहाँ धार्मिक या जातीय पक्षपात का कहीं गुज़र नहीं और रवादारी की वह शान है कि अच्छी बात जहाँ से भी मिले उसे क़ुबूल करने की खुली इजाज़त दी गई है।

ख़ालिद लतीफ़ गाबा (हिन्दुस्तान)

ख़ालिद लतीफ़ गाबा का ख़ानदानी नाम कनहय्या लाल गाबा था। वह ज़िला मुज़फ़्फ़र गढ़ के क़स्बे लय्या में पैदा हुये। उन के पिता का नाम लाला हर क्रिषन लाल था।

ख़ालिद लतीफ़ गाबा ने इस्लाम कुबूल करने के बाद लाहौर की बादशाही मस्जिद में बहुत बड़े समारोह में यह तक़रीर की थी। इस समारोह में अल्लामा इक़बाल भी मौजूद थे।

☆☆☆☆

बुज़ुर्ग व महान ख़ुदा का लाख-लाख शुक्र है कि उस ने अपने लाखों गुमराह बन्दों में से मुझे चुना और सीधे रास्ते की हिदायत दे कर दूसरों के लिये मिसाल बनाया ताकि सब लोग यह जान लें कि सच्चाई का सीधा रास्ता इस्लाम के सिवा और कोई नहीं।

हज़रात! जब इंसान पैदा होता है तो कई दर्जों में से गुज़र कर मुकम्मल होता है पहले दर्जे में उस के होंटों पर मुसकुराहट खेल रही होती है। वह छू सकता है, सूँघ सकता है, देख सकता है उस के पाँचों हवास क़ायम होते हैं। तमाम प्राकृतिक ख़ूबियाँ मौजूद होती हैं मगर अभी अक़्ल व बुद्धी नहीं पाता, वह कुछ मुद्दत के लिये हर चीज़ को हैरानी से देख सकता है। विभिन्न चीज़ों में तमीज़ नहीं कर सकता, फिर आहिस्ता आहिस्ता माँ बाप को पहचानने लगता है। चीज़ों की शक्ल व सूरत जानने लगता है

और ज़िन्दगी के जादू से प्रभावित होने लगता है और इस तरह क़दम-क़दम चल कर अपनी जिस्मानी ज़िन्दगी को मुकम्मल कर लेता है।

इस्लाम कुबूल करने की बातें सुनाते हुए वह कहते हैं कि मैं उन दिनों मिस्र में था। इस्लामी संस्कृति और सभ्यता ने मेरे दिल में एक न मिटने वाला असर डाला। मैं इस्लामी समाज की सादगी, एहतिराम, आपस में कृपा और मुहब्बत, इंसानियत का एहतिराम और बराबरी के एक ख़ास अंदाज़ से बहुत ज़्यादा प्रभावित हुआ। यह चिंगारी आहिस्ता-आहिस्ता सुलगती रही और आख़िर इस आग ने मेरे दिल के ख़सो ख़ाशाक को जला कर रख दिया और आज अल्लाह के फ़ज़्ल से मेरा दिल व दिमाग़ इस्लाम की सच्चाई से रोशन है। मिस्र से वापस आने के बाद जब कभी मैं किसी मस्जिद के क़रीब से गुज़रा हूँ, मेरा सिर हमेशा उस की अज़मत व बड़ाई के आगे झुक गया है। मुझे यूँ महसूस होता था कि मस्जिद के मीनार मुझे उंगलियों के इशारे से अपनी तरफ़ बुला रहे हैं और मुवज़्ज़िन मुझी को पुकार पुकार कर कह रहा है आओ नमाज़ की तरफ़, मेरा दिल मेरे सीने से निकल-निकल कर ईमान वालों की सफ़ों में शरीक होना चाहता था ताकि मैं ख़ुदाए रहीम व रहमान की उपासना करने वाले बन्दों में शामिल हो जाऊँ। और यह एहसास पैदा होने के बाद मैं ज़्यादा समय तक उस को न रोक सका। फिर भी अगर बाहर की दुनिया के लोग यह मालूम करना चाहें कि मैं ने इस्लाम को दूसरे धर्मों के मुक़ाबले में क्यों चुना है तो मैं मुख़तसर तौर पर कुछ बातें पेश करता हूँः-

पहली चीज़ जिस ने मुझे बेहद प्रभावित किया, वह इस्लाम की सादगी और हिदायत है। इस्लाम के स्तंभ उंगलियों पर गिने जा सकते हैं उन सब की बुनियाद दो उसूलों पर है और वह इस

क़द्र साफ़ हैं कि एक आम अक़्ल व बुद्धी का इंसान भी उन्हें समझ सकता है। यानी मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की नुबूव्वत और उस ख़ुदा का एक होना जो न किसी का बाप है और न किसी का बेटा जो मिट्टी में ढाला जा सकता है न पत्थर में। जो एक है और एक रहेगा।

قُلْ هُوَ اللّٰهُ اَحَدٌ. اَللّٰهُ الصَّمَد. لَمْ يَلِدْ وَلَمْ يُوْلَد. وَلَمْ يَكُنْ لَّهٗ كُفُواً اَحَداً.

"कुल हुवल्लाहु अहद, अल्लाहुस्समद, लम यलिद वलम यूलद वलम यकुल्लहू कुफ़ुवन अहद"

(कह दो वह अल्लाह है यकता, जो बेनियाज़ है, न वह किसी का बाप है बौर न बेटा, और कोई उस के बराबर नहीं।)

इस्लाम को अधिमान देने की दूसरी वजह इस्लाम की जुमहूरियत है इस्लामी बराबरी है इस्लाम में मस्जिद के दरवाज़े हर मुसलमान के लिये यकसाँ तौर पर खुले हैं चाहे वह किसी रंग का हो और चाहे उस की कोई सी भी नस्ल हो।

इस्लामी भाईयो! चूँकि इस्लाम की विश्वव्यापी भाईचारगी इन्हीं उसूलों पर निर्धारित है लिहाज़ा इस्लाम कुबूल करने के लिये किसी ख़ास समय की पाबन्दी नहीं इस के लिये दो उसूलों का इक़रार व एलान काफ़ी है यही इस्लाम का कलमा है यानीः

اَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَ اَشْهَدُ اَنَّ مُحَمَّداً عَبْدُهٗ وَ رَسُوْلُهٗ.

"अशहदु अल्लाईलाहा इल्लल्लाहु व अशहदु अन्ना मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुहू"

(मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह एक है और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल०) उस के बन्दे और रसूल हैं)

इस कलमें के पढ़ते ही दुनिया की उस सब से बड़ी बिरादरी की मुहब्बत बढ़ जाती है जिस में हर इंसान को एक सा दर्जा

हासिल है और यह सिर्फ़ दृष्टिकोण ही नहीं, एक नाक़ाबिले इंकार हक़ीक़त है हर नौमुस्लिम कलमा पढ़ने के साथ ही मस्जिद में बादशाहे वक़्त के पहलू में खड़ा हो सकता है और उस के साथ मिल कर एक ही दसतरख़्वान पर खाना खा सकता है।

इस्लाम में सिर्फ़ इस्लाम का एलान करने से ही बराबरी के हुक़ूक़ मिल जाते हैं। यहाँ पवित्रता या नापाकी का सवाल नहीं उठता। जिस के पास चाहें उठें बैठें। नमाज़ में मुक़तदी बनें या इमाम किसी पर कोई प्रतिबन्ध नहीं अच्छा वही है जो अल्लाह से डरने वाला है जो अपने कर्तव्य को अच्छी तरह अंजाम देता है।

भाईयो! इंसान के लिये मुनासिब तरीन धर्म इस्लाम है गिरजे ख़ाली हैं और मसाजिद ईमान वालों से आबाद हैं। इबादत करने वाले काफ़ी बड़ी संख्या में दिन में पाँच बार ख़ुदा के सामने सिर झुकाते हैं। आओ इस मक़सद और फ़र्ज़ को अंजाम देने के लिये जिसे आज से 1300 साल पहले हमारे अरबी पैग़म्बर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने दुनिया के सामने पेश किया हम सब मिल कर अपनी ज़िन्दगियाँ वक़्फ़ (विराम) कर दें।

प्यारे भाईयो! बात चीत का सिलसिला ख़त्म करने से पहले मैं अपनी उस ख़ुशी का पूरे तौर पर एलान करना चाहता हूँ जो मेरे दिल में इस्लाम क़ुबूल करने से पैदा हुई है। मैं ख़ुदा के सामने हाथ उठा कर दुआ करता हूँ कि वह मुझे इस्लाम की किसी ऐसी सेवा की शक्ति दे जो आप की मुहब्बत व अख़लास की तरह बड़ी और महान हो।

गाबा साहब की 2 नवम्बर 1981 ई० को मुम्बई में मृत्यु हो गई।

सैफुद्दीन डिर्क वालटरमोसिग (जर्मनी)

(Saifuddin Dirk Walter Mosig)

मैं 1943 ई॰ में बरलिन (जर्मनी) के एक ईसाई ख़ानदान में पैदा हुआ यह वह फ़ितना व फ़साद का ज़माना था जब दूसरी बड़ी जंग ने ख़ुदा के अज़ाब की तरह पूरे यूरोप को अपनी लपेट में ले रखा था उसी अज़ाब के डर से मेरे माँ बाप ने 1943 ई॰ ही में वतन को छोड़ा और स्पेन चले गये जहाँ से 1948 ई॰ में अरजंटाइन (पच्छिमी अमरीका) चले गये मैं ने प्राइमरी और दूसरी शिक्षा अरजंटाइन के शहर कुरतुबा (CORDOBA) के एक रोमन कैथोलिक स्कूल में हासिल की, चुनाचे जैसा कि होना चाहिये था मैं शुरू उम्र ही में कट्टर कैथोलिक बन चुका था। बल्कि ख़ुद बख़ुद पादरी बनने के ख़्वाब देखने लगा था इस के लिये मैं रोज़ाना कैथोलिक धर्म पर लेकचर सुनता और कभी-कभी धार्मिक कामों में पादरियों की मदद करता।

मगर ख़ुदा को कुछ और ही मंज़ूर था। यह सरासर उस का फ़ज़्ल और करम है कि एक दिन मेरे दिल में कुरआन को देखने और पढ़ने की इच्छा पैदा हुई। मैं ने कुरआन का एक हसपानवी अनुवाद लिया और खोल कर पढ़ने लगा। मेरे पिता ने भी कोई आपत्ति न की उन का ख़याल था कि कुरआन का अध्ययन मेरे धार्मिक अक़ाइद को और ज़्यादा मज़बूत कर देगा लेकिन उन्हें

और ख़ुद मुझे भी कोई ख़बर न थी कि आइंदा थोड़ी देर में क्या इंक़लाब आने वाला है और अल्लाह तआला ने मेरे बारे में क्या फ़ैसला कर लिया है यूँ समझिये कि जब मैं ने कुरआन को खोला था तो एक कट्टर ईसाई था, मगर उसे बन्द करते हुये पूरे तौर पर इस्लाम की गोद में आ चुका था।

इस में कोई शक नहीं कि कुरआन पाक का अध्ययन करने से पहले इस्लाम के बारे में मेरी राय हर्गिज़ अच्छी न थी मैं ने इस किताब को हाथ में लिया तो जाँच पड़ताल के लिये था और खोला तो दिल व दिमाग़ पर नफ़रत व हिक़ारत के जज़बात तारी थे इरादा सिर्फ़ यह था कि उस के विषयों की भयानक ग़लतियों, बेबुनियाद वहम और कुफ़्रियात की निशानदही करूँगा। जैसा कि कह चुका हूँ मैं धर्म के मुआमिले में काफ़ी कट्टर हो चुका था लेकिन अभी नवजवान था। इस लिये पक्षपात का रंग पक्का हो कर कीना व दुश्मनी की सूरत इख़्तियार न कर सका था। चुनाचे मैं ने शरूआत ही से उस का अध्ययन शुरू किया तो तबीयत पर हिचकिचाहट का आलम तारी था। थोड़ी ही देर में यह कैफ़ियत चाहत की सूरत इख़्तियार कर गई और आख़िर में यह हालत सख़्त प्यास की शक्ल में सामने आ गई यूँ लगता था कि अगर सच्चाई का साफ़ चश्मा न मिला तो मेरी जान निकल जाएगी। फिर अल्लाह तआला ने मुझ पर ख़ास करम फ़रमाया और जल्द ही वह घड़ी आई जबकि उस ने ख़ुद मेरी रहनुमाई फ़रमाई मैं वहम की दुनिया से हक़ीक़त की दुनिया में, झूट से सच की हालत में सख़्त अंधेरों से रोशन उजालों में यानी ईसाईयत से इस्लाम की गोद में आ गया, मैं ने क़ुरआन पाक के पुनित और पवित्र पन्नों में अपने मसाइल का हल पा लिया मेरी सारी रूहानी ज़रूरतों की तसकीन हो गई और मेरे सारे शुकूक व शुबहात हवा में घुल कर यक़ीन की सूरत इख़्तियार कर गये अल्लाह ने अपने नूर की

तरफ़ कुछ इस अंदाज़ से रहनुमाई फ़रमाई कि मुझे दख़लअंदाज़ी की शक्ति ही न रही और मैं ने निहायत ख़ुशदिली के साथ सिर झुका दिया। कुरआन के हकीमाना तरीक़े ने हर चीज़ निखार कर रख दी। अब हर चीज़ में मुझे उस की हिकमत नज़र आने लगी। मैं ने अपने आप को पहचान लिया। दुनिया की हक़ीक़त समझ में आने लगी और उस के ख़ालिक़ व मालिक की हैसियत तय हो कर सामने आ गई।

कुरआन ने मुझे इस बात की जानकारी दी कि मैं अभी तक गुमराहियों में भटक रहा था यह सोच कर मुझे बेहद दुख हुआ कि धर्म के नाम पर अब तक मुझे धोका दिया जा रहा था और मेरे महबूब अध्यापकों के अलफ़ाज़ सफ़ेद झूट से ज़्यादा कोई हैसियत नहीं रखते थे मेरे ख़यालात व तसव्वुरात की दुनिया एक ही पल में उलट पलट गई जिस पर मैं ने ख़ुदा के सहयोग से नई ख़ुबसूरत इमारत खड़ी कर ली मुझे इस बात ने ख़त्म न होने वाली ख़ुशियाँ अता कीं और आख़िरकार मैं ने अपने हक़ीक़ी मालिक को पहचान लिया है। मेरा दिल मुहब्बत और एहसानमंदी के जज़बात से भर गया। मैं किसी तरह भी उस के फ़ज़्ल व करम का शुक्रिया अदा नहीं कर सकता अगर उस की रहनुमाई का सहयोग हासिल न होता तो मैं सारी उम्र जिहालत व मूर्खता के अंधेरों में ठोकरें खाता रहता।

बहरहाल जैसे ही मुझे इस्लाम की हक़्क़ानियत (सच्चाई) का पता चला ख़ुशी और जोश के एहसास के साथ मैं अपने माँ बाप, अध्यापकों, स्कूलों के साथियों, रिश्तेदारों और परिचित लोगों की तरफ़ भाग खड़ा हुआ और बारी बारी उन्हें इस बड़ी नेमत के बारे में ख़बर दी जो अल्लाह ने मुझे दी थी मेरी इच्छा थी कि यह लोग भी जिहालत व पक्षपात से मुक्ति हासिल कर के इस रोशनी को अपने सीनों में भर लें जिस से महरूम रह कर यह लोग

हमेशा घाटे में रहेंगे और जिस से दूर रह कर यह कभी सच्ची ख़ुशियाँ नहीं पा सकेंगे। मगर आह अफ़सोस मैं ने देखा कि मेरे और उन लोगों के बीच बहुत मोटी और ऊँची दीवारें आ गई हैं यह तंगनज़री (अल्पदृष्टि) के एक ऐसे क़िले में बन्द हैं जहाँ तक मेरी कोई आवाज़ नहीं पहुँचती। इन के दिल पत्थरों से ज़्यादा सख़्त हैं, जिन पर हक़ व सच्चाई का कोई कुदाल काम नहीं करता उन्हों ने मेरी बातों के जवाब में सख़्त नफ़रत और क्रोध का इज़हार किया मुझे ज़ेहनी तकलीफ़ देने में कोई कसर न छोड़ी और समाज में मेरा उठना बैठना दूभर कर दिया उन की सख़्त मुख़ालिफ़त से मैं ने यही नतीजा निकाला कि हिदायत सिर्फ़ अल्लाह ही के हाथ में है इसी लिये मेरा दिल हर वक़्त इस एहसान के सामने झुका रहता है जिस ने अपने ख़ास फ़ज़्ल से मुझे अपने मुकम्मल धर्म "इस्लाम" के घेरे में पनाह दी।

आख़िर में मैं यह बताता चलूँ कि जानकारी के लिये मैं ने दूसरे धर्मों की पुस्तकों का अध्ययन किया है और हर एतबार से इस्लाम ही को मुकम्मल और अमल के क़ाबिल ज़िन्दगी गुज़ारने का क़ानून पाया है इस्लाम के सामने दूसरे धर्मों की मिसाल यही है जो सूरज के सामने माचिस की तीली की होती है। मैं पूरा यक़ीन रखता हूँ कि जो शख़्स भी क़ुरआन को समझ कर पढ़ेगा वह इंशाअल्लाह इस्लाम क़ुबूल कर लेगा। शर्त यह है कि उस ने ज़ेहन को हक़शनासी के लिये बिल्कुल बन्द न कर लिया हो। ठीक तबीयत रखने वाला ग़ैर साम्प्रदायीक शख़्स क़ुरआन को पढ़ कर बेधर्मी के अंधेरों में रह ही नहीं सकता।

मौलाना अब्दुर्रहमान (हिन्दुस्तान)

ज़िला जालंधर की तहसील नकोदर में मियानवाली आराईयाँ और मियानवाली मौलूयाँ दो मशहूर बस्तियाँ हैं मैं मियानवाली आराईयाँ में 20 फ़रवरी 1913 ई॰ को पैदा हुआ। मेरा नाम राम सरन दास रखा गया। मेरे बाप का नाम लाला नन्द था। हमारी ज़ात रेहान खतरी थी। हमारा ख़ानदान उस इलाक़े में काफ़ी मशहूर, मालदार और असरदार था सरकारी दरबार में अच्छी पहुँच थी धर्म के एतबार से हम सनातन धर्मी थी हमारे यहाँ साहूकारी, तिजारत और ज़मीनदारी का काम होता था और इलाक़े की सरदारी भी थी। दादा जान ने 68 वर्ष सरदारी की थी।

1931 ई॰ में मैं ने शाहकोट से इंगलिश मिडिल पास किया और प्रथम दरजे में कामियाब हुआ। फिर और ज़्यादा शिक्षा हासिल करनी चाही मगर कुछ रूकावटें ऐसी रहीं कि शिक्षा हासिल न कर सका और तिजारत का सिलसिला शुरू कर दिया। मुझे बचपन ही से धर्म से लगाव था और दिल हक़ को तलाश कर रहा था। मेरी बस्ती के लोग सनातन धर्मी थे। मुझे शिर्क व बिदअत से क़ुदरती तौर पर नफ़रत थी। चुनाचे जब मैं चौथी जमाअत में पढ़ता था उस ज़माने में मेरे दो तायाज़ाद भाई लालादीना नाथ और लाला गिरधारी लाल तिजारत के सिलसिले में जालंधर और फ़ीरोज़ पुर में एक साल या आठ महीने रह कर घर वापस आये। इस ज़माने में धार्मिक मुबाहिसे और मुनाज़िरे

आम होते थे मैं ने उन से पूछा कि उन्हों ने यह मुनाज़िरे सुने, अगर सुने तो धर्म के बारे में क्या जानकारियाँ हासिल कीं। उन्हों ने जवाब दिया कि मख़लूक़ (मानवजाति) मख़लूक़ होने की हैसियत से न हम को कोई नफ़ा पहुँचा सकती है और न नुक़सान और यह इख़्तियार सिर्फ़ भगवान (ख़ुदा) को है। मालूम होता है कि वह आरिया समाज के ख़यालात से प्रभावित हो चुके थे।

मेरे भाईयों की यह बात मेरे ज़ेहन में बैठ गई और मैं ने उस का तजर्बा शुरू किया। हमारे गाँव के क़रीब सय्यद पुर की एक बस्ती थी। वहाँ बाबा सय्यद राना की एक क़ब्र थी जिस पर दूर व नज़दीक से हिन्दू मुसलमान सिख सभी चढ़ावे चढ़ाते थे। हमारे घर से भी चढ़ावा जाता था मैं ने यह तरीक़ा इख़्तियार किया कि जब मेरे ज़रिये से कोई चीज़ नज़्र के तौर पर क़ब्र पर भेजी जाती तो मैं बजाये क़ब्र पर चढ़ाने के ख़ुद चट कर जाता और उस क़ब्र पर जो पैसे वग़ैरा होते वह भी उठा लेता। इस काम से मुझे कभी कोई नुक़सान नहीं पहुँचा, इस तरह मेरा दिल मज़बूत हो गया।

अब मैं ने इस्लामी पुस्तकों का ख़ास तौर पर अध्ययन शुरू किया मियाँ वाली मोलवियाँ में एक फ़ारिग़ुत्तहसील (जिस ने पूरी शिक्षा हासिल कर ली हो) तालिबइल्म (छात्र) थे कुछ बातें जब मैं उन से पूछा करता तो वह मुझे मुतमईन न कर सकते थे। उसी दौरान मैं ने अपने एक साथी वली मुहम्मद से कहा कि मैं इस्लाम के बारे में जानकारी हासिल करना चाहता हूँ। उस ने जवाब दिया कि मेरे बड़े भाई अली मुहम्मद साहब से बात करो। वह आप को जानकारी दे सकेंगे। मैं जब अली मुहम्मद साहब के पास गया था तो वह एक ज़रूरी काम कर रहे थे मगर वह मेरी तरफ़ तुरन्त मुतवज्जेह हुये। मैं ने गोश्तख़ोरी पर एतराज़ किया कि यह जानवरों पर सरासर ज़ुल्म है। उन्हों ने मुझ से पूछा कि क्या

सब्ज़ियों में रूह है या नहीं? मैं ने कहा हाँ है तो उन्हों ने कहा कि फिर तो सब्ज़ी खाना भी "जिवहत्या" है। उन के इस जवाब से मैं सोच में पड़ गया मैं कई महीने तक उन के पास जाता रहा। वह मेरे बहुत से सवालों और एतराज़ात के तसल्ली बख़्श जवाबात देते रहे। यहाँ तक कि मुझे संतुष्ठ की मंज़िल तक पहुँचा दिया और अब मैं इस्लाम को सच्चा धर्म समझने लगा।

मैं बराबर इस्लाम के बारे में सोचा करता था। रात को जब सोता तो देखता कि एक सफ़ेद पंछी मेरे ऊपर से उड़ कर जाता है। यही हाल महीनों तक रहा। यहाँ एक बात का ज़िक्र ज़रूरी समझता हूँ कि कपूरथला की जामा मस्जिद को देख कर मैं बहुत प्रभावित हुआ था यह ऐसी आलीशान मस्जिद थी कि जिस को मैं घंटों देखा करता था। बात यह थी कि वह मस्जिद जामा मस्जिद के नक़शा के मुताबिक़ बनी हुई थी। चूँकि अभी मैं पूरे तौर से इस्लाम में दाख़िल नहीं हुआ था लिहाज़ा मैं ने मस्जिद में दाख़िला का यह हल निकाला कि मस्जिद में जा कर हौज़ पर बैठता और वुज़ू करता रहता। इस तरह मस्जिद को देखता रहता था।

मैं अपने मुसलमान दोस्तों और ख़ास तौर से शैख़ निज़ामुद्दीन दर्ज़ी से बराबर मिलता रहता था और इस्लाम की तालीमात हासिल करता था। एक दिन मेरे बड़े भाई ने जो निहायत चतुर और क़याफ़ा शनास (चेहरा मोहरा देख कर आदमी का चरित्र मालूम करना) था मुझे वुज़ू करते हुये देख लिया। मुझ से पूछा कि यह क्या कर रहे हो मैं ने जवाब दिया कि मैं हाथ मुँह धो रहा हूँ। मेरे मोलवी साहब जिन के पास मैं अरबी पढ़ने जाता हूँ वह इसी तरह मुँह हाथ धोते हैं यह सुन कर भाई ने कहा कि अरबी पढ़ने मत जाया करो। मगर अब तो मैं ने नमाज़ भी सीखनी शुरू कर दी थी और मुझे सूरह अख़लास वग़ैरा पूरी याद हो गई थीं।

अब मैं नमाज़ याद कर चुका था और दीन की ज़रूरतों से पूरी तरह परिचित हो चुका था। एक दिन मैं निज़ामुद्दीन साहब की दुकान पर गया और उन से कहा कि अब मैं ने पक्का इरादा कर लिया है कि अपने इस्लाम का एलान कर दूँ और खुल कर इस्लाम के फ़राइज़ अदा करूँ और मैं ने यह भी तैय किया है कि मैं अपने इस्लाम का एलान जामा मस्जिद देहली, जामा मस्जिद कपूर थला, अमरतसर या लाहौर में करूँ। मेरी इस बात को सुनते ही शैख़ निज़ामुद्दीन ने तुरन्त अपनी दुकान का दरवाज़ा बन्द कर लिया और कहने लगे कि ऐसी बात चीत आहिस्ता से कीजिये। अगर कहीं तुम्हारे ख़ानदान वालों को पता चल गया तो मेरा सिर फोड़ देंगे और मेरे घर बार को तबाह व बरबाद कर देंगे।

उस के बाद तैय हुआ कि ख़ुशी मुहम्मद से मशवरे के बाद अगला क़दम उठाया जाये। उन से मुलाक़ात के बाद तैय पाया कि देहली जा कर मैं अपने इस्लाम का एलान करूँ चुनाचे 3 अप्रैल 1933 ई० को एक बजे ख़ुशी मुहम्मद के साथ में अपने घर से निकला गोया कुफ़्र व ज़लालत (पाप) की दुनिया को ख़ैरबाद कहा और इस्लाम व ईमान की तरफ़ बढ़ा। दुनिया के सारे रिश्ते तोड़े और अल्लाह से रिश्ता जोड़ा।

शाम को साढ़े आठ बजे देहली पहुँचे। ख़ुशी मुहम्मद मुझे अब्दुल वहाब मुलतानी के मदरसे में ले गये उस वक़्त वहाँ इशा की नमाज़ हो रही थी। नमाज़ के बाद ख़ुशी मुहम्मद ने मोलवी अब्दुल सत्तार साहब से मेरा परिचय कराया और मक़सद बयान किया कि वह मुझे बाक़ायदा मुसलमान कर लें। उन्हों ने जवाब दिया कि अब इसी तरह सुला दो, सुब्ह क़ुरआन करीम का अनुवाद सुनाने के बाद मुसलमान करेंगे।

मेरे दिल पर इस का बुरा असर हुआ कि इस काम में देर

नहीं होनी चाहिये थी। अगर मेरा इरादा बदल जाता। बहरहाल मुझे एक रात और ग़ौर करने का मौक़ा मिल गया। मैं ने अल्लाह तआला से सारी रात दुआ की। "ख़ुदाया! मैं बिल्कुल किनारे पर खड़ा हूँ। मुझे हक़ की रोशनी दिखा।"

रात को मैं ने ख़्वाब देखा कि एक आम समुदाय है उस में इस्लाम की हक़्क़ानियत (सच्चाई) पर बहस व मुबाहिसा हो रहा है जिस में इस्लाम पर तक़रीर करने वाला शख़्स सफ़ल और विजेता हुआ है चुनाचे जब मैं सो कर उठा तो मेरे दिल को सुकून व इतमीनान था और मैं ने समझ लिया कि इस्लाम हक़ और सच्चा धर्म है।

सुब्ह अज़ान हुई तो मैं नमाज़ में शरीक हुआ। नमाज़ के बाद मोलवी अब्दुल सत्तार साहब का दर्से कुरआन हुआ। उस के बाद उन्हों ने मुझे बाक़ायदा मुसलमान किया और मेरे इस्लाम लाने का एलान आम हो गया। मोलवी साहब ने मेरा नाम अताउल्लाह पसन्द किया जो एक साल तक जारी रहा मगर मुझे अपना नाम इरशादुल्लाह पसन्द था। मगर जब मैं ने हदीस में पढ़ा कि इस्लाम में पसंदीदा नाम अब्दुल्लाह और अब्दुर्रहमान हैं तो मैं ने अपना नाम अब्दुर्रहमान रख लिया और अब मैं इसी नाम से मशहूर हूँ मेरी ज़िन्दगी का यह महान काम (इस्लाम का कुबूल करना या उस का एलान करना) 4 अपरैल 1933 ई० मुताबिक़ 7 ज़िलहज्जा 1351 हिजरी को हुआ। मैं ने जामा मस्जिद देहली के इमाम साहब से अपने इस्लाम लाने का सरटीफ़िकेट हासिल किया और वह सरटीफ़िकेट ख़ुशी मुहम्मद साहब को दे दिया ताकि उन पर कोई मुसीबत न पड़े। साथ ही मैं ने अपने ख़ानदान वालों को डाक के ज़रिये ख़बर कर दी कि बिला किसी ज़बरदस्ती के राज़ी व ख़ुशी के साथ मैं ने इस्लाम को हक़ धर्म समझते हुये उसे कुबूल किया है इस में किसी के भड़काने लालच देने या डराने का कोई दख़ल

नहीं था। मेरे इस काम का कोई शख़्स ज़िम्मेदार नहीं है। इस के बाद यह मुआमला ख़त्म हो गया। अलबत्ता मेरी बहन सुधाबी जो उस वक़्त देहली में रहती थी ज़रूर हाथ पाँव मारे। उस ज़माने में उस ने तक़रीबन 900 रूपया ख़र्च किया। बहुत सी इसकीमें और मंसूबे बनाये मुझे अपहरण कराना चाहा मगर सब बेफ़ायदा हुआ। अल्लाह तआला ने हर मौक़ा पर मेरी हिफ़ाज़त और मदद फ़रमाई।

अब मैं देहली में रहता हूँ और मदरसा दारूलकिताब वस्सुन्ना में पढ़ने लगा हूँ। मेरे इस्लाम लाने के एक साल आठ महीने बाद मेरे रिश्ते की बात चीत हुई। मौलाना अब्दुल सत्तार देहलवी मरहूम की बड़ी फूफी की पोती और छोटी फूफी की नवासी के साथ मेरी शादी हो गई।

मेरे चार लड़के (1) अब्दुल मन्नान (2) हबीबुर्रहमान (3) ख़लीलुर्रहमान और (4) उबैदुर्रहमान हैं।

अब्दुल्लाह बेटरज़बी (इंगलिस्तान)

(Major Abdullah Battersbey)

25-30 वर्ष पहले की बात है मैं बरमा में रहता था। किश्ती में सवार हो कर नदियों और दरयाओं में सेर सपाटा करना मेरा सरकारी मामूल था। किश्ती का मल्लाह चटागाँग का एक मुसलमान शैख़ अली था। शौख़ अली ज़बरदस्त क़िस्म का मल्लाह और बाअमल मुसलमान था। नमाज़ का वक़्त आता तो वह सारे काम छोड़ कर निहायत वक़ार और ख़ुशू व ख़ुज़ू के साथ नमाज़ पढ़ता। नेकी और फ़र्ज़ की अदायगी उस में कूट कूट कर भरी हुई थी उस की इन ख़ूबियों ने मेरे दिल में उस के लिये इज़्ज़त और अक़ीदत के जज़बात पैदा कर दिये थे। साथ ही मुझ में यह एहसास बेदार होने लगा था कि इस धर्म के बारे में जानकारी हासिल करनी चाहिये जिस ने एक आम आदमी को महान इंसान और अख़लाक़ी आदर का नमूना बना दिया है।

मेरे मिलने वालों में बुद्ध धर्म की उपासना करने वालों की अधिकता थी। मैं देखता था कि यह लोग भी नेकी व परहेज़गारी की बड़ी नुमाइश करते हैं और कहा जाता था कि दानशीलता और दरियादिली के ऐतबार से दुनिया भर में कोई क़ौम उन का मुक़ाबिला नहीं कर सकती मगर उन को इबादत करते हुये देखता तो रह-रह कर किसी कमी का एहसास होता था। वह पगोडों

(इबादतगाहों) में भी जाते थे मगर साफ़ नज़र आता था कि उन के इबादत के तरीक़ें में ग़ैर फ़ितरी क़िस्म की नम्रता छाई हुई है और कुव्वत या एहतिराम का कहीं निशान तक नहीं जबकि इस के मुक़ाबिले में शैख़ अली की इबादत में एहतिराम भी था हुस्न भी और नम्रता भी। इस अपेक्षा के अध्ययन ने इस्लाम के लिये मेरी दिलचस्पी में बहुत बढ़ोतरी कर दी। लेकिन जब कभी मैं शैख़ अली से कुछ जानने की कोशिश करता मुझे बड़ी मायूसी होती वह बेचारा अपने धर्म की उन ख़ूबियों को बयान नहीं कर सकता था। हालाँकि उन्हीं ख़ूबियों ने उस की शख़्सियत को मेरे नज़दीक बेहद आदर के क़ाबिल बना दिया था। फिर भी मैं शैख़ अली के आकार में इस्लाम को मुजस्सम सूरत में देखता रहता था।

अपनी दिलचस्पी और तहक़ीक़ की संतुष्ठी के लिये मैं ने इस्लाम और इस्लामी इतिहास के बारे में कुछ किताबें ख़रीद लीं। मैं ने हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की ज़िन्दगी और कारनामों का अध्ययन भी किया। और ज़्यादा मालूमात के लिये मैं ने अपने मुसलमान दोस्तों से भी बात की। हक़ की तलाश का यह सफ़र तैय नहीं हुआ था कि पहली अज़ीम जंग छिड़ गई और मैं फ़ौज में शामिल हो कर इराक़ के महाज़ पर चला गया।

अब मैं एक ऐसे इलाक़े में था जिसे अरब मुसलमानों का दिल कहना चाहिये यह लोग कुरआन की ज़ुबान अरबी में बातें करते थे और मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम उन्हीं के बीच नबी बना कर भेजे गये थे। इस्लाम को समझना अब मेरे लिये बहुत ज़्यादा आसान था। मैं ने अरबी ज़ुबान सीख ली और मुसलमानों और कुरआन से सीधा संबंध क़ायम कर लिया। इस्लामी इबादत के तरीक़े और उस को लगातार अदा करने से मैं ख़ास तौर पर बहुत प्रभावित हुआ। यह जान कर मुझे बेहद ख़ुशी हुई कि इस्लाम ख़ुदा के एकत्व (ख़ुदा का एक होना) को मानता है जबकि

ईसाईयत के तसलीस के नज़रिये (दृष्टीकोण) से मुझे ख़ुद भी उलझन हुआ करती थी। चुनाचे मुझे यक़ीन हो गया कि इस्लाम ही दुनिया का सच्चा धर्म है और लाइलाहा इल्लल्लाह में प्राकृतिक निवेदन है मैं ने इस्लाम कुबूल करने का इरादा कर लिया गिरजे में जाना छोड़ दिया और जब कभी पुलिस अफ़सर की हैसियत से मेरी डियूटी लगती मैं मस्जिद में भी चला जाता।

1935 ई॰ से 1942 ई॰ तक मुझे फ़िलस्तीन में रहना पड़ा। यहीं मैं ने इस्लाम कुबूल करने का पक्का इरादा कर लिया और एक दिन बैतुल मुक़द्दस के मुहकमा अल-शरइय्या में हाज़िर हो कर मुसलमान होने का एलान कर दिया। मैं उस वक़्त जनरल स्टाफ़ आफ़ीसर था। चुनाचे मेरे एलान पर काफ़ी नाख़ुशगवार रद्दे अमल (खंडन) का इज़हार किया गया, मगर मैं ने किसी की परवाह न की। अल्लाह का लाख लाख शुक्र है कि आज मैं मुसलमान हूँ और करोड़ों लोगों की एक सहमत बिरादरी का आदमी। मैं ख़ुदा का बेहद शुक्रिया अदा करता हूँ कि उस ने मुझे कुफ़्र के अंधेरों से निकाल कर तौहीद और ईमान के उजालों में ला खड़ा किया है इस के लिये मैं उस बूढ़े मल्लाह "शैख़ अली" का दिल की इंतिहाई गहराईयों से शुक्रगुज़ार हूँ जिस के अमल और शख़सियत ने इस्लाम की रोशनियों की तरफ़ मेरी रहनुमाई की। मैं हर नमाज़ के समय उस के लिये दुआ करता हूँ अल्लाह उसे जज़ाए ख़ैर अता करे और उस के दरजात (पद) बुलंद करे।

प्रोफ़ेसर अब्दुल्लाह बैनिल (अमरीका)

प्रोफ़ेसर बैनिल हैविट अमरीका के एक प्रसिद्ध विचारक और ग्रंथकारी है उन की गिनती वर्तमान काल के वर्षों में इस्लाम पर ईमान लाने वाले कुछ अहम अमरीकी दानिशवरों में होती है अब उन का इस्लामी नाम अब्दुल्लाह हसन बैनिल है। इस विषय में उन्हों ने इस्लाम की उन ख़ूबियों का ज़िक्र किया है जिन्हों ने उन्हें आकर्षित किया।

☆☆☆☆

मेरा इस्लाम कुबूल कर लेना कोई तअज्जुब की बात नहीं है और न इस में कोई उत्तेजना या लालच को दख़ल है। मेरे ख़याल में यह ज़ेहन की कुदर्ती तबदीली और उन धर्मों के ज़्यादा अध्ययन का नतीजा है जो इंसानी अक्लों पर क़ाबिज़ है मगर यह बदलाव उसी शख़्स में पैदा हो सकता है जिस का दिल व दिमाग़ धार्मिक पक्षपात से पाक हो और साफ़ दिल के साथ अच्छे और बुरे में अंतर कर सकता हो।

मैं मानता हूँ की ईसाईयत में भी कुछ सच्चे और मुफ़ीद उसूल मौजूद हैं और अगर इस धर्म से वह तमाम बिदअतें अलग कर दी जाएँ जो पादरियों ने ईजाद (आविषकार) कर दी हैं तो यह धर्म भी इंसान के लिये एक मुफ़ीद धर्म बन सकता है बात यह है कि इन बिदअतों ने उस की सूरत को बिगाड़ दिया है और

उसे बिल्कुल बेजान कर डाला है। इस के विपरीत इस्लाम उसी इब्तिदाई शक्ल में है जिस में वह प्रकट हुआ था और चूँकि मैं एक ऐसे धर्म की तलाश में था जो मिलावट से पवित्र हो इस लिये मैं ने इस्लाम कुबूल कर लिया।

किसी कलीसा में भी चले जाइये वहाँ नक़्श व निगार और तसवीरों और मूर्तियों के सिवा आप को कुछ नहीं मिलेगा। इस के अलावा पादरियों के चमकते दमकते वस्त्र पर नज़र डालिये, फिर उन बतरीक़ों, राहिबों, राहिबा औरतों की भीड़ को देखिये तो उन का रूहानियत से दूर का भी संबंध दिखाई नहीं देता। ऐसा मालूम होता है कि हम किसी इबादत ख़ाने में नहीं हैं बल्कि एक ऐसे बुतख़ाने में खड़े हैं जो सिर्फ़ बुतों की पूजा के लिये बनाया गया है। उस के बाद मसाजिद पर नज़र डालिये वहाँ आप को न कोई मूरत दिखाई देगी और न तसवीर। फिर नमाज़ियों की सफ़ों (लाइन) पर नज़र डालिये हज़ारों छोटे बड़े इंसान कंधा से कंधा मिलाये खड़े नज़र आएँगे। सच तो यह है कि नमाज़ में रूकू व सज्दों का मंज़र इस क़दर दिल और नज़र को खींचने वाला होता है कि कोई इंसान भी प्रभावित हुये बग़ैर नहीं रह सकता।

मस्जिद का पूरा माहौल और उस की तमाम चीज़ें रूहानियत की तरफ़ इंसान की रहनुमाई करती हैं न वहाँ बनावट है और न बुनियादी सजावट। इस के विपरीत कलीसा की तमाम चीज़ों में माद्दी दुनिया का मुज़ाहिरा बहुत ज़्यादा है। हो सकता है कुछ लोग एतराज़ करें कि प्रोटेसटेन्ट धर्म तो इन बुराईयों से पवित्र है उस ने तो अपने गिरजों से बुत और तसवीरें निकाल फेकीं हैं तुम ने इस्लाम के बजाये इसे कुबूल क्यों नहीं किया। बिला शुबहा प्रोटेसटेन्ट धर्म हक़ीक़ी मसीहीय्यत से क़रीब ज़रूर है मगर मैं इस विश्वास के बावजूद कि मसीह अलैहिस्सलाम एक महानात्मा औतार थे हर्गिज़ उन की उलूहियत का क़ाइल नहीं। वह मेरी ही तरह के

इंसान थे और मेरा यह अक़ीदा कोई नया नहीं है बल्कि शुरू ही से मैं इस का इज़हार करता रहा हूँ जो न सिर्फ़ हज़रत मसीह अलैहिस्सलाम ही का पूरा आदर सिखाता है बल्कि दुनिया के तमाम धर्मो और धर्म के बनाने वालों के आदर की दावत देता है।

मेरा एक लम्बे समय से इस्लाम की तरफ़ झुकाव था, लेकिन मेरा ईमान इतना मज़बूत नहीं हुआ था कि मैं बेढड़क अपने मुसलमान होने का एलान कर सकता। यह संकोच किसी इंसान या सोसाइटी के डर की बिना पर नहीं था बल्कि उस की वजह यह थी कि मैं पूरी तरह इस्लाम की ख़ूबियों और ख़ुसूसियात से परिचित नहीं था, लेकिन इस्लाम के बारे में जूँ जूँ मैं इस्लाम के उलमा की किताबों का अध्ययन करता गया, मेरी आँखें खुलती गई और मुझे साफ़ तौर पर इस धर्म की ख़ूबियाँ और उस के बनाने वाले मुहम्मद स० का इंसानों पर एहसान मालूम हो गया और आख़िर मैं ने इस धर्म को अपना धर्म बना लिया।

इस्लाम में जैसी तौहीद परस्ती (ख़ुदा को एक मानना) मैं ने देखी है वह किसी दूसरे धर्म में नहीं पाई जाती और इस्लाम की इसी तौहीद परस्ती ने मुझे सब से पहले इस धर्म की तरफ़ खींचा। इस्लाम में जो सब से बड़ी ख़ूबी मैं ने पाई वह यह है कि वह सिर्फ़ रूहानी तरक़्क़ी ही का सहायक नहीं है बल्कि वह दुनियावी तरक़्क़ी में भी बहुत बड़ा मददगार है वह इंसान को गोशा नशीनी और राहिबाना ज़िन्दगी गुज़ारने की तालीम नहीं देता। बल्कि वह इंसान को ज़िन्दगी में आगे बढ़ने की उत्तेजना देता है वह दीनी मुआमलात ही में इंसान की रहनुमाई नहीं करता बल्कि दुनिया के हर मुआमले में इंसान को रास्ता बताता है और क़दम क़दम पर इंसानों को रोशनी दिखाता है इस्लाम ने दुनिया को आख़िरत की खेती क़रार दिया है और उसे हुक्म दिया है कि वह दीनी फ़राइज़ अदा करने के साथ दुनियावी फ़राइज़ से भी ग़ाफ़िल

न हो। सच तो यह है कि मौजूदा साइंसी दौर में इस्लाम ही एक ऐसा धर्म है जो तरक़्क़ी याफ़ता दुनिया का साथ दे सकता है।

इस्लाम की सब से बड़ी ख़ूबी यह है कि वह तंगनज़री और पक्षपात का सख़्त विरोधी है वह सिर्फ़ अपने धर्म के मानने वालों के साथ मुरव्वत और मुहब्बत की हिदायत नहीं करता बल्कि वह सब इंसानों के साथ चाहे वह किसी भी धर्म से क्यों न संबंध रखते हों, हमदर्दी व बराबरी का हुक्म देता है वह अलग होने का नहीं बल्कि इंसानों के एक होने का क़ाइल है। सच तो यह है कि उस ने पहली बार इंसान को इंसानियत का सबक़ पढ़ाया है।

मैं गुज़रे हुये पाँच सालों से इस्लाम धर्म की उपासना करता हूँ। जिस चीज़ ने मेरे ईमान को मज़बूती दी है वह इस्लाम के बुलंद और पाक उसूल हैं। उस की विश्वव्यापी भाईचारगी है, उस की बेमिसाल बराबरी है और उस का इल्म व इरफ़ान है जिस ने मेरे दिल व दिमाग़ में एक नई रोशनी पैदा कर दी है।

इस्लाम एक ऐसा धर्म है जो सिर से पाँव तक इल्म व अमल है बल्कि मैं तो कहूँगा कि इस्लाम एक कुबूल (स्वीकार) करने वाला धर्म है जबकि मसीहीय्यत एक ऐसा धर्म है जो न सिर्फ़ वहदानियत (ख़ुदा का एक होना) का इनकार करने वाला है बल्कि इंसान को दुनिया और उस की तमाम नेमतों से फ़ायदा उठाने से मना करता है। कोई शख़्स अगर सही मानों में ईसाई बनना चाहे तो उसे दुनिया से किनारा इख़्तियार कर के गोशा नशीनी की ज़िन्दगी इख़्तियार करनी होगी। लेकिन इस्लाम में रह कर हम दुनिया की तमाम ख़ुशियों और राहतों से फ़ायदा उठा सकते हैं। न हमें मस्जिद का गोशा तलाश करना होगा और न वीरानों में ज़िन्दगी बसर करने की मजबूरी होगी।

अगर इंसान को दुनिया में इसी लिये भेजा गया है कि वह गोशा नशीनी की ज़िन्दगी इख़्तियार कर के उसे बरबाद कर दे

तो उस की पैदाइश का मक़सद समझ में नहीं आता। इंसानी ज़िन्दगी का मक़सद क्या है? वह सिर्फ़ इस्लाम ने बताया है कि इंसान इस दुनिया में रह कर कुदरत की हर चीज़ से फ़ायदा उठाये मगर साथ ही अपने परवरदिगार और उस की मख़लूक़ (मानवजाति) को भी न भूले। मैं ने जब से इस्लाम कुबूल किया है दिली सुकून महसूस कर रहा हूँ। मेरी दुनिया भी दुरूस्त हो गई है और आक़बत (आख़िरत) भी। (इंशाअल्लाह)

(बशुक्रिया "विफ़ाक़" एक जून 76 ई०)

सर अब्दुल्लाह आरकिबाल्ड हेमिल्टन (इंगलिस्तान)

(Sir Abdullah Archibald Hamilton)

सर चारलिस एडवर्ड आरकिबाल्ड वाटेकेन्ज़ हेमिल्टन ने 20 दिसम्बर 1923 ई॰ को इस्लाम कुबूल किया। और सर अब्दुल्लाह आरकिबाल्ड हेमिल्टन नया इस्लामी नाम रखा वह इंगलिस्तान के बहुत प्रसिद्ध सियासतदाँ थे। 1876 ई॰ में अपने जन्म के पहले ही साल वह ताजशाही की तरफ़ से बैरोन्ट (नवाब) क़रार दिये गये। जबकि 1919 ई॰ में उन्हें दोबारा यही सम्मान दिया गया।

★★★★

जैसे ही मेरी समझ ने आँखें खोलीं इस्लाम के हुस्न और सादगी ने मुझे प्रभावित करना शुरू कर दिया। मैं अगरचे एक ईसाई घराने में पैदा हुआ था और उसी माहौल में परवान चढ़ा था, लेकिन उस के शंका से भरे अक़ाइद ने मुझे कभी अपील नहीं किया। मैं अंधी अक़ीदत के मुक़ाबिले में दलील और आम अक़्ल Common sense को तरजीह (महानता) देता था, मगर ईसाईयत में उस का कहीं गुज़र न था।

जैसे जैसे अक़्ल मज़बूत होती गई मेरा जी चाहने लगा कि

अपने ख़ालिक़ (पैदा करने वाला) से मेरे संबंध ख़ुशगवार हों, मगर चर्च आफ़ रूम या चर्च आफ़ इंगलैन्ड दोनों में यह योग्यता न थी कि वह ऐसा माहौल क़ायम कर सकें। यहाँ ख़ुदा तक पहुँचने की राहें बड़ी पेचीदा (जटिल) तैय करने के क़ाबिल न थीं इस लिये उन के तसव्वुर ही से घिन आने लगी और मैं बड़ी बेचैनी से किसी ऐसे सीधे रास्ते को तलाश करने लगा जो मुझे बड़ी मंज़िल तक ले जा सके।

ख़ुदा का शुक्र है मुझे इस्लाम की सूरत में यह सीधा रास्ता मिल गया। पहली ही नज़र में मुझे उस की दिलकशी व ख़ुबसूरती ने घायल कर दिया और फिर जब मैं ने इस्लाम कुबूल किया तो असल में उस के पीछे दिल और अन्तरात्मा का बहुत ज़्यादा दख़ल शामिल था। मैं फिर ख़ुदा का शुक्र अदा करता हूँ कि उस वक़्त से मैं अपने आप को पहले के मुक़ाबिले में बेहतर और सच्चा इंसान समझता हूँ। कम पढ़े लिखे और फ़िरक़ा परस्त लोग जितना इस्लाम से बिदकते हैं किसी और धर्म से नहीं बिदकते। लेकिन काश यह लोग जानते कि इस्लाम ही वह दया व कृपा का धर्म है जो कमज़ोर के लिये ताक़तवर सहारा और हर ग़रीब का अमीर दोस्त है इंसानियत आम तौर पर तीन वर्गों में बटी होती है एक वह तबक़ा जो मालदार और धनवान होता है और दूसरा वह जिसे ज़िन्दगी गुज़ारने के लिये सख़्त मेहनत करनी पड़ती है और तीसरा बेरोज़गार और कंगाल होता है और इस तीसरे वर्ग की दुनिया में ज़्यादती है।

इस्लाम यूँ तो इन तीनों वर्गों के लिये कृपा व बरकत का कारण है मगर आख़िर में ज़िक्र किये गये वर्ग पर उस की ख़ास दया की नज़र है। यह इंसानियत की इज़्ज़त करना सिखाता है इस के काम करने का अंदाज़ बिल्कुल तामीरी है और विनाश का यहाँ गुज़र तक नहीं मिसाल के तौर पर एक ऐसा ज़मीनदार जो पहले

ही बहुत अमीर हो, उसे ज़मीन खेती करने की ज़रूरत भी न हो वह अगर ज़मीन को कुछ मुद्दत के लिये यूँही बग़ैर खेती किये छोड़ दे तो यह ज़मीन सरकारी क़ब्ज़े में चली जाती है और इस्लामी क़ानून के मुताबिक़ उन लोगों को दे दी जाती है जो उस में खेती करते हों।

इस्लाम अपने मानने वालों को जुये और हर उस खेल से सख़्ती से मना करता है जो सिर्फ़ इत्तिफ़ाक़ पर निर्धारित हो यह नशाआवर चीज़ों को हराम क़रार देता है और सूद को भी हराम क़रार देता है क्योंकि इन बुराईयों में पड़ कर इंसान मुसीबतों व परेशानियों का शिकार हो जाता है इस तरह इस्लाम किसी शख़्स को इजाज़त नहीं देता कि वह दूसरे की बेबसी या बेचारगी का फ़ायदा उठाये और यूँ इस्लामी समाज में कोई धटिया हरकत करने का जुर्म करे।

इस्लाम वफ़ादारी और बड़ी संतुलित ज़िन्दगी गुज़ारने का क़ाइल है इस्लाम के नज़दीक अक़ीदा बग़ैर अमल के बेकार है अक़ीदे में उसी वक़्त जान पड़ती है जब हम उस पर अमल करते हैं। ज़ाती आमाल (कर्म) इस दुनिया में भी नताइज की बुनियाद हैं और आख़िरत में भी। हम सब को अपनी अपनी सूली ख़ुद उठानी होगी और किसी को दूसरे के गुनाह पर सूली नहीं दी जायेगी।

इस्लाम इंसान को यह ख़ुशख़बरी देता है कि वह मासूम और हर क़िस्म के गुनाहों से पाक पैदा होता है इस की शिक्षा यह है कि मर्द और औरत दोनों एक ही माद्दे से पैदा होते हैं एक ही तरह की रूह के भारवाहक होते हैं और जहाँ तक ज़ेहनी, रूहानी और अख़लाक़ी तरक़्क़ी का संबंध है दोनों एक ही तरह की योग्यता से सम्मानित किये गये हैं।

जहाँ तक इस्लाम की आलमी बिरादरी का संबंध है उस पर

मुझे कुछ कहने की कोई ज़रूरत नहीं। यह बात यक़ीनी है जिस से हर शख़्स परिचित है कि बन्दा व साहब हों या मुहताज व ग़नी (मालदार) इस्लाम की नज़र में सब बराबर हैं। ख़ुद मेरा बार बार का तजर्बा है कि मेरे मुसलमान भाई मेरे लिये इज़्ज़त व शर्फ़ का एक ख़ास एहसास रखते हैं और मैं उन की किसी भी बात पर विश्वास कर सकता हूँ उन्हों ने हमेशा मुझ से मुरव्वत व मुहब्बत का बरताव किया है और जब भी मैं उन के बीच होता हूँ उन्हें अपने सगे भाइयों की तरह पाता हूँ।

मुख़्तसर यह कि जहाँ इस्लाम रोज़ाना की ज़िन्दगी में अपनी उपासना करने वालों की साफ़ सुथरी और रोशन रास्ते की तरफ़ रहनुमाई करता है वहाँ आज की नाम निहाद ईसाईयत नज़रियाती एतबार से अपने मानने वालों को यह शिक्षा देती है कि इतवार का एक दिन तो वह ख़ुदा की इबादत (PRAY) करें और हफ़्ते के बाक़ी दिन ख़ुदा के बन्दों का शिकार (PREY) में मशग़ूल रहें।

In conclusion I would like to say that whereas Islam guides humanity in the daily workaday life, the present-day so called christ-ianity, indirectly in theery and invariably in practice, teaches its Followers, it would seem, to pray to Good on Sundays and to prey on his creatures for the rest of the week.

☆☆☆☆☆

डॉक्टर अब्दुल्लाह अलाउद्दीन (जर्मनी)

मुझे इस्लाम कुबूल किए 12 वर्ष हो चुके हैं।

मैं 10 साल की उम्र में ज़ेहनी तौर पर स्वतंत्र हो गया था और नैयायिक तौर पर सोच सकता था। मुझे जरमन प्रोटेस्टेन्ट तरीक़े के मुताबिक़ कलीसा में दाख़िल किया गया, मैं ने पादरी से तसलीस यानी तीन ख़ुदाओं ख़ुदा, बेटा और रूहुल-कुदुस (पवित्र रूह) की तशरीह सुनी कि यह तीन भी हैं और एक भी। मामूली ज़िहानत रखने वाला बच्चा भी जानता और समझता है कि एक तीन नहीं हो सकते और तीन को एक नहीं कहा जा सकता।

मेरे दिल ने कहा यह इलहामी बात नहीं हो सकती किसी आदमी ने यह अक़ीदा अपने पास से बनाया है।

पादरी साहब ने बताया कि इब्ने मरयम ने सूली पर चढ़ कर कफ़्फ़ारा यानी कुर्बानी दी ताकि उन की उपासना करने वाले निजात हासिल करें।

मैं ने जब पादरी से इस बात को समझने की कोशिश की तो उन्हों ने समझाने के बजाये क्रोधित हो कर कहा तू ख़ुदा के वुजूद का क़ाइल नहीं।

मैं समझ गया की पादरी पेट का बन्दा है उस को ख़ुदा और धर्म से कोई वास्ता नहीं। आख़िरकार मैं ने ख़ुद बाईबल का अध्ययन शुरू किया। इंजील व तौरात के बाद मैं ने बुद्धमत की

किताबें पढ़ीं। उस वक़्त तक मैं इस्लाम से बिल्कुल परिचित न था।

मेरी बहुत ज़्यादा इच्छा थी कि मैं किसी तरह दुनिया बनाने की हक़ीक़त को समझ सकूँ, इंसान की ज़िन्दगी का मक़सद क्या है, इंसानी ज़िन्दगी का मक़सद हैवानी ज़िन्दगी से बहुत ऊँचा होना चाहिये, और इंसान को अल्लाह तआला ने आख़िर किस लिये पैदा किया।

मैं दो वर्ष तक रात दिन अध्ययन करता रहा। 24 घंटे में मुश्किल से दो घंटे सोता था नींद उड़ाने के लिये तेज़ दवाएँ खाईं। अपनी आँखों के पेपोटों में दिया सलाई इस तरह फंसाई कि आँखें बन्द न हों, इस तरह मेरी सेहत भी ख़राब हो गई और मुझे कुछ हासिल भी नहीं हुआ, लेकिन जब मैं ने अपनी कुव्वते इरादी से काम लेना छोड़ दिया तो ख़ुदा की कृपा ने मेरी रहनुमाई की। मैं एक जर्मन जहाज़राँ की रिपोर्ट पढ़ रहा था, जिसे मशरिक़ी वुस्ता के अकसर मुमालिक (देश) देखने का मौक़ा मिला था जर्मन जहाज़राँ ने अपनी मालूमात का सिक्का बठाने के लिये सूरह इख़लास का मतन (मूलग्रंथ) और अनुवाद भी लिख दिया था। उस के जर्मन अनुवाद पर जब मेरी नज़र पड़ी तो मैं हक़ीक़त को इस तरह सामने पा कर दंग रह गया लिखा था:-

> *"ऐ पैग़म्बर कह दो अल्लाह सिर्फ़ एक है (वही अल्लाह जिसे इंसान शुरू पैदाइश से ही ढूँढता चला आ रहा है) न अल्लाह को किसी ने जना और न ही अल्लाह ने किसी को जना, इस दुनिया में उस की कोई मिसाल ही नहीं"।*

मैं ने ज़िन्दगी में पहली बार पढ़ा कि न अल्लाह को किसी ने पैदा किया और न ही अल्लाह ने अपना कोई बेटा पैदा किया। यह आयत पूरी तरह से मेरी समझ में आ गई। लेकिन मुझे

इस्लाम और उस की शिक्षाओं का कुछ भी इल्म न था, इस लिये मैं ने किसी क़रीबी इस्लामी मुल्क में जा कर मुसलमानों के धर्म की जानकारी हासिल करने का इरादा किया। शायद मुझे वह सच्चा धर्म मिल जाये जिस की मुझे 25 साल से तलाश है।

मैं एक ग़रीब आदमी हूँ इस लिये जर्मनी से इस्तिम्बोल तक मैं ने साईकल पंर सफ़र किया मैं इस्तिम्बोल पहुँचा और कुरआन शरीफ़ को इस ख़याल से पढ़ना शुरू किया कि पवित्र किताब (बाइबल) तौरात, ज़बूर और इन्जील की जिस तरह ग़लतियाँ तलाश करता रहा हूँ उसी तरह इस किताब की ग़लतियाँ भी ढूँढूँगा। लेकिन जूँ जूँ उस की तिलावत और अध्ययन करता गया, मेरे ईमान में बढ़ोतरी होती चली गई कि यही वह आख़िरी और सच्ची हिदायत है जिस की मुझे तलाश थी और मुझे यक़ीन हो गया कि यह अल्लाह तआला का कलाम है। मैं 1954 ई० में इस्तिम्बोल ही में मुसलमान हो गया। अलहमदु-लिल्लाह मुझे इस्लाम की दौलत नसीब हो गई।

(बहवाला रोज़नामा “मशरिक़” 1967 ई०)

मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी (हिन्दुस्तान)

महान धार्मिक विद्यावान हिन्दुस्तान को आज़ाद कराने के आनदोलन में भाग लेने वाले पहले सफ़ के मार्गदर्शक और विचारक व सुधारक मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी जिन का परिचय कराने की ज़रूरत नहीं। आप एक सिख ख़ानदान से संबंध रखते थे मगर इस्लाम कुबूल करने के बाद सारी योग्यताएँ इस्लाम की तरक्क़ी और उस को फैलाने के लिये समर्पण कर दीं और वतन की आज़ादी के लिये सब कुछ दाव पर लगा दिया और इस सिलसिले में मुल्कों मुल्कों की ख़ाक छानते रहे, चुनाचे अफ़ग़ानिस्तान, तुर्की, रूस, सुइज़रलैन्ड और हिजाज़ में कई वर्षो तक रहे। गुलामी से निजात पाने और मुसलमानों को पस्ती व हतभाग्यता से रिहाई दिलाने की कोशिशें करते रहे। आख़िरी उम्र में देहली में हमेशा के लिये रहने लगे थे। 1944 ई॰ में मृत्यु पाई।

☆☆☆☆

मैं 10 मार्च 1872 ई॰ को ज़िला सियालकोट (पंजाब) के गाँव चियानवाली में एक सिख घराने में पैदा हुआ मेरे बाप राम सिंघ मेरे पैदा होने से चार महीने पहले ही मृत्यु पा गये थे। दो साल बाद दादा की भी मृत्यु हो गई तो मेरी माँ मुझे मामूँ के पास जाम पुर (डेरा ग़ाज़ी ख़ान) ले गई। मेरे मामूँ वहाँ पटवारी थे। मेरे

दादा सिख हुकूमत में अपने गाँव के कर्मचारी थे।

मेरी शिक्षा 1878 ई० से जाम पुर के उर्दू मिडिल स्कूल से शुरू हुई ख़ुदा के फ़ज़्ल से मैं पढ़ाई में बहुत अच्छा था और मेरी गिन्ती अच्छे छात्रों में होती थी।

1884 ई० में जबकि मेरी उम्र सिर्फ़ 12 वर्ष की थी मुझे स्कूल के एक आरिया समाज हिन्दू लड़के के हाथ में तोहफ़तुल-हिन्द नज़र आई। मेरी चाहत पर उस ने मुझे यह किताब पढ़ने के लिये दे दी जिसे मैं ने बड़े ध्यान और दिल लगा कर पढ़ा ख़ास तौर से उस हिस्से ने बहुत प्रभावित किया जिन में नौमुस्लिमों के हालात थे इस्लाम की सच्चाई ने मेरे दिल व दिमाग़ पर एक नक़्श क़ायम कर दिया।

डेरा ग़ाज़ी ख़ाँ में मुसलमानों की संख्या ज़्यादा थी और यह लोग धर्म के सच्चे मुग्ध (आशिक़) और पक्के अक़ीदे वाले थे इस माहौल ने वहाँ के ग़ैर मुस्लिमों को काफ़ी प्रभावित कर रखा था। चुनाचे नज़दीकी गाँव कोटली मुग़लाँ के कुछ हिन्दू दोस्तों ने जो मेरी तरह "तोहफ़तुल-हिन्द" के चाहने वाले थे, मुझे शाह इस्माईल शहीद की "तक़वियतुल-ईमान" पढ़ने को दी। उस के अध्ययन से मैं इस्लामी तौहीद और प्रान्क शिर्क के फ़र्क़ को ठीक तरह से समझ गया। मैं ने शिद्दत से महसूस किया कि जिन चीज़ों को मैं दिल से ठीक समझता हूँ और मेरी अक़्ल उन पर यक़ीन रखती है वह चीज़ें हिन्दुओं और सिखों के धार्मिक तौर तरीक़ों से ज़्यादा इस्लाम में हैं। यह मेरा अपना तजर्बा और एहसास था। और ऊपर ज़िक्र की हुई किताबों ने इस तरफ़ मेरी रहनुमाई की थी। मैं ने देखा कि सिख भी ख़ुदा को एक मानते हैं और मुसलमान भी, मगर इस्लाम का ख़ुदा को एक मानना सिखों से बुलंद है। इंसानी बराबरी दोनों धर्मो मे मौजूद है मगर इस्लाम ने बराबरी को जिस तरह अमली शक्ल दी है वह सिखमत से कहीं ज़्यादा बुलंद

और महान है। समाज की नुमाइशी रस्मों से दोनों धर्मों को नफ़रत है मगर मैं अकसर महसूस करता था कि सिखमत ने अपने आप को उन रूसूम में बुरी तरह जकड़ लिया है और अब इस धर्म का बाबा गुरू नानक की पवित्र शिक्षाओं से बस नाम का संबंध है।

मैं इन बातों पर काफ़ी समय तक विचार करता रहा। कितनी ही रातें मैं ने आँखों में काट दीं मुझे यक़ीन हो गया था कि जिस धर्म को मेरी माँ बहनें और मामूँ मानते हैं, वह सच्चाई पर निर्धारित नहीं है जबकि इस्लाम जो ग़ैरों का धर्म है वह बहरहाल सच्चा और बरहक़ है। अब करूँ तो क्या करू, जाऊँ तो कहाँ जाऊँ ?

इन्हीं दिनों एक मोलवी साहब ने मोलवी मुहम्मद साहब लखनऊ की किताब "अहवालुल-आख़िरत" पंजाबी में पढ़ने को दी। "तोहफ़तुल-हिन्द" और "अहवालुल-आख़िरत" के बार-बार के अध्ययन ने आख़िरकार मुझे फ़ैसले तक पहुँचा दिया। मैं ने नमाज़ सीख ली और तोहफ़तुल-हिन्द के ग्रंथकार के नाम पर अपना नाम उबैदुल्लाह रख लिया। यह 1887 ई॰ का ज़िक्र है और उस वक़्त मैं आठवीं जमाअत का छात्र था इरादा था कि अगले साल जब किसी हाई स्कूल में तालीम के लिये जाऊँगा तो इस्लाम क़ुबूल करने का एलान कर दूँगा।

मगर जज़बात ने समझाया कि और ज़्यादा देर करना मुनासिब नहीं, क्या ख़बर मौत उस वक़्त तक की मुहलत दे या न दे। चुनांचे 15 अगस्त 1887 ई॰ की सुब्ह को जबकि मेरी माँ बाहर रसोई में बैठी ख़ाना पका रही थी। मैं किसी बहाने चुपके से बाहर निकला और ज़िन्दगी के नये सफ़र पर चल खड़ा हुआ। मंज़िल नामालूम थी। मेरे साथ कोटली मुग़लाँ का एक दोस्त अब्दुल क़ादिर था। हम दोनों अरबी मदरसा के एक छात्र के साथ कोटला

रहमशाह (मुज़फ़्फ़र गढ़) पहुँचे। वहाँ 9 ज़िलहिज्जा 1304 हिजरी को मुझे पवित्र स्नान दिया गया। वहीं मालूम हुआ कि मेरे घर वाले मेरी तलाश में जगह जगह छापे मार रहे हैं। चुनाचे मैं सिंध की तरफ़ चला गया और फिर चौंडी शरीफ़ में हाफ़िज़ मुहम्मद सिद्दीक़ साहब की ख़िदमत में पहुंच गया।

कुछ महीने चौंडी शरीफ़ में हाफ़िज़ साहब के साथ गुज़रे फ़ायदा यह हुआ कि इस्लामी मुआशरत मेरे लिये इस तरह तबीअते सानिया बन गई जिस तरह एक पैदाइशी मुसलमान की होती है। हज़रत ने एक दिन मेरे सामने अपने लोगों को मुख़ातब करते हुये कहाः "उबैदुल्लाह ने अल्लाह के लिये हमें अपना माँ बाप बना लिया है"। इन की इस बात से मैं बहुत प्रभावित हुआ, और यह बात आज तक मेरे दिल में सुरक्षित है। मैं इन्हें अपना दीनी बाप समझता हूँ और इन्हीं के लिये मैं ने सिंध को हमेशा के लिये अपना वतन बना लिया और सिंधी कहलाया।

डॉक्टर अली सलमान बेनोइस्ट (फ़्रान्स)

(Ali Salman Benoist)

मैं धार्मिक एतबार से फ़्रन्च कैथोलिक ख़ानदान से संबंध रखता था, मगर डॉक्टर आफ़ मेडीसन की हैसियत से मेरे विचार ठोस साइंसी और मनतिक़ी रंग में रंग गये थे। ज़िन्दगी के किसी मुआमिले को तवह्हुमाना (शंका) अंदाज़ में बग़ैर सोचे समझे कुबूल करना मुझे मंज़ूर न था। इस का यह मतलब नहीं कि मैं ख़ुदा का इंकार करता था, लेकिन ईसाईयत और ख़ास तौर से कैथोलिक फ़िरक़े के अक़ाइद ख़ुदा के एहसास को मुतशक्किल (किसी चीज़ की शक्ल व सूरत बना कर पेश करना) नहीं होने देते थे। मेरा विजदान (जानने की कैफ़ियत) कहता था कि ख़ुदा एक है और तसलीस और हज़रत ईसा की उलूहियत के अक़ाइद सब बेकार हैं।

फिर भी मैं अभी तक इस्लाम से परिचित न हुआ था, लेकिन एक बार किसी तरह जब मुझे पता चला कि इस्लाम में तौहीदे बारी (ख़ुदा को एक मानना) बुनियादी अक़ीदा की हैसियत से शामिल है तो मैं चौंक उठा। जानकारी हासिल की तो पता चला कि मैं इस्लामी कलमा के एक हिस्सा लाइलाहा इल्लल्लाह को तो पहले से ही मानता चला आ रहा था और कुरआन के इस फ़ैसला की हुई बात पर पूरे तौर से यक़ीन रखता था।

قُلْ هُوَ اللّٰهُ اَحَدٌ. اَللّٰهُ الصَّمَدُ. لَمْ يَلِدْ وَلَمْ يُوْلَد. وَلَمْ يَكُنْ لَّهٗ كُفُوًا اَحَد.

"कुल हुवल्लाहु अहद। अल्लाहुस्समद। लम यलिद वलम यूलद। व-लम यकुल्लहू कुफूवन अहद।"

(यानी ख़ुदा एक है वह बेनियाज़ है उस का कोई बेटा है न बाप है और कोई उस का किसी एतबार से हमपल्ला नहीं है)।

इन जानकारियों से मुझे जो सुकून हासिल हुआ उस का आप शायद अंदाज़ा न कर सकें, एक रोशनी थी जो अंधेरों में मेरी रहनुमाई के लिये लपक रही थी मेरे दिल में इस्लाम के लिये अक़ीदत व हमदर्दी के जज़्बात पैदा हो गये और मैं ने इरादा कर लिया कि इस्लाम का लम्बा चौड़ा अध्ययन किया जाये।

ईसाईयत में पादरी जिस तरह ज़बरदस्ती ख़ुदाई इख़तियारात के मालिक बन जाते हैं और क़ीमत ले कर लोगों के गुनाहों की बख़्शिश करते हैं इस से मैं सख़्त नाराज़ था। मैं ने देखा कि इस्लाम में ऐसी कोई फ़ुज़ूल बात नहीं ईसाईयत का दूसरा नुक़्ता जिस ने मुझे इस धर्म से दूर कर दिया वह शिर्कते इशा-ए-रब्बानी का अक़ीदा है एक रोटी को न सिर्फ़ पवित्र बल्कि हज़रत ईसा क़रार दे कर उसे खाना इतना ही मज़हका ख़ेज़ है जितना अफ़रीक़ा के वहशी क़बाइल का वह अमल (कर्म) जिस के तहत वह अपने धार्मिक रहनुमा को उस की मौत के बाद यह समझ कर खा जाते हैं कि उस की शख़सियत व किरदार की तमाम ख़ूबियाँ उस का गोश्त खाने वालों में प्रवेश कर जाएँगी। ज़ाहिर है इस साइंसी दौर में इन ख़ुराफ़ात को कुबूल नहीं किया जा सकता। ईसाई धर्म में शारीरिक सफ़ाई के बारे में भी पूरी ख़ामोशी पाई जाती है, और इबादत से पहले भी उस का कोई एहतमाम नहीं किया जाता। मैं अकसर सोचता कि यह तो असल में ख़ुदा के ख़िलाफ़ नफ़रत का एक इज़हार है मगर इस्लाम के अध्ययन के बाद मुझे बेहद ख़ुशी हुई कि यहाँ शारीरिक सफ़ाई पर बहुत

ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है और इस के बग़ैर इबादत को बेकार समझा जाता है इसी तरह कैथोलिक अक़ीदे में वैराग्य को ख़ास पसंदीदगी की नज़र से देखा जाता है और पादरियों के लिये तो शादी शुदा ज़िन्दगी बिल्कुल हराम समझी जाती है मगर इस्लाम इस ग़ैर फ़ितरी बल्कि ग़ैर इंसानी तरीक़े का सख़्त विरोधी है और उस के बग़ैर ईमान को मुकम्मल नहीं समझा जाता।

इस्लाम को मुकम्मल तौर पर समझने के लिये मैं ने कुरआन का अध्ययन शुरू किया उसी सिलसिले में मैं ने मालिक बिन नबी की कुरआन के बारे में फ़्रान्सीसी पुस्तक भी पढ़ डाली। मुझे यक़ीन हो गया कि कुरआन ख़ुदा की सच्ची किताब है चुनाचे मुझे यह देख कर ख़ुशगवार हैरत हुई कि अगरचे कुरआन को उतरे हुये 13 शताब्दियाँ गुज़र गईं लेकिन उस की कुछ आयतें मुख़तलिफ़ मुआमलात में बिल्कुल वही राय देती हैं जो नये फ़िक्र के तहक़ीक़ करने वाले दे सकते हैं। इन हक़ीक़तों ने मेरे दिल की दुनिया बदल कर रख दी और मैं ने इस्लामी कलमे के दूसरे हिस्से मुहम्मदुर-रसूलुल्लाह का भी इक़रार कर लिया।

यही कारण थे जिन की बिना पर मैं ने 20 फ़रवरी 1953 ई० को पैरिस की मस्जिद में हाज़िरी दी और इस्लाम कुबूल करने का एलान कर दिया। मस्जिद के मुफ़्ती ने मेरा इस्लामी नाम अली सलमान रखा मैं ने अपने आप को मुसलमान की हैसियत रजिसटर करा लिया।

मैं अल्लाह की इस इनायत पर बेहद शुक्र अदा करता हूँ और ख़ुशी के साथ दोबारा एलान करता हूँ कि:-

اَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَ اَشْهَدُ اَنَّ مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَ رَسُوْلُهٗ.

अशहदो अल-लाइलाहा इल्लल्लाहु व-अशहदु अन्ना मुहम्मदन अबदुहू व-रसूलुहू।

डॉक्टर ग़रीनिया (फ़्रान्स)

मिस्र के प्रसिद्ध पत्रकार और साहित्यकार महमूद बे मिस्री बयान करते हैं:

"मैं कई साल तक फ़्रान्स में रहा और अपने मिलने वालों से एक डॉक्टर की तारीफ़ सुनता रहा। शराफ़त, सच्चाई, रोशन ख़यालों, बुलंद हौसला, नेक तबीअत, दयालू, मेहमानों की आवभगत, कोई भी इंसानी ख़ूबी ऐसी न थी जिस से मेरे मुलाक़ाती उसे निस्बत (तुलना) न देते हों। मैं समझा बीमारों पर उस की दया आम होगी मगर तअज्जुब है कि बीमारों से बढ़ कर तंदुरूस्त उस की मुहब्बत के मरीज़ लगते थे।

डॉक्टर साहब का नाम ग़रीनिया था वह फ़्रान्सीसी संसद के सदस्य भी थे यह उन की मुहब्बत का ज़ाहिर सुबूत था लेकिन लोग कहते थे कि डॉक्टर की नेकदिली और साफ़ तबीयत इस सम्मान से बहुत बुलंद है चुनाचे संसद का माहौल और उस के सदस्यों का आम चरित्र और खोखली तक़रीरें उन्हें रास न आई उन्हों ने संसद से दूरी इख़्तियार कर ली। पैरिस की रिहाइश भी छोड़ दी और रौनक़ व शोहरत के इस मरकज़ को छोड़ कर फ़्रान्स के एक सुकून वाले गाँव में रहने लगे।

महमूद बे मिस्री लिखते हैं:-

जब मुझे इन हालात का ज्ञान हुआ और साथ ही पता चला

कि इस महान इंसान ने इस्लाम कुबूल कर लिया है तो दिल में आरज़ू पैदा हुई कि इस से मुलाक़ात की जाये और इस्लाम कुबूल करने का कारण मालूम किया जाये चुनाचे मैं उस गाँव में पहुँचा जहाँ डॉक्टर साहब रहते थे। मैं ने यह चीज़ भी बहुत ज़्यादा महसूस की कि उस बस्ती में डॉक्टर साहब की इज़्ज़त बहुत ज़्यादा है।

डॉक्टर ग़रीनिया को पहली नज़र देख कर ही दिल खुश हो गया। उन के माथे पर मुहब्बत और ख़ुश अख़लाक़ी के मासूम सितारे खेल रहे थे। अगरचे वह उस समय बहुत मशग़ूल थे, फिर भी बड़ी गर्मजोशी से मिले, ऐसी गर्मजोशी से जिस से इस्लामी भाईचारगी का नाम ज़िन्दा है। वह अपने काम से फ़ारिग़ हुये तो कुछ रस्मी बातों के बाद मैं ने पूछा "डॉक्टर साहब आप के इस्लाम लाने के कारण क्या हैं?"

"कुरआन पाक की सिर्फ़ एक आयत"। डॉक्टर साहब ने मुसकुराते हुये जवाब दिया। "तो क्या आप ने किसी मुसलमान विद्यावान से कुरआन पढ़ा और उस की किसी एक आयत ने आप पर यह असर किया?" मैं ने जानना चाहा।

"नहीं, मैं ने किसी मुसलमान से अब तक मुलाक़ात नहीं की"। डॉक्टर साहब ने कहा।

"फिर कुरआन की कोई तफ़सीर पढ़ी?"। मेरे सवाल में हैरानी भी शामिल थी।

"नहीं तफ़सीर भी नहीं पढ़ी"।

"तो फिर यह क़िस्सा कैसे हुआ?"

डॉक्टर साहब ने कहना शुरू किया:-

"मेरी जवानी समुन्द्री सफ़रों में गुज़री है, मुझे समुन्द्र के नज़ारों और सफ़रों का शौक़ इतना ज़्यादा था कि हमेशा मैं अपने

रात और दिन पानी और आसमान के बीच में बसर करता था और इतना ख़ुश था कि गोया मेरी ज़िन्दगी का मक़सद यही है। मेरा दूसरा मामूल किताबों के अध्ययन में मशग़ूल रहना था। जब मैं ख़ाली होता कोई किताब ले कर बैठ जाता। अध्ययन का यही शौक़ मुझे कुरआन के एक फ़्रान्सीसी अनुवाद तक ले आया यह अनुवाद मोसेवसा क़ारी के क़लम से था, मैं इस नुस्ख़े को पढ़ रहा था कि सूरह नूर की एक आयत पर नज़रें जम गई उस में एक समुन्द्री नज़ारे की कैफ़ियत बयान की गई थी मैं ने उस आयत को बहुत ही दिलचस्पी के साथ पढ़ा। उस आयत में किसी गुमराह शख़्स की हालत के बारे में एक निहायत ही अजीब मिसाल बयान की गई थी, यानी "गुमराह शख़्स कुफ़्र की हालत में इस तरह टामकटोईयाँ मार रहा था जैसे एक शख़्स अंधेरी रात में जबकि बादल भी छाये हुये हों और समुन्द्र की लहरों के नीचे हाथ पाँव मारता हो।

और वह आयत यह थीः-

اَوْ كَظُلُمَاتٍ فِى بَحْرٍ لُّجِيٍّ يَّغْشٰهُ مَوْجٌ مِّنْ فَوْقِهٖ مَوْجٌ مِنْ فَوْقِهٖ سَحَابٌ ط
ظُلُمٰتٌ بَعْضُهَا فَوْقَ بَعْضٍ ط اِذَا اَخْرَجَ يَدَهٗ لَمْ يَكَدْ يَرَاهَا ط (سورہ نور آیت ۴۰)

औ-कज़ोलोमातिन फ़ी बहरिल-लुज्जिय्यीन यग़शाहो मौजिम-मिन फ़ौक़िही मौजुन मिन फ़ौक़िही सहाबुन, ज़ोलोमातुन बअज़ोहा फ़ौक़ा बअज़िन, इज़ा अख़्रजा यदहू लम यकद यराहा। (सूरह नूर आयत 40)

अनुवादः *उस की मिसाल ऐसी है जैसे एक गहरे समुन्द्र में अंधेरा कि ऊपर एक मौज छाई हुई है उस पर एक और मौज, और उस के ऊपर बादल, अंधेरे पर अंधेरा छाया हुआ है आदमी अपना हाथ निकाले तो उसे भी न देखने पाये।*

जब मैं ने यह आयत पढ़ी तो मेरा दिल उम्दा उदाहरण और

बयान करने के अंदाज़ से बेहद प्रभावित हुआ और मैं ने ख़याल किया कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ज़रूर ऐसे शख़्स होंगे जिन के दिन और रात मेरी तरह समुन्द्रों में गुज़रे होंगे। लेकिन इस ख़याल के बावजूद मुझे हैरत थी और पैग़म्बरे इस्लाम के तरीक़े के गुण का एतराफ़ था कि उन्हों ने गुमराहों की आवारगी और उन की कोशिशों की बेहासिली को कैसे मुख़तसर मगर आसान और मुकम्मल शब्दों में बयान किया है गोया वह ख़ुद रात के अंधेरों, बादलों की घनी सियाही और मौजों के तूफ़ान में एक जहाज़ पर खड़े हैं और एक डूबते हुये शख़्स की बेहवासी को देख रहे हैं।

लेकिन उस के थोड़े ही दिनों के बाद मुझे मालूम हुआ कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पढ़े लिखे नहीं थे और उन्हों ने ज़िन्दगी भर कभी समुन्द्र का सफ़र नहीं किया था। इस जानकारी के बाद मेरा दिल रोशन हो गया, मैं ने समझा कि यह मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की आवाज़ नहीं बल्कि उस ख़ुदा की आवाज़ है जो रात के अंधेरों में हर डूबने वालों की बेहासिली को देख रहा होता है। मैं ने क़ुरआन का दोबारा अध्ययन किया और ख़ास तौर से ऊपर ज़िक्र की हुई आयतों का ख़ूब ग़ौर से विश्लेशण किया। अब मेरे सामने मुसलमान हुये बग़ैर कोई चारा ही न था। चुनाचे दिल से कलमा पढ़ा और मुसलमान हो गया"।

(बशुक्रिया "इस्लाम ज़िन्दा बाद")

☆☆☆☆☆

फ़ातिमा हेरीन (जर्मनी)

(Fatima Hereen)

मेरा जन्म 1934 ई० में हुआ। उस ज़माने में जर्मनी में एक नये फ़ैशन का आरंभ हुआ था। लोग हर तरह के चर्च (कैथोलिक या प्रोटेस्टेन्ट) की सदस्यता को छोड़ कर Gottglubi का धर्म इख़तियार कर रहे थे जिस का मतलब यह था कि ख़ुदा पर नाम के तौर पर विश्वास तो रखना मगर कर्मों की बुनियाद और इमारत उस के बिल्कुल विपरीत होना। मैं सात वर्ष की थी कि एक दिन एक बड़ी उम्र की लड़की ने मुझे बताया कि "ख़ुदा का कहीं वुजूद नहीं है"। उस उम्र में मुझे वह लड़की काफ़ी समझदार लगती थी, इस लिये उस की बात पर यक़ीन न करने का कोई कारण नहीं था इस से पहले मुझे यह पता भी चल गया था कि क्रिस्मस के मौक़ा पर "सानता कलाज़" के नाम से जो बूढ़ा ख़ुदा की तरफ़ से खिलौने ले कर आता है, वह सिर्फ़ बच्चों का बहलावा है और कुछ नहीं। इन दोनों बातों से धर्म और ख़ुदा पर से मेरा ईमान उठ गया और यह दुनिया ही मेरी तवज्जुहात का मरकज़ बन गई।

यह वह ज़माना था, जब दूसरी आलमी जंग अपने शबाब पर थी। दिन रात बमों के डरावने धमाके कानों के पर्दे फाड़ते रहते। माँ 24 घंटे फ़ौजियों के लिये दस्ताने और जुराबें बनाती और बाप कभी कभी एक दिन के लिये घर आता और फिर हफ़्तों के लिये

ग़ायब हो जाता। हमारे पड़ोस में एक बहुत बड़ा मकान था जो ज़ख़्मियों के अस्पताल में बदल चुका था। जंग ख़त्म हुई तो अजनबी क़िस्म के लोगों ने हमारे मकान पर क़ब्ज़ा कर लिया। जंग के विषय पर अमरीकी फ़िल्में आम दिखाई जाने लगीं जिन के दृश्य मुझे रुला देते और मेरा दिल पिघल कर मोम हो जाता अभी मैं यह फ़ैसला तो न कर सकी कि हक़ पर कौन है और ग़लत कौन, फिर भी हर चीज़ से ज़ुल्म और हिमाक़त टपकती नज़र आने लगी। ज़ेहन में बहुत सारे सवाल पैदा होते मगर किसी के पास उन का तसल्ली बख़्श जवाब न था। अब मुझे ख़ुदा बहुत याद आने लगा मगर मुसीबत यह थी कि वह कैथोलिक चर्च में नज़र आता था न प्रोटेस्टेन्ट अक़ाइद में और न ही ज़ाहिर तौर से पवित्र क़िस्म के पादरियों में। फिर समस्या यह भी थी कि इन सारे अक़ाइद की बुनियाद जिन उसूलों पर क़ायम थी वह सरासर अक़्ल के ख़िलाफ़ और असंभव दिखाई देते थे। और जिन शिक्षाओं का प्रचार किया जाता था वह बिल्कुल अमल करने के क़ाबिल न थीं ज़ाहिर है मैं उस अक़ीदे को क्यों क़ुबूल करती कि अगर मैं अपने गुनाहों का इक़रार कर भी लूँ और उन पर शर्मिन्दगी का इज़हार भी, तब भी मुझे ज़रूर सज़ा मिलेगी।

यह बात किसी चमतकार से कम नहीं कि जर्मनी की लड़कियों में से मैं ही वह पहली लड़की थी जो एक ऐसे यूरोपियन नवजवान से मिली जिस ने सात वर्ष पहले इस्लाम क़ुबूल कर लिया था। पहली ही मुलाक़ात में मैं ने उस के धर्म के बारे में पूछा और जब मुझे पता चला कि वह इस्लाम धर्म की उपासना करने वाला है तो मैं ने इस्लाम के बारे में जानकारी हासिल करनी चाही। उन दिनों तमाम धर्मों की तरफ़ से मायूस हो कर मैं रूहानी तौर पर अपने आप को ज़ख़्मी महसूस कर रही थी। चुनाचे जब उस नवजवान ने इस्लाम शब्द के अर्थ की वज़ाहत की

यानी बग़ैर किसी ख़ारिजी ज़बरदस्ती के अल्लाह की हाकमियत के सामने सिर झुका देना, तो यूँ लगा जैसे मेरे अन्दर कोई रोशनी करवट लेने लगी है। फिर उस ने मुझे बताया कि दुनिया की तमाम मानवजाति यानी इंसान, हैवानात, दरख़्त वग़ैरा, खाना व पीना, नस्ल की बढ़ोतरी और दूसरी माद्दी ज़रूरियात की हद तक सख़्ती के साथ ख़ुदा के क़ानून के पाबन्द हैं और यूँ बुनियादी तौर पर मुसलमान हैं। अगर इन कामों में वह ख़ुदाई क़ानून की अवज्ञा (ख़िलाफ़वर्ज़ी) करेंगे तो अपना वुजूद खो देंगे। यह सिर्फ़ इंसान है जो रूहानी तौर पर भी मुसलमान होने की योग्यता रखता है और इस मुआमिले में उस पर कोई ज़बरदस्ती नहीं वरना जहाँ तक माद्दी ज़रूरतों का संबंध है वह भी ख़ुदा के क़ानून का इसी तरह पाबन्द है जिस तरह दूसरी मानवजाति।

यह बात बड़ी ज़बरदस्त थी इसे कोई भी ठीक अक़्ल रखने वाला झुटला नहीं सकता। इस्लाम की दूसरी शिक्षाओं में भी मुझे अक़्ले आम (COMMON SENSE) की यही कारफ़रमाई नज़र आई। उस के बाद मैं ने जर्मन ज़ुबान में इस्लाम पर वह सारी किताबें पढ़ डालीं जो ग़ैर मुतअस्सिब और न्याय का मिज़ाज रखने वाले ग्रंथकारियों ने लिखी थीं। ख़ास तौर से मुहम्मद असद की किताब "A ROAD TO MAKKAH" ने मेरे ज़ेहन पर गहरे प्रभाव डाले और मुझे पता चल गया कि इस्लाम की हर शिक्षा अपने पसमंज़र में कोई न कोई ज़बरदस्त हिकमत रखती है साथ ही वह नवजवान जो अब मेरे शौहर हैं, के लेकचर भी जारी रहे वह हर सवाल का जवाब तशरीह और विस्तार के साथ देते यहाँ तक कि ख़ुदा ने मुकम्मल तौर पर दिली सुकून अता फ़रमा दिया और मैं मुसलमान हो गई।

दिली तौर पर तो मैं पहले ही मुसलमान थी। अब मैं ने अंदाज़ा करना चाहा कि क्या मैं इस्लामी नियमों पर अमल भी कर

सकती हूँ या नहीं, चुनाचे इस्लाम कुबूल करने के बाद 1959 ई० का पहला रमज़ान आया तो मैं ने रोज़े रखने का इरादा कर लिया, उस वक़्त तक मुझे यह काम सब से मुश्किल और सख़्त लगता था मगर ख़ुदा का शुक्र है कि मैं ने सारे रोज़े पाबन्दी से रखे और यूँ मुझे एहसास हो गया कि जब कोई काम अल्लाह की मुहब्बत के साथ किया जाता है तो वह इतना मुश्किल नहीं रहता, जितना शुरू में दिखाई देता है।

इस्लाम कुबूल करने के बाद हम दोनों मियाँ बीवी ने जर्मनी छोड़ कर किसी इस्लामी देश में चले जाने का इरादा कर लिया हमें बहुत ज़्यादा एहसास हुआ कि जब तक हम माली तौर पर आज़ाद व ख़ुद मुख़तार नहीं होंगे हम यहाँ इस्लामी उसूलों पर अमल नहीं कर सकते मिसाल के तौर पर मेरे शौहर एक फ़र्म में मुलाज़िम थे उन्हों ने ज़ोहर की नमाज़ के लिये सिर्फ़ 15 मिनट की छुट्टी कर ली तो उन की मुलाज़मत ख़तरे में पड़ गई। फिर उन के दफ़तर में तीन लड़कियाँ सिक्रेटरी की हैसियत से काम करती थीं और पर्दे के इस्लामी तक़ाज़े सख़्त मजरूह होते थे ख़ुद मेरे लिये उस सोसाइटी में पर्दा करना सख़्त दुशवार हो गया।

हम ने कई इस्लामी देशों में चले जाने की कोशिश की और आख़िरकार यह पाकिस्तान था, जहाँ हमें पनाह मिली। यहाँ मेरे शौहर को एक अच्छी मुलाज़मत मिल गई और हम इस नये देश में चले आये। मैं ने अपनी माँ, बाप, भाईयों और बहनों को छोड़ा था, वतन और उस की रंगीनियों को छोड़ा था और यूरोपियन समाज की तमाम आज़ादियों लज़्ज़तों और राहतों को ठोकर मारी थी मगर मैं बहुत ख़ुश थी और नाक़ाबिले बयान क़िस्म का रूहानी सुकून महसूस कर रही थी।[1]

---

1. फ़ातिमा हेरीन जल्द ही वापस जर्मनी चली गई जहाँ वह इस्लाम धर्म का प्रचार करने में मशग़ूल हैं।

यह सारी दास्तान सुनाने का मतलब यह है कि मग़रिब की सारी चमक दमक और ख़ुशहाली इस्लाम की नेमत के सामने बिल्कुल कुछ भी नहीं है इसी में रूहानी ख़ुशी है। इसी में दुनियावी बरकतें हैं और इसी में आख़िरत में निजात भी।

☆☆☆☆☆

मुहम्मद अमीन (इंगलिस्तान)

सब तारीफ़ें अल्लाह रब्बुल आलमीन के लिये और हज़ारहा दरूद सलाम हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम और दूसरे अंबियाए किराम पर। आज मैं अपने मसीही भाईयों को यह बात बताना चाहता हूँ कि मैं ने इस्लाम धर्म को लम्बे और गहरे ग़ौर व फ़िक्र के बाद कुबूल किया है मुझे कभी किसी मुसलमान ने इस्लाम की दावत नहीं दी, बल्कि मेरी 40 वर्ष की तहक़ीक़ ने साबित कर दिया कि यह धर्म ज़्यादती और कमी से बचते हुये संतुलन और बराबरी की तालीम देता है इस के विपरीत मसीहिय्यत कमी और ज़्यादती में मुबतला है और उस ने अंबिया की असल शिक्षा को मिटा दिया है यही वजह है कि मैं ने उसे छोड़ दिया"।

★★★★

मेरे पिता विलियम जान शाही ख़ानदान से संबंध रखते थे मेरी माँ एडमरल फ़टर जार्ज के सी, वी, ओ की अकेली बेटी और फ़िल्ड मार्शल हज़रायल हाईनस पुराने डेवक आफ़ केम्बर्ज की पोती थीं। यह डेवक आफ़ केम्बर्ज मलका विकटोरिया के रिश्ते में भाई लगते थे। मेरा जन्म 1907 ई० में फ़्रान्स में हुआ मेरे पिता की ख़्वाहिश थी कि मैं पादरी बनूँ और ख़ुदावंदे यसूअ मसीह की उद्घोषणा करूँ, चुनाचे मैं 8 वर्ष का था जब उन्हों ने मुझे इस

मक़सद के लिये कलीसा के हवाले कर दिया, जहाँ 25 वर्ष की उम्र तक ईसवी धर्म की शिक्षा दी गई और मैं ने उस में इतनी उसतादाना महारत हासिल कर ली कि दूर दूर से मर्द और औरतें मेरा वस्त्र छूने और बरकत हासिल करने के लिये आने लगे।

शिक्षा पूरी हुई तो मुझे मग़रिबी हिन्दुस्तान में पुर्तगेज़ी नवआबादी गोवा में भेज दिया गया। हिन्दुस्तान क़ायम होने के दौरान प्रचार के साथ साथ मैं ने दूसरे धर्मों का अध्ययन भी किया। तबलीग़ी फ़राइज़ के सिलसिले में मुझे बम्बई, लखनऊ, जबलपुर, हैदराबाद दकन, मदरास और आसाम के अलावा बरमा, सियाम और मलाया में भी बार-बार जाना पड़ा। मेरी तबलीग़ी कोशिशें कभी बेकार नहीं गई और कितने ही सादा दिल लोग मसीहिय्यत की गोद में आते चले गये।

मुझे अध्ययन का शौक़ तो था ही, एक दिन एक दोस्त की लाइब्रेरी में सैल का अनुवाद किया हुआ कुरआन देखा तो उसे ले कर पढ़ने बैठ गया। यह कुरआन से मेरा पहला बराहे रास्त परिचय था इस से पहले मैं ने इस्लाम और कुरआन के बारे में जो कुछ पढ़ा सुना था उस का प्रभाव बड़ा ही नकारात्मक था सैल ने भी अनुवाद में जगह-जगह झगड़ालू आलोचना (तनक़ीद) व तबसरे का अंदाज़ इख़तियार किया था, मगर इस के बावजूद तौहीदे ख़ुदावंदी का एक न मिटने वाला नक़्श मेरे दिल में बैठता चला गया और मैं बिल्कुल नई रोशनी से परिचित हुआ।

उस के बाद तो यह हाल हुआ कि इस्लाम के बारे में मुझे जो किताब भी मिलती वह पढ़ डालता मगर मुश्किल यह थी कि इन किताबों के ज़्यादातर ग्रंथकार धार्मिक पक्षपात और तंगनज़री का शिकार थे और नहीं चाहते थे कि लोग इस्लाम के बारे में अच्छी राय क़ायम करें फिर भी कुरआन से परिचय हुआ और मैं ने इंजील पर नये सिरे से ग़ौर शुरू किया तो उस के विपरीतता खुल

कर सामने आने लगे। मिसाल के तौर पर हज़रत मसीह कहते हैं कि मैं इसराईल के घराने की खोई हुई भेड़ों के सिवा और किसी के पास नहीं भेजा गया (मती, 15:24) जबकि क़ुरआन के मुताबिक़ पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पूरी दुनिया के लिये रहमत (कृपा, दया) बना कर भेजे गये हैं। फिर यूँ भी इंजील मती बाब 5 आयत 17, 18 की रू से हज़रत मसीह मूसवी शरीअत के पाबंद थे जबकि हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम एक मुकम्मल स्वतंत्र नियम ले कर आये थे। मेरे दिल में इस्लाम के लिये मुहब्बत बढ़ती ही जा रही थी।

मैं एक तबलीग़ी क़ाफ़िले के साथ कराची में था जब बर्रेसग़ीर की तक़सीम का काम हुआ और पाकिस्तान की नई इस्लामी हुकूमत वुजूद में आई, ख़ुराक वस्त्र और नक़द रक़में ले कर ईसाई मिशनरियाँ मैदान में कूद पड़ीं और सादा दिल मुसलमानों को हमदर्दी के नाम पर अपने जाल में फाँसने लगीं। बचपन में शिक्षा के दौरान बताया गया था कि मुसलमान क़ुरआन और तलवार पर ईमान रखते हैं। ईसाईयत की निजात इसी में है कि क़ुरआन में दरार डाल दी जाये (यानी मुसलमानों में फूट डाल दी जाये) और तलवार को कुन्द कर दिया जाये (यानी मुसलमानों को कमज़ोर और बेबस बना दिया जाये) ईसाई पादरी बिला झिझक कहते थे कि हमारा मक़सद मरीज़ों का इलाज नहीं, बल्कि हम सिर्फ़ यह चाहते हैं कि उन के कानों तक मसीह की आवाज़ पहुँच जाये जिस का नतीजा यह होगा कि मुसलमान तौहीदे ख़ुदावंदी (ख़ुदा को एक मानना) के अक़ीदे से हट जाएँगे और तीन ख़ुदाओं का तसव्वुर उन का ईमान कमज़ोर कर देगा यह दृश्य मैं ने 1947 ई० के ज़माने में आम देखा जब सहायता की आड़ में बहुत से मुसलमानों का ईमान लूटा गया और उन्हें ईसाई बनाने की कोशिश की गई।

उसी ज़माने में लाहौर के एक धार्मिक विद्यावान मौलाना मुहम्मद अली से धार्मिक विषय पर मेरी लम्बी चौड़ी बात चीत हुई। मुझे यक़ीन हो गया कि इस्लाम का ख़ुदा को एक मानना और अल्लाह की इबादत का अक़ीदा कितना जानदार, प्राकृतिक और मज़बूत है जबकि इस के मुक़ाबिले में मसीहिय्यत की दृष्टिकोण मुहब्बत और ख़ुदा के लिये बाप होने का तसव्वुर ग़ैर अक़ली, ग़ैर फ़ितरी और सरासर बेहूदगी है। दिल की आँखों पर पड़े हुये पर्दे हटते जा रहे थे।

अब मैं ने ईसाईयत का अध्ययन शुरू किया तो कुछ ख़ौफ़नाक क़िस्म की चीज़ें मालूम हुई मुझे शिक्षा दी गई है कि मैं गुनाह की वजह से और गुनाह के नतीजे में पैदा हुआ हूँ इस का एक ही मतलब निकलता है कि मेरे माँ बाप पर झूटा आरोप लगाया गया है और उन की बेइज़्ज़ती की गई है।

फिर मुझे यह भी मालूम हुआ कि सारे इंसानों की तरह मैं भी प्राकृतिक गुनहगार हूँ ख़ुदा ने गुनाह को मेरी प्रकृति और पैदाइश का एक लाज़िमी हिस्सा बनाया है इस लिये मैं गुनाह के बग़ैर नहीं रह सकता चुनाचे अपनी हिम्मत और ताक़त के मुताबिक़ बहुत ज़्यादा गुनाह कर के और बहुत बड़ा गुनहगार बन कर मैं ख़ुदा तआला की ख़ुशी का कारण बनूँगा मुझे इंसानी स्वभाव का यह नक़शा बड़ा ही भद्दा और परिहास से भरा हुआ नज़र आया। उस में ख़ुदा तआला पर झूट भी बाँधा गया है और उस की तौहीन का पहलू भी निकलता है यह अक़ीदा इस्लाम की शिक्षा के किस क़द्र ख़िलाफ़ है जो बाद में मुझे मालूम हुई कि तमाम बच्चे फ़ितरते इस्लाम पर पैदा होते हैं और उन के माता पिता उन्हें ईसाई यहूदी या मजूसी बना देते हैं।

बाईबल की विभिन्न आयतों ने कृपालू और दयालू ख़ुदा की जो तसवीर पेश की है वह किसी ख़ूँख़्वार देव, किसी क्रोधित हस्ती

और मायूस इंसान से मिलती जुलती है यानी ख़ुदा ने इंसानों को पैदा किया मगर इंसानों ने बाद में उस काम को इतना बिगाड़ा कि उस ने मायूस और क्रोधित हो कर यहूदियों के सिवा तमाम दूसरी क़ौमों को तबाह कर देना चाहा और इस मक़सद के लिये यहूदियों को हुक्म भी दे दिया कि वह हर इंसान को क़त्ल कर दें और अपने सिवा किसी को ज़िन्दा न छोड़ें।

फिर बाइबल के मुताबिक़ ख़ुदा ने इंसानों की हिदायत के लिये बेशुमार पैग़म्बर भेजे मगर इंसान ज़िद्दी वाक़े हुआ है और हिदायत को कुबूल नहीं करता, इस लिये ख़ुदा ने इंसानों को हमेशा के लिये जहन्नम में धकेल देना चाहा मगर ख़ुदा के एकलोते बेटे ने इंसानी नस्ल की हिमायत की और अपनी कुर्बानी दे कर उसे जहन्नम के अज़ाब से बचा लिया। इस अक़ीदे में अल्लाह तआला की जो तसवीर खींची गई है उस की वज़ाहत की ज़रूरत नहीं। मायूसी, ज़ुल्म व क्रोध, बेइंसाफ़ी और ऐसी ही नकारात्मक (उलटी) और ग़ैर फ़ितरी ख़ुसूसियात ख़ुदा की तरफ़ संबंधित की गई हैं।

ईसाईयत की तारीख़ में यह बात भी अचंभे का कोई पहलू नहीं रखता कि मसीहिय्यत के इंतिहाई उरूज के ज़माने में जिस किसी ने अपने इतमीनान और तसल्ली के लिये इन अक़ाइद पर बहस की है, उसे ज़िन्दा जला दिया गया या क़ैदख़ाने में डाल दिया गया और उस ज़माने में भी दुनिया के विभिन्न हिस्सों में जितना अत्याचार ईसाईयों ने ग़ैर ईसाईयों पर किया है उस की कोई मिसाल नहीं मिलती।

तमाम ईसाई धर्म तसलीस को बुनियादी अक़ीदे की हैसियत से मानते हैं, दुनिया की व्यवस्था पर ग़ौर किया, इस्लामी शिक्षाओं से मुक़ाबिला किया तो उन सारे अक़ीदों की चूलें हिलती हुई नज़र आईं बाप बेटा और रूहुल-कुद्स का तसव्वुर अक़्ल और समझ में

न आने वाला है और उसी तसव्वुर ने पूरी ईसाई दुनिया को हक़ीक़त में दहरियत (ख़ुदा को न मानना) व नास्तिकता की गोद में ला डाला है।

रात व दिन का यह मुशाहिदा (अवलोकन) मेरे लिये सख़्त तकलीफ़ का कारण था कि ईसाईयत रंग व नस्ल के फ़ितने (उपद्रव) में बहुत बुरी तरह फंसी हुई है। सियाह फ़ाम ईसाईयों के गिरजे सफ़ेद फ़ाम ईसाईयों से अलग हैं और अगर किसी स्थान पर एक ही गिरजा है तो सफ़ेद फ़ाम अगले हिस्से में मख़मलीं सोफ़ों और कुर्सियों पर बैठ कर इबादत करते हैं जबकि सियाह फ़ाम और ग़रीब लोग पिछले हिस्से में दरियों या लकड़ी के तख़्तों पर बैठते हैं इस के मुक़ाबिले में इस्लाम में गोरे काले या अरबी व अजमी का कोई फ़र्क़ नहीं। मस्जिद में सब मुसलमान बिला नस्ल व रंग में फ़र्क़ किये हुये एक ही सफ़ में खड़े हो कर नमाज़ पढ़ते हैं। मैं ने दुनिया के विभिन्न देशों में यही देखा है कि सारे मुसलमान चाहे वह अफ़ग़ानी हों या अरबी, तुर्की हों या मिस्री, मराकशी हों या इंडोनेशी या पाकिस्तानी सब एक दूसरे को दीन की बुनियाद पर भाई-भाई समझते हैं और सिर्फ़ दर्जे (तबक़े) की वजह से उन के बीच कोई फ़र्क़ नहीं।

हक़ को तलाश करने का आख़िरी मरहला:

मुझ पर ईसाईयत की एक-एक कमज़ोरी ज़ाहिर हो गई और इस्लाम की ख़ूबियाँ ज़ाहिर हुई तो मैं ने पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की ज़िन्दगी का अध्ययन शुरू किया और बहुत जल्द इस नतीजे पर पहुँच गया कि आप स० की ज़िन्दगी दुनिया की तमाम ख़ूबियों की तसवीर है और इतनी भरपूर व मुकम्मल है कि क़यामत तक के लिये पूरी इंसानियत की रहनुमाई कर सकती है जबकि इस के विपरीत हज़रत मसीह की

ज़िन्दगी का एक पहलू भी निखर कर सामने नहीं आता और कोई इंसान दुनियावी या रूहानी तौर पर उन से फ़ायदा हासिल नहीं कर सकता।

मेरे ख़ानदान वालों ने मेरे बदलते हुये ख़यालात को भाँप लिया था उन्हों ने ख़त के ज़रिये धमकियाँ भी दीं और उस ख़त में मुझे डराया गया था कि अगर मैं ने मसीह की उलूहियत से इंकार किया तो मेरी निजात (मुक्ति) की कोई सूरत न रहेगी मगर अब मैं इन बातों को बेवक़ूफ़ी और हंसी उड़ाने वाली बातें समझता था और इस्लाम से ज़्यादा दिनों तक दूर रहना सरासर नुक़सानदेह ख़याल करता था। चुनाचे अल्लाह का शुक्र है कि 1964 ई में मैं ने ईसाईयत को छोड़ दिया और इस्लाम कुबूल कर लिया। अल्लाह तआला मुझे इस पर अटल रहने की शक्ति दे और इस्लाम धर्म की बरकतों से फ़ायदा उठाने की ताक़त अता फ़रमाये। *(आमीन)*

☆☆☆☆☆

मुहम्मद सुलेमान टाकेनची (जापान)

(Mohammad Suleman Takenchi)

ख़ुदा की कृपा से मैं ने इस्लाम कुबूल कर लिया है। मेरे इस्लाम कुबूल करने के कारण यह हैं:-

1. मैं ने इस्लाम में भाईचारगी का ऐसा नियम देखा है जो मज़बूत बुनियादों पर क़ायम है।
2. इस्लाम इंसानी ज़िन्दगी के मसाइल का बड़ा कामियाब अमली हल पेश करता है। यह इबादात को इंसान की समाजी ज़िन्दगी से अलग नहीं करता, बल्कि मुसलमान तो एक जगह इकट्ठा हो कर इबादत करते हैं (यानी नमाज़ें बाजमाअत अदा करते हैं) और मानवजाति की सेवा ख़ुदा की ख़ुशी समझ कर करते हैं।
3. इस्लाम इंसानी ज़िन्दगी में माद्दियत और रूहानियत की ख़ूबसूरत मिलावट पेश करता है।

अब मैं इन तीनों बातों की थोड़ी सी वज़ाहत (प्रतिपादन) करूंगा।

इस्लामी भाईचारगी किसी क़िस्म की क़ौमी, ख़ानदानी या ज़ुबानी हदबंदियों को कुबूल नहीं करती बल्कि सारे मुसलमानों को सिर्फ़ अक़ीदे की बिना पर भाईचारे के मज़बूत बंधन में बाँध देती है। फिर इस्लाम किसी एक वर्ग (तबक़े) या ख़ास गिरोह तक

महदूद नहीं, यह तमाम इंसानों का धर्म है चाहे वह अमीर हों या ग़रीब, काले हों या गोरे, अरब हों या पाकिस्तानी, अफ़ग़ान हों या हिन्दुस्तानी वग़ैरा। यानी इस्लाम सब का धर्म है।

इस्लाम ज़िन्दगी से फ़रार हासिल नहीं करता। यह हर तरह की मशग़ूलियत का चेलंज कुबूल करता है। बल्कि सिर्फ़ यही वह धर्म है जो वक़्त जैसी क़ीमती नेमत की नाक़दरी नहीं करता। इसी लिये यह आज भी उसी तरह अमल के क़ाबिल है जिस तरह आज से 1400 साल पहले हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़माने में था। इस्लाम दीने फ़ितरत है इस लिये इस में इतनी लचक है कि यह हर दौर में हर मुल्क के अवाम के लिये बराबरी का नक़्शा पेश करता है। यही कारण है कि इतनी थोड़ी सी तारीख़ में इस धर्म ने इंसानी संस्कार को ऊँचा उठाने में ज़बरदस्त काम किया है।

इस्लाम में निजात का रास्ता समाज के अन्दर से हो कर गुज़रता है। यह ज़िन्दगी गुज़ारने का कोई दर्मियानी रास्ता नहीं निकालता। मैं बुद्धमत और ईसाईयत के बारे में जो कुछ जानता हूँ उस के मुताबिक़ दोनों धर्म संबंधों को तोड़ने की शिक्षा देते हैं और इंसानी समाज से कट कर रहने पर इनआम (पुरस्कार) की ख़ुशख़बरी सुनाते हैं। कुछ ऐसे बुद्ध फ़िरक़े भी हैं जो पहाड़ों की ख़तरनाक ढलवानों पर मन्दिर बनाते हैं ताकि जो भी वहाँ पहुँचने का इरादा करे पहले जान जोखम में डाले फिर वहाँ पहुँचे। चुनाचे जापानी धर्मों में बहुत सी ऐसी मिसालें मिलती हैं कि ख़ुदा तक किसी आम आदमी की पहुंच संभव नहीं यही हालत ईसाईयत की है। ईसाई राहिबों के आश्रम आम तौर से इंसानी बस्तियों से दूर पहाड़ों या जंगलों में होते हैं। यहाँ भी धार्मिक ज़िन्दगी और समाजी ज़िन्दगी में पार न करने वाली खाईयाँ हैं, मगर इस्लाम का मुआमला इन सारे धार्मों से बिल्कुल अलग है। मस्जिदें आम तौर

से गाँव, क़स्बे या कारोबारी स्थानों के बिल्कुल बीच में होती हैं। नमाज़ जमाअत के साथ अदा होती है और समाज की सेवा धर्म की एक ज़रूरी चीज़ समझी जाती है।

इंसान की ज़िन्दगी रूह और माद्दे का मजमूआ (समाहार) है। ख़ुदा ने हमें शरीर भी दिया है और रूह भी, इस लिये हमारा फ़र्ज़ है कि हम इन दोनों के फ़राइज़ को काम में लाएँ और माद्दियत व रूहानियत के बीच कोई रेखा न खींचें। इस्लाम इस मुआमले में भी निहायत उचित ढंग अपनाता है और रूह और माद्दे दोनों की अहमियत को बराबर मानता है। दोनों को उन के असल स्थान पर रखते हुये वह ऐसी हिकमते अमली इख़तियार करता है जो ज़िन्दगी के सारे तक़ाज़ों को घेरे होती है।

मुझे पूरा यक़ीन है कि जापान में इस्लाम के प्रचार और फैलाव के लिये मौजूदा ज़माना फ़ैसला कुन हैसियत रखता है। नाम निहाद तरक़्क़ी याफ़्ता क़ौमों ने माद्दी तरक़्क़ी तो वास्तव में की है, मगर वह ज़बरदस्त रूहानी ख़ला का शिकार हैं। इस्लाम और सिर्फ़ इस्लाम ही उस ख़ला को भरने की योग्यता रखता है। चुनाचे अगर जापान में इस्लाम को फैलाने के लिये मुनासिब और प्रभावित उपाय इख़तियार किए जाएँ तो मैं यूँ महसूस करता हूँ कि दो या तीन पीढ़ियों के अन्दर अन्दर पूरे का पूरा जापान इस्लाम की गोद में आ सकता है और अगर यह क़िला फ़तेह हो जाये तो मैं सारे पूर्वी देशों में इस्लाम के रोशन भविषय की पहले से ख़बर कर सकता हूँ मुस्लिम जापान पूरी इंसानियत के लिये रहमत का कारण बन सकता है।

☆☆☆☆☆

मुहम्मद सिद्दीक़ (इंगलिस्तान)

जब मैं मुसलमान हुआ तो मेरा इस्लामी नाम "सिद्दीक़" रखा गया। मैं शुरू ही में स्वीकार करता चलूँ कि मैं इस इंतिहाई बाइज़्ज़त और महान नाम के योग्य नहीं हूँ फिर भी इस के अर्थ व मक़सद इस एतबार से मेरे लिये ख़ास अहमियत रखते हैं कि मैं पिछले कई सालों से "सिद्क़" यानी सदाक़त और सच्चाई की तलाश में लगा हुआ था और अब अल्लाह की कृपा से खुले तौर पर एलान कर सकता हूँ कि मैं ने उसे सही अर्थे में पा लिया है। जैसा कि कुरआन में हैः-

وَمَنْ يُّطِعِ اللّٰهَ وَالرَّسُوْلَ فَاُوْلٰٓئِکَ مَعَ الَّذِيْنَ اَنْعَمَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ مِنَ النَّبِيّٖنَ
وَالصِّدِّيْقِيْنَ وَالشُّهَدَاءِ وَالصّٰلِحِيْنَ ۚ وَحَسُنَ اُولٰٓئِکَ رَفِيْقًا ۚ (النساء. ٦٩)

व मय्युतिइल्लाहा वर-रसूला फ़-उलाइका मअल्लज़ीना अनअमल्लाहु अलैहिम मिनन्-नबिय्यीना वस-सिद्दीक़ीना वश-शुहदाए वस-सालिहीना, व हसुना उलाइका रफ़ीक़ा। (अल-निसा-69)

"यानी जो लोग अल्लाह और रसूल की उपासना करते हैं। वह नबियों, सिद्दीक़ों, शहीदों और सालेहीन की उन जमाअतों के साथ होंगे जिन पर अल्लाह ने इनआम किया है और कितनी अच्छी है उन लोगों की संगति"।

मैं ने एक Scottish Presbyterian मसीही घराने में आँखें खोलीं। हमारा ख़ानदान कुछ ज़्यादा धार्मिक नहीं था। शिक्षा भी कोई ख़ास नहीं थी। हर रविवार को रस्मी तौर पर गिरजे में हाज़िरी भी दी जाती और बाइबल का सबक़ भी सुना जाता मगर दिलचस्पी नहीं थी। चुनाचे हफ़्ते के बाक़ी छः दिन हमारे घर में धर्म या बाइबल के बारे में कभी कोई बात नहीं होती थी। मुझे ख़ूब याद है मैं ने बाइबल का पुराना और नया अहदनामा बिल्कुल उसी नक़्तए नज़र से पढ़ा था। जिस तरह आम तौर पर नई और पुरानी कहानियाँ पढ़ी जाती हैं। लेकिन जब ज़रा होश संभाला और बुद्धी ने आँखें खोलीं तो मैं ने उन कहानियों पर एतराज़ करना शुरू कर दिया। ख़ास तौर से उन की विश्वस्त होने के बारे में ज़ेहन संदेह से भर गया। ऐसा क्यों है? वैसा क्यों है? क्या ख़ुदा की मर्ज़ी यही है कि मैं अक़्ल व बुद्धी से बेपरवा हो कर बाइबल पर अंधा विश्वास रखूँ? अगर ऐसा है तो इंसानी बुद्धी का क्या फ़ायदा है और ख़ुदा ने यह नेमतें क्यों अता की हैं? फिर मसीहिय्यत के विभिन्न फ़िरक़ों में बुनियादी फ़र्क़ है मैं सोचता रोमन कैथोलिक हक़ पर हैं या प्रोटेस्टेन्ट या दूसरे फ़िरक़े? जबकि हर गिरोह दूसरे की सख़्त मुख़ालिफ़त करता है इन सारे सवालों ने मुझे बहुत ज़्यादा उलझन में डाल दिया। समझ में नहीं आता था क्या करूँ और किधर जाऊँ? चुनाचे कई वर्षों तक तो यह हालत रही कि ज़िन्दगी में बहुत ज़्यादा ख़ालीपन महसूस होता रहा। किसी बात में जी नहीं लगता था। काम काज में उकताहट की कैफ़ियत तारी रहती थी।

मैं पेशे के एतबार से डॉक्टर हूँ यानी (Male Nurse,) मैं अस्पतालों और आम घरों में काम करता हूँ और इस सिलसिले में बाहर के देशों के कई सफ़र भी किये हैं। मैं ने अनगिनत बार ज़िन्दगी, मौत और शारीरिक तकलीफ़ों को बड़े क़रीब से देखा है।

चुनाचे मैं अकसर सोचता था इन सब का आख़िर मतलब क्या है? क्या हम दुनिया में सिर्फ़ इसी लिये आये हैं कि थोड़े दिनों ज़िन्दा रहें फिर मर जाएँ और हमेशा के लिये ख़त्म हो जाएँ? नहीं मेरा ज़मीर (अन्तरात्मा) पुकार उठा था कि ऐसा हर्गिज़ नहीं। मेरा यक़ीन मज़बूत होता चला गया कि ख़ुदा मौजूद है जो हमारी रक्षा करता है और मौत हमारा ख़ात्मा नहीं करती मेरा यह विश्वास भी था कि ख़ुदा ने ही हज़रत मसीह को इंसानों की रहनुमाई के लिये भेजा था। मगर मैं तसलीस को मानने से सख़्त इंकारी था।

सिर्फ़ यही नहीं मैं फ़ितरत और दुनिया की व्यवस्था पर ग़ौर करता तो किसी शक के बग़ैर यह बात ज़ाहिर हो जाती कि इन सारे नियमों के पीछे एक नियम और बुद्धी है और इस की बाग डोर किसी महान हस्ती के हाथ में है इस बात में भी कोई शक न था कि अगरचे इंसान ख़ुदा के बनाये हुये नियम को बदलने की ताक़त नहीं रखता मगर दुनिया की हर चीज़ उस के फ़ायदे के लिये है। चुनाचे मेरे ज़ेहन में यह बात आईने की तरह साफ़ होती चली गई कि ख़ुदा ने इंसानी ज़िन्दगी और व्यवहार के लिये यक़ीनन एक सही क़ानून, काम करने का संतुलित क़ानून और हकीमाना तरीक़ा नियुक्त किया है। मैं उस तरीक़े की तलाश में लग गया और एक क़िस्से ने मुझे मेरी मंज़िल के क़रीब कर दिया जिस की मुझे उम्मीद न थी।

हुआ यूँ कि एक ईरानी मुसलमान को कैन्सर की ख़तरनाक बीमारी हो गई मुझे उस की देख भाल करनी पड़ी। वह शारीरिक और ज़ेहनी तकलीफ़ की जिस ग़ैर मामूली हालत में मुबतला था उस का मुशाहिदा मुझे इस से पहले कभी नहीं हुआ था। मगर हैरतनाक बात यह थी कि उस के होंटों पर मुसकुराहट रहती और ख़ुदा पर उस का यक़ीन एक लमहा के लिये भी नहीं

डगमगाता था। वह मर गया और मरने से थोड़ी देर पहले उस ने कुरआन पाक मंगाया और उसे देखा मुझे उस महान आदमी की देख भाल पर बड़ा गर्व था बार-बार ख़याल आता कि वह कौन सा जज़बा था जो आख़िरी दमों पर भी उस शख़्स को मुसकुराने की हिम्मत अता करता था और उस की उम्मीद टूटती नहीं थी। यही तलाश मुझे उस की क़ब्र पर ले गया। क़ब्रस्तान के क़रीब एक मकान में एक मुसलमान रहता था। वह उन की क़ब्र तक मुझे ले गया और मेरी ख़्वाहिश पर इस्लाम के बारे मे मुझे कुछ लिटरेचर भी दिया।

मैं ने ख़ाली समय में उस लिटरेचर का अध्ययन किया तो यूँ लगा जैसे बिल्कुल अंधेरों में रोशनी की एक पवित्र किरन मेरे सीने में उतर आई है। मैं कई बार वहाँ गया और इस्लाम के बारे में किताबें लाता रहा। ज़ुबानी बातें भी हुई और मुसलमानों ने मेरे तमाम सवालों और आपत्तियों का जवाब दिया। आख़िर में मैं ने कुरआन को समझने का इरादा किया और उसे पढ़ने की कोशिश करने लगा। ख़ुदा का शुक्र है जल्द ही मेरा मक़सद हाथ आ गया मैं ने हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़रिए से ख़ुदा को पहचान लिया। मैं ने देखा कि कुरआन में हर वह चीज़ मौजूद है जिस की इंसान को ज़रूरत है। क़ानून, ज़िन्दगी गुज़ारने का तरीक़ा, रहनुमा उसूल और सब से बढ़ कर अक़्ल व बुद्धी की कारफ़रमाई, यह अक़्ल व बुद्धी ही है जो हक़ यानी सच्चाई की तरफ़ हमारी रहनुमाई करती है। कुरआन में है:-

اَكَانَ لِلنَّاسِ عَجَباً اَنْ اَوْحَيْنَآ اِلٰى رَجُلٍ مِّنْهُمْ اَنْ اَنْذِرِ النَّاسَ وَ بَشِّرِ الَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا اَنَّ لَهُمْ قَدَمَ صِدْقٍ عِنْدَ رَبِّهِمْ (يونس. ٢)

अ-काना लिन्नासे अजबन अन औहैना इला रजुलिम-मिनहुम अन अंज़िरिन-नासा व

बशिशरिल्लज़ीना आमनू अन्ना लहुम क़दमा सिद्क़िन इंदा रब्बिहिम। (यूनुस 2)

***अनुवादः**– क्या लोगों को तअज्जुब है कि हम ने उन्हीं में से एक शख़्स पर वह्‌ी की ताकि वह लोगों को (ख़ुदा के अज़ाब से) डराये और ईमान वालों को ख़ुशख़बरी दे कि अल्लाह के यहाँ उन का मरतबा बहुत बुलंद है।*

क़दमा सिद्क़िन का अर्थ मज़बूती से जम जाने के भी हैं। मैं यह आयत पढ़ रहा था और सोच रहा था कि यह ख़ुशख़बरी मेरे लिये भी है। अब शक की कोई गुंजाइश नहीं रह गई थी। हक़ ज़ाहिर हो कर सामने आ गया था। चुनाचे 28 सितम्बर 1958 ई॰ का यादगार दिन था जब मैं ने कलमा पढ़ा और मुसलमान हो गया। *अलहमदुलिल्लाहि रब्बिलआलमीन*, मुसलमानों में मुझे बहुत से अच्छे और मुख़लिस दोस्त मिले अब मेरी ज़िन्दगी और मुआमलात बामक़सद भी हैं और अर्थ से भरे भी। अब मैं दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ता हूँ तो मुझे अकेले होने का कभी एहसास नहीं होता। ख़ुदा हर वक़्त मेरे साथ है जो मेरी रहनुमाई करता है।

(अनुवाद अज़ "यक़ीन इंटरनेशनल कराची" 7 अकतूबर 1968 ई॰)

मुहम्मद यहया (पाकिस्तान)

25 साल का एक ख़ूबसूरत नवजवान पादरी, पादरियों के ख़ास वस्त्र में एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थरपारकर मिस्टर धनी बख़्श सोम्रो की अदालत मीरपुर ख़ास में पेश हुआ। उस ने एक दरख़्वास्त पेश कर के ए, डी, एम मिस्टर सोम्रो को चौंका दिया। दरख़्वास्त में लिखा था कि मैं होश व हवास के साथ, राज़ी व ख़ुशी, किसी तरह की ज़बरदस्ती के बग़ैर और पूरे ख़ुलूस के साथ ईसाईयत छोड़ कर इस्लाम कुबूल कर रहा हूँ और अपना ईसाई नाम जौन जौज़िफ़ छोड़ कर के इस्लामी नाम मुहम्मद यहया रख रहा हूँ। दरख़्वास्त देने वाले नें ए, डी, एम के सामने कलमए तय्यबा "*लाइलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर-रसूलुल्लाह*" और कलमए शहादत पढ़ा और मुसलमान हो गया।

मुसलमान होने वाले मुहम्मद यहया ने एक तफ़सीली मुलाक़ात में नामानिगार जंग के बहुत से सवालात के जवाब दिये। जिन को मुख़्तसर नीचे पेश किया जाता है।

एक सवाल के जवाब में जनाब मुहम्मद यहया ने बताया कि मैं 1942 ई० में हिन्दुस्तान के शह्र इलाहाबाद में एक ईसाई घराने में पैदा हुआ था। मेरे पिता भी पादरी थे। इंटरेन्स करने के बाद मेरे पिता ने मुझे मसीही सेवा के लिये मिशनरी के हवाले कर दिया। मेरे पिता की चाहत थी कि मैं हकीम इलाहियात का कोर्स

करूँ। चुनाचे मुझे झाँसी भेजा गया। 1958 ई० में शिक्षा से फ़ारिग़ हो कर वापस इलाहाबाद आ गया और मसीह के धर्म के प्रचार में लग गया।

एक और प्रश्न के उत्तर में उन्हों ने बताया कि मेरे दादा जज़ाईरे मालदीप के मक़ामी निवासी थे और बुद्धमत की उपासना करते थे। उन्हों ने एक मसीही नर्स से शादी की और अपना ख़ानदानी बुद्ध धर्म छोड़ कर ईसाई धर्म अपना लिया। शादी के आठ साल बाद उन की मृत्यु हो गई और अपने पीछे मेरी दादी, एक बेटी और दो बेटे छोड़ गये। दादी अपने तीनों बच्चों को ले कर हिन्दुस्तान आ गई और बम्बई के क़रीब कलयान में रहने लगीं मेरे पिता, चचा और फूफी की शिक्षा व प्रशिक्षण मिशन की निगरानी में हुई। उन तीनों की शादी कलयान ही में हुई। मेरे पिता मिशनरी सेवा करते रहे और इलाहाबाद में रहने लगे। उन्हो ने बताया कि मेरे पिता अब भी इलाहाबाद (भारत) में यूनीवर्सिटी रोड पर पत्थर वाला गिर्जा में पादरी की सेवा कर रहे हैं और मेरे बड़े भाई बम्बई में इंफ़ारमेशन सेन्टर के जनरल सिक्रेटरी हैं।

मुहम्मद यहया ने कहा कि मैं दो महीने तक इलाहाबाद में मसीही धर्म के प्रचार में मशग़ूल रहा। जब मेरे पिता ने महसूस किया कि मैं दूसरे शहरों में भी सेवा कर सकता हूँ, तो हिन्दुस्तान के दूसरे शहरों होशिंगाबाद, भोपाल, रायसेन, जयपुर, चेलदोन, जोधपुर, आगरा भेजा गया। अकतूबर 1961 ई० में मुझे कलकत्ता भेजा गया जहाँ से मुझे ढाका पाकिस्तान भेज दिया गया, चुनाचे मैं नदियापुर के रास्ते ढाका आ गया, ढाका आ कर मैं चर्च हाऊस अज़ीम पुरा में रहने लगा और मसीही धर्म के प्रचार में मशग़ूल हो गया। ढाका में कुछ दिनों रहने के बाद मैं कराची आ गया, जहाँ मैं ने पूरी सरगर्मी से ग़रीबों की बस्तियों में ईसाईयत का प्रचार शुरू कर दिया ख़ास तौर से भंगियों की कालोनियों में

सेवाएँ कीं। उस के बाद ग़रीब मुस्लिम आबादियों में भी विभिन्न तरीकों से सेवाएँ करता रहा मैं ने इन आबादियों में शिक्षा के लिये केंद्र और अस्पताल वग़ैरा क़ायम किये। उस के कुछ दिनों बाद हैदराबाद में पाकिस्तान बाइबल ट्रेनिंग इंसटीटयूट (पी बी टी आई) में मिस्टर पाथसोल के साथ काम करने लग गया। उसी बीच मैं ने कोटरी में मक़ामी निवासियों को मसीहिय्यत की शिक्षा दी और एक चर्च बनवाया बाद में भान, सईदाबाद, दादू, लाड़काना, ख़ैरपुर, नाथन शाह, शहकार पुर, ख़ैरपुर मेरस के दौरे किये। उस के बाद मैं लाहौर चला गया। वहाँ से फिर वापस कराची आया। जब मैं दोबारा कराची आया तो मेरी ज़िन्दगी में एक इंक़लाब शुरू हुआ। हुआ यह कि कराची में कुछ शिक्षिक मुसलमानों से मुलाक़ात हुई जिन से बहस के दौरान मेरे अक़ाइद कमज़ोर और मेरे इल्म की इमारत डावाँडोल होने लगी। मैं ने दोबारा बाइबल का एक एक शब्द का अध्ययन शुरू किया। चारों इंजीलें ग़ौर से पढ़नी शुरू कीं, तो मालूम हुआ कि कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट दोनों इंजीलों में आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की ख़ुशख़बरी दी गई है। अब मैं ने मसीही और यहूदी विद्यावानों से बात चीत शुरू की। कराची में यहूदियों के कुछ उलमा से यहूदी अक़ाइद, मसीही अक़ाइद और मुस्लिम अक़ाइद पर बात चीत की। पारसी विद्यावानों से भी बात चीत हुई, लेकिन मेरी तसल्ली न हो सकी।

उसी बीच एक मुसलमान दोस्त ने मुझे मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी की तफ़सीर "तफ़हीमुल-कुरआन" पढ़ने के लिये दी। जिस ने मेरे अन्दर हैरतअंगेज़ इंक़लाब पैदा कर दिया। तफ़हीम के पढ़ने के बाद मालूम हुआ कि आख़िरी नबी मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की नुबूव्वत पर ईमान लाने की ख़ुशख़बरियाँ पवित्र इंजील में काफ़ी एहतमाम और खुले तौर पर पाई जाती हैं और तसलीस का अक़ीदा हज़रत मसीह अलैहिस्सलाम की शिक्षाओं

के सरासर ख़िलाफ़ है। ख़ुद इंजील तसलीस के अक़ीदे और मसीह की उलूहियत का इंकार कर रही है। अब मेरी मुलाक़ातें मुस्लिम दोस्तों से बढ़ती जा रही थीं। गरचे मैं ज़ाहिर में ईसाई था, लेकिन दिल में तक़रीबन मुसलमान हो चुका था। मेरे 'ऊँचे अफ़सरान' को मेरी इस तबदीली का कुछ शक हुआ तो उन्हों ने मुझे प्रचार के काम के बजाये दफ़्तरी काम पर लगा दिया। और बाद में सज़ा के तौर पर मुझे मीरपुर ख़ास भेज दिया। यहाँ से मुझे दो महीने के बाद बाइबल की और ज़्यादा शिक्षा व प्रशिक्षण के लिये डेरा इस्माईल ख़ाँ भेजा जाने वाला था, लेकिन अल्लाह ने मेरी मदद की और मैं ने मीरपुर ख़ास आने के एक महीने बाद ही एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की अदालत में हाज़िर हो कर हलफ़नामा दाख़िल करा दिया और इस्लाम क़ुबूल कर लिया। अल्लाह का शुक्र है कि अब मैं मुसलमान हूँ। मेरा धर्म इस्लाम है। मेरे लिये तमाम मुसलमान भाई दुआ करें कि अल्लाह तआला मुझे इस्लाम पर क़ायम रहने की शक्ति दे।

(बशुक्रिया जंगे कराची 4 जूलाई 1967 ई०)

☆☆☆☆☆

महमूद नूर नगटन (इंगलिस्तान)

मैं इंगलिस्तान के एक ईसाई घराने में पैदा हुआ मगर जवानी की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते पूरे तौर से दहरिया (नास्तिक) हो गया था। शिक्षा से फ़ारिग़ हो कर मैं ने बरतानिया की शाही बहरिया में नोकरी कर ली और उसी सिलसिले में 1965 ई॰ के शुरू में हमारा जंगी बेड़ा 45 कमान्डो अदन के समुद्र तट पर ठेहरा यहाँ हमें एक वर्ष तक रहना था।

मैं ज़िन्दगी में पहली बार घर से इतनी दूर आया था, इस लिये दिल में लड़ाई फ़तेह करने के जज़्बात करवटें ले रहे थे, लेकिन मैं परेशान भी था। घर में मेरी नई नवेली बीवी अकेली थी और मैं इतमीनान से उस के पास भी नहीं रह सका था। फिर भी मैं ने अपने आप को ज़्यादा से ज़्यादा मशग़ूल रखने की कोशिश की और आस पास के माहौल से मज़े भी लिए थोड़े ही दिनों के बाद बीवी का ख़त मिला कि मैं जल्द ही एक बच्चे का बाप बनने वाला हूँ, कुदर्ती तौर पर मुझे बहुत ज़्यादा ख़ुशी हुई।

लेकिन ख़ुशी का यह एहसास बहुत असथायी (चन्द दिन रहने वाला) साबित हुआ। हालात ने ऐसी करवट बदली कि मेरे दिल व दिमाग़ रंज व ग़म से भर गये। मुझ पर रातों की नींन्द हराम हो गई और दिन का सुकून लुट गाया। ख़्वाबआवर दवाएँ भी मुझे सुकून नहीं दे सकती थीं। तंग आ कर मैं ने शराब पीना शुरू

कर दी, मगर उस से भी पट्ठों के सख़्त तनाव में कोई फ़र्क़ न आया। आख़िरी उपाय के लिये मैं ने धर्म का सहारा हासिल किया और दोबारा ईसाई हो गया। लेकिन बीमारी बढ़ती गई जूँ जूँ दवा की। गिरजे की हाज़िरी और बाइबल का अध्ययन भी मुझे कोई फ़ायदा न पहुंचा सका। नतीजा यह हुआ कि बेख़्वाबी, पट्ठों का दबाव, और ज़ेहनी घुटन ने मुझे आख़िरकार बीमार कर दिया और मैं अस्पताल के एक बिसतर पर पहुँच गया।

अस्पताल से छुट्टी मिली मैं काम पर वापस आया तो ज़िन्दगी का सब से बड़ा इंक़लाब मेरा इन्तिज़ार कर रहा था। एक बड़े जहाज़ के एक मुसलमान बावर्ची अली नूर से परिचय हुआ वह सूमालिया का रहने वाला था और काफ़ी भला आदमी था वह मुझ से ख़ास मुहब्बत और चाहत से पेश आता। चुनाचे मेरे दिल में भी उस के लिये नर्म गोश पैदा हो गया। एक दिन बातों-बातों में वह कहने लगा। "जनाब, आप इस्लाम का अध्ययन ज़रूर करें"।

"इस्लाम का मतलब क्या है?" मैं ने पूछा।

"अम्न व सलामती" अली नूर का जवाब बड़ा सादा था। वह अंग्रेज़ी रवानी से नहीं बोल सकता था। इस लिये उस ने एक और मुसलमान को बुलाया, जिस ने बताया कि इस्लाम अम्न व शान्ती का संदेश वाहक है और दुनिया में अम्न व शान्ती का माहौल क़ायम करना चाहता है। हवाले के तौर पर उस ने कुरआन की यह आयतें पढ़ीं:-

"यानी जान लो कि जो अल्लाह की उपासना करेगा और दूसरों से भलाई करेगा वह अल्लाह से इनआम (पुरस्कार) पाएगा। ऐसे आदमी के लिये न कोई डर है न ही परेशानी की कोई बात"। उस ने बताया कि जब एक मुसलमान दूसरे मुसलमान से मिलता है तो उस पर सलामती भेजता है और चूँकि मुसलमान ही

वास्तव में अम्न व शान्ती की कैफ़ियत में रहता है इस लिये वह ज़ेहनी सुकून और निस्पृहता की नेमत से माला माल होता है।

अली नूर और उस के साथी की बातों ने मेरे दिल पर गहरा प्रभाव किया। मैं दिली इतमीनान और ज़ेहनी सुकून की तलाश में था, इस लिये इस्लाम के इस पहलू ने ख़ास तौर से प्रभावित किया कि यह सुकून व निस्पृहता का क़ाइल है। यह नेमतें ईसाईयत में नहीं पाई जाती हैं। यह धर्म उलट फेर से सुरक्षित नहीं रहा और इंसानी रहनुमाई के एतबार से ना मुकम्मल है। दुनिया में कितने ही देशों में ख़ुद ईसाईयत की उपासना करने वाले एक जगह मिल कर इबादत नहीं कर सकते। क्यों कि उन में रंग व नस्ल का विरोध होता है और गोरी रंगत के ईसाई काले ईसाईयों को गिरजे में जाने की इजाज़त नहीं देते ज़ाहिर है इस सूरत में यह धर्म पूरी इंसानियत की रहनुमाई कैसे कर सकता है और दुनिया को अम्न व शान्ती का संदेश कैसे दे सकता है?

अदन में अपने कामों की मुद्दत गुज़ार कर मैं वापस इंगलिस्तान आ गया। ज़ेहन की कैफ़ियत अभी तक वही थी और दिल में इस्लाम के लिये दिलचस्पी का भी वही आलम था। मुझे रह-रह कर वह दृश्य याद आता जब अली नूर ध्यानपूर्वक नमाज़ पढ़ रहा होता, चुनाचे जब भी मैं अकेला होता बेइख़तियार उस की नक्ल करने लगता। ख़ुदा से दुआएँ भी ख़ूब माँगता कि इलाही मेरा दिल खोल दे और मेरी ज़िन्दगी को सीधे रास्ते पर डाल दे।

अल्लाह ने मेरी दुआएँ सुन लीं मैं एक दिन एक पाकिस्तानी की दुकान पर खड़ा था वहाँ एक मुसलमान आया और दुकानदार से अस्सलामुअलैकुम कह कर मुख़ातब (संबोधित) हुआ उन शब्दों ने कानों में मिस्री घोल दी। मैं ख़ुशी से झूम उठा। ऐसा लगा जैसे मुद्दत के बाद कोई खोई हुई चीज़ मिल गई है। मैं ने दुकान के

मालिक से दोस्ती कर ली, उस ने मुझे एक क़रीबी मुस्लिम संस्था का पता दिया। चुनाचे मैं पोर्टिसमाउथ के इस्लामी मदरसे में गया और शैख़ आलिम रियामी (मदरसा के नाज़िम) से मिला, मैं ने उन से खुल कर बात चीत की, बहुत से सवालात भी किये और आख़िरकार मुझे यक़ीन हो गया कि इस्लाम ही सच्चा धर्म है और यही वह रास्ता है जो सच्चे अम्न व शान्ती का मानने वाला और रक्षक है चुनाचे मैं ने कलमा पढ़ा, और मुसलमान हो गया। *अलहमदू-लिल्लाहि रब्बिल-आलमीन।*

मोहतरमा मरयम जमीला (अमरीका)

मोहतरमा मरयम जमीला न्यूयार्क (अमरीका) के एक यहूदी ख़ानदान में पैदा हुई इस्लाम कुबूल करने से पहले ही वह आम अमरीकी व यहूदी औरतों से हट कर पवित्र चाल ढाल और प्रतिष्ठा के साथ ज़िन्दगी गुज़ार रही थी। मुसलमान होने के बाद वह पाकिस्तान आ गई और उन्हों ने आदर के लायक़ इल्मी व धार्मिक सेवाएँ की हैं। अब तक उन की एक दर्जन से ज़्यादा अंग्रेज़ी रचनाएँ लोगों के सामने आ चुकी हैं जो अपनी प्रतिष्ठा, सनद और मज़ामीन व ख़यालात की गहराई व अर्थ और विस्तृत प्रभाव की वजह से दुनिया भर के इल्मी हलक़ों से सम्मान प्राप्त कर चुकी हैं उन की रचनाओं में:-

Islam and Modernism.

Islam in Theory and Practice.

Western Civilisation Condemns Itself.

नीचे का विषय इन की विभिन्न रचनाओं की रोशनी में लिखा गया है।

क़ुरआन से मेरा परिचय अजीब तरीक़े से हुआ।

मैं बहुत छोटी थी जब मुझे संगीत से बहुत मुहब्बत हो गई बहुत से गीतों और कलासीकल रीकार्ड बहुत देर-देर तक मेरे कानों को लोरियाँ देते रहते। मेरी उम्र लग भग 11 वर्ष की थी

जब एक दिन सिर्फ़ इत्तिफ़ाक़ से मैं ने रेडियो पर अरबी संगीत सुन लिया जिस ने दिल व दिमाग़ को ख़ुशी के एक अजीब एहसास से भर दिया। नतीजा यह हुआ कि मैं ख़ाली समय में बड़े शौक़ से अरबी मौसीक़ी सुनती, यहाँ तक कि एक समय आया कि पसन्द और मज़े का धारा ही बदल गया। मैं अपने पिता के साथ न्यूयार्क के शामी दुतावास (सिफ़ारत ख़ाना) में गई और अरबी मौसीक़ी के बहुत से रिकार्ड ले आई। उन्हीं में सूरह मरयम की बेहद दिलनवाज़ और फ़िरदोस गोश तिलावत भी थी। जो उम्मे कुलसूम की निहायत सुरीली आवाज़ में रीकार्ड की गई थी (याद रहे उम्मे कुलसूम बुनियादी तौर पर क़ारिया थीं उस बदबख़्त ने गाना गाने का बदबख़्त पेशा बाद में इख़्तियार किया) अगरचे मैं उन गीतों को समझ नहीं सकती थी मगर अरबी ज़ुबान की आवाज़ों और सुरों से मुझे बेहद मुहब्बत हो गई थी। सूरह मरयम की तिलावत तो मेरे ऊपर जादू कर देती थी।

अरबी ज़ुबान से इस गहरे लगाव ही का नतीजा था कि मैं अरबों के बारे में किताबें पढ़नी शुरू कीं। ख़ास तौर से अरबों और यहूदियों के संबंध पर ढूंड ढूँड कर किताबें हासिल कीं और देख कर बहुत हैरान हुई कि अगरचे अक़ाइद के एतबार से यहूदी और अरब एक दूसरे के बहुत क़रीब हैं मगर यहूदी इबादतख़ानों में फ़िलसतीनी अरबों के विरुध बहुत ज़बरदस्त ज़हर उगला जाता है। साथ ही ईसाईयों के व्यवहार ने मुझे बहुत निराश किया, मैं ने ईसाईयत को जटिल मसाइल के गोरख धंदे के अलावा कुछ न पाया कि चर्च ने बहुत से अख़लाक़ी, सियासी और माली व संस्कृति ख़राबियों के साथ एक न ख़त्म होने वाला मेल मिलाप का सिलसिला शुरू कर रखा है, उस ने ख़ास तौर से मुझे बहुत परेशान किया। मैं ने यहूदी और ईसाई इबादतख़ानों को बहुत क़रीब से देखा और दोनों को मुनाफ़िक़त (कपटाचार) और बुराई

की दलदल में डूबे हुये पाया।

मैं नसलन यहूदी थी इस लिये यहूदियत का अध्ययन करते हुये जब मैं ने महसूस किया कि इस्लाम तारीख़ी एतबार से उस के बहुत क़रीब है तो फ़ितरी तौर पर इस्लाम और अरबों के बारे में जानने का शौक़ पैदा हुआ और अरबी ज़ुबान की मुहब्बत ने इस शौक़ को और बढ़ा दिया।

1953 ई० के गर्मी के मौसम में मैं बहुत ज़्यादा बीमार पड़ गई। मैं बिस्तर पर लेटी थी जब एक शाम मेरी माँ ने पब्लिक लाइब्रेरी जाते हुये मुझ से पूछा कि मैं कोई किताब तो नहीं मँगाना चाहती मैं ने कुरआन के एक नुस्ख़े की फ़रमाइश की और वह आते हुये जार्ज सैल का अनुवाद किया हुआ कुरआन ले आई और इस तरह कुरआन से मेरे संबंध की शुरूआत हुई।

जार्ज सैल 18 वीं शताब्दी का ईसाई विद्यावान और प्रचारक था, मगर बहुत कट्टर धार्मिक और तंग नज़र। उस के अनुवाद की ज़ुबान मुश्किल है और हाशियों पर बिला ज़रूरत विषयों से हट कर हवाले दिये गये हैं ताकि ईसवी नक़्तए नज़र से उन्हें ग़लत साबित किया जा सके। चुनाचे एक बार तो मैं उसे बिल्कुल न समझ सकी। कुरआन मुझे बाइबल की बेहंगम कहानियों के ग़ैर मरबूत मलग़ोबे से कुछ ही बेहतर नज़र आया मगर मैं ने उस का अध्ययन करना न छोड़ा और उसे तीन दिन और रात बराबर पढ़ती रही यहाँ तक की थक गई।

उन्हीं दिनों क़िस्मत ने साथ दिया और पुस्तकों की एक दुकान पर मैं ने मुहम्मद मारमाडियूक पिकथाल का अनुवाद देखा जूँ ही मैं ने उस कुरआन को खोला मुझे एक ज़बरदस्त चीज़ मालूम हुई। ज़ुबान का हुस्न और बयान की सादगी मुझे अपने साथ बहा ले गई। भूमिका के पहले ही पैरे में अनुवादक ने बहुत ख़ूबसूरत तरीक़े से वज़ाहत की है कि यह कुरआनी अर्थों को जैसा कि

आम मुसलमान इसे समझते हैं अंग्रेज़ी भाषा में पेश करने की एक कोशिश, और जो शख़्स कुरआन पर यक़ीन नहीं रखता उस के अनुवाद का हक़ अदा नहीं कर सकता, दुनिया में कोई भी अनुवाद अरबी कुरआन की जगह नहीं ले सकता वग़ैरा। मैं तुरन्त समझ गई कि जार्ज सैल का अनुवाद नागवार क्यों था? अल्लाह तआला पिकथाल को बहुत सी रहमतों से नवाज़े। उन्हों ने बरतानिया और अमरीका में कुरआन को समझना आसान बना दिया और मेरे सामने भी रोशनियों के दरवाज़े खोल दिये। मैं ने इस्लाम में हर वह अच्छी, सच्ची और हसीन चीज़ पाई जो ज़िन्दगी और मौत को अर्थ और मक़सद देती है जबकि दूसरे धर्मों में हक़ मिट कर रह गया है उस को टुकड़ों में बाँट दिया गया है उस के आस पास कई तरह के घेरे खींच दिये गये हैं। कुरआन और उस के बाद मुसलमानों की तारीख़ के अध्ययन से मुझे यक़ीन हो गया कि अरबों ने इस्लाम को महान नहीं किया बल्कि यह इस्लाम है जिस की वजह से अरब दुनिया भर में कामियाब हुये।

मेरी बीमारी बरसों तक रही यहाँ तक कि 1959 ई० में पूरी तरह से स्वस्थ हो कर मैं ने अपना अधिक समय पब्लिक लाइब्रेरी न्यूयार्क में गुज़ारना शुरू किया। यहीं पर मुझे पहली बार हदीस की मशहूर किताब मिशकातुल-मसाहीब के अंग्रेज़ी अनुवाद की चार मोटी-मोटी किताबों से परिचय हुआ। यह कलकत्ता के मौलाना फ़ज़्लुर्रहमान की कोशिशों का नतीजा थीं। तब मुझे अंदाज़ा हुआ कि हदीस के संबंधित हिस्सों से परिचय के बग़ैर कुरआन पाक को मुनासिब और तफ़सीली तरीक़े से समझना मुम्किन नहीं। ज़ाहिर है पैग़म्बर अलैहिस्सलाम जिन पर बराहे रास्त वह्‌ी होती थी की रहनुमाई और तशरीह के बग़ैर ख़ुदा के कलाम को कैसे समझा जा सकता है। इसी लिये इस बात में कोई शक नहीं कि जो लोग हदीस को नहीं मानते, असल में वह

क़ुरआन के भी इंकार करने वाले हैं।

मिशकात के तफ़सीली अध्ययन के बाद मुझे इस हक़ीक़त में कुछ भी शक न रहा कि क़ुरआन ख़ुदा का उतारा हुआ है। इस बात ने इस चीज़ को मज़बूती दी कि क़ुरआन अल्लाह तआला का कलाम है और यह मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की दिमाग़ी मेहनतों का नतीजा नहीं। यह एक हक़ीक़त है कि क़ुरआन ज़िन्दगी के बारे में तमाम बुनियादी सवालात का ऐसा ख़ामोश रहने वाला, ठोस और संतुष्ठ करने वाला जवाब देता है जिस की मिसाल कहीं और नहीं मिलती।

मेरे पिता ने एक बार मुझे बताया कि दुनिया में कोई पद (दर्जा) हमेशा रहने वाला नहीं है इस लिये हमें बदलते हुये हालात के साथ ख़ुद को बदल लेना चाहिये तो मेरे दिल ने उसे क़ुबूल करने से इंकार कर दिया और मेरी यह प्यास बढ़ती ही चली गई कि मुझे वह चीज़ मिले जो हमेशा बाक़ी रहने वाली हो और ख़ुदा का शुक्र है कि जब मैं ने क़ुरआन पाक को पढ़ा तो मेरी प्यास बुझ गई और मुझे मेरी पसंद की चीज़ मिल गई। मुझे पता चल गया कि अल्लाह की ख़ुशी के लिये जो भी नेक काम किया जाये वह कभी बेकार नहीं जाएगा और दुनिया में उस का कोई बदला न मिले, तो आख़िरत में उस का इनआम ज़रूर मिलेगा। इस के मुक़ाबिले में क़ुरआन ने बताया कि जो लोग किसी अख़लाक़ी क़ानून के बग़ैर ज़िन्दगी गुज़ारते हैं और ख़ुदा की ख़ुशी को सामने नहीं रखते, दुनियावी ज़िन्दगी में चाहे वह कितने ही कामियाब हों मगर आख़िरत में बहुत ही घाटे में रहेंगे। इस्लाम की शिक्षा यह है कि हमें हर वह बेकार और बेफ़ायदा काम छोड़ देना चाहिये जो अल्लाह के हुक़ूक़ और बन्दों के हुक़ूक़ के रास्ते में रूकावट बनता हो।

क़ुरआन की इन शिक्षाओं को मेरे सामने हदीस और रसूले पाक सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पवित्र जीवन ने और ज़्यादा

ज़ाहिर (स्पष्ठ) और रोशन किया जैसा कि हज़रत आयशा सिद्दीक़ा रज़ि० ने एक बार फ़रमाया "आप (सल०) के अख़लाक़ कुरआन के बिल्कुल मुताबिक़ थे" और वह कुरआनी शिक्षाओं का पूरे तौर से नमूना थे। मैं ने देखा कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पवित्र जीवन का एक-एक पहलू मिसाली है एक बच्चे की हैसियत से, एक बाप की हैसियत से, एक पड़ोसी, एक ताजिर, एक प्रचारक, एक दोस्त, एक सिपाही और एक फ़ौजी जरनेल के एतबार से एक फ़ातेह एक ग्रंथकार, एक विधायक (क़ानून बनाने वाला), एक शासक और सब से बढ़ कर अल्लाह के एक सच्चे आशिक़ के लिहाज़ से वह ख़ुदा की किताब की हूबहू मिसाल थे।

फिर नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की दिन भर की मशग़ूलियात के बारे में जान कर मैं बहुत प्रभावित हुई, वह दिन का एक लम्हा भी बेकार न करते और सारा समय अल्लाह और उस की मानवजाति के लिये समर्पण रखते। उन का अपनी बीवियों से सुलूक निहायत न्याय वाला और मिसाली था। इंसाफ़ और न्याय और तक़्वा (अल्लाह से डरना) का यह हाल था कि उन की प्यारी बेटी हज़रत फ़ातिमतुज़-ज़ोहरा रज़ि० ने जाइज़ ज़रूरत के तहत एक ग़ुलाम के लिये दरख़ास्त की तो उसे तक़्वा अपनाने को कहा और अपने घर वालों पर दूसरे मुसलमानों की ज़रूरतों को महानता दी।

इस्लाम के पैग़म्बर स० ने ज़िन्दगी का मक़सद ऐश पसंदी नहीं बल्कि "कामियाबी" क़रार दिया। चुनाचे आप की शिक्षा के अनुसार जो शख़्स आख़िरत की कामियाबी के लिये संकल्प के साथ अल्लाह तआला की उपासना करता है उसे उस जज़्बाती सुकून के नतीजे में ख़ुशी और प्रसन्नता ख़ुद बख़ुद हासिल हो जाती है जो हज़ार प्राकृतिक ऐश के बाद भी नहीं मिलती। इस का यह मतलब नहीं कि आप दुनियावी ज़िन्दगी से बिल्कुल अलग

थे, वह रोज़ाना की ज़िन्दगी की ज़रूरियात का ख़ास लिहाज़ करते थे, ख़ुश मिज़ाज और ख़ुश बयान थे, बच्चों के साथ खेल भी लेते थे मगर असल तवज्जोह के क़ाबिल उन्हों ने आख़िरत ही की ज़िन्दगी को समझा और प्राकृतिक व रूहानी ज़िन्दगी में काफ़ी सतुलन पैदा कर लिया।

कुरआन और हदीस के अलावा मैं ने इस्लाम पर बहुत से दूसरे अनुवाद भी पढ़े, जैसे किताबुल-हिदाया जो इस्लामी फ़िक़ः की तशरीह है।

अब मैं ने फ़ैसला कर लिया कि इस्लाम के प्रभाव अपनी ज़िन्दगी पर ग़ालिब करूँगी। शुरू में मैं ने अपने तौर पर न्यूयार्क के इस्लामी मरकज़ में मुसलमानों से मुलाक़ात की राहें पैदा कर लीं और बड़ी ख़ुशी हुई कि जिन लोगों से मेरा संबंध हुआ है, वह अच्छे लोग थे। इस्लामी मरकज़ की मस्जिद में मैं ने मुसलमानों को नमाज़ पढ़ते हुये देखा और इस बात ने मेरे इस यक़ीन को मज़बूत कर दिया कि सिर्फ़ इस्लाम ही पूरे तौर से आसमानी धर्म है, बाक़ी धर्मों में सिर्फ़ नाम की सच्चाई मौजूद है।

अब मैं इस फ़ैसले पर पहुंच गई थी कि इस्लाम ही सच्चा धर्म है और इस्लाम ही में मौजूदा ज़माने की संस्कृतिक बुराईयों का मुक़ाबिला करने और उन पर विजयी होने की योग्यता मौजूद है। चुनाचे मैं ने इस्लाम का अध्ययन करने के बाद इसे कुबूल कर लिया।

इस्लाम कुबूल करने के बाद मेरी मंज़िल कराची थी जहाँ मैं मौलाना मौदूदी की दावत पर गई जब मैं कराची पहुँच गई तो वहाँ मौलाना मौदूदी के चाहने वालों ने मुझे हाथों हाथ लिया और बेहद सेवा व आवभगत की। कुछ दिन बाद मैं जहाज़ के द्वारा लाहौर आ गई और मौलाना के घर ठहरी, मैं मौलाना की बच्चियों

की उम्र की थी इस लिये मुझे उस घर में कोई अजनबिय्यत महसूस न हुई। कुछ दिनों के बाद मेरा निकाह जमाअते इस्लामी के एक मुख़लिस सदस्य मुहम्मद यूसुफ़ ख़ाँ से हो गया, मैं ने इस रिश्ते को ख़ुशी के साथ कुबूल कर लिया और यह फ़ैसला कर लिया कि जाहिलियत की तमाम रस्मों का इंकार और नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की हर सुन्नत की उपासना करना मेरी ज़िन्दगी का मक़सद है। अल्लाह का शुक्र है कि मैं अपने नये घर में ख़ुशी व सुकून के साथ ज़िन्दगी गुज़ार रही हूँ और आज तक किसी उलझन या परेशानी का शिकार नहीं हुई।

मूसा रयूचनगोरा (तनज़ानिया)

(Musa Rwechungura)

1945 ई० में जबकि मेरी उम्र छः वर्ष की थी, मुझे रोमन कैथोलिक चर्च में बतसपमा दिया गया और योसतास नाम रखा गया। उस समय तक मेरे माँ बाप बेधर्म थे, मगर वह रोमन कैथोलिक में दिलचस्पी ज़रूर रखते थे कि हमारे इलाक़े में यही धर्म परिचित था। इस सूरत में ईसाई धर्म अपनाने में मेरे इरादे व इख़्तियार का कोई दख़ल न था।

10 वर्ष की उम्र में मैं रोमन कैथोलिक स्कूल में दाख़िल हुआ, जहाँ उस ज़माने के निसाब के साथ साथ धार्मिक शिक्षा भी दी जाती थी। 1960 ई० तक मैं उसी स्कूल में पढ़ता रहा, जबकि अगर सही शब्दों का प्रयोग करूँ तो यह कहूँगा कि क़ैदी की ज़िन्दगी गुज़ारता रहा। उस की वजह यह है कि कोशिश के बावजूद मैं किसी और धर्म के बारे में कुछ जानकारी न हासिल कर सका, हालाँकि मुझे दूसरे धर्मों के बारे में जानने का शौक़ था।

1959 ई० में इतिहास के घंटे में पहली बार मुझे इस्लाम और ईसाईयत के बारे में जानने का इत्तिफ़ाक़ हुआ और मेरे ज़ेहन में कुछ बढ़ोतरी पैदा हुई उस से पहले मैं मुसलमानों को बेधर्म और काफ़िर समझता था और प्रोटेस्टेन्टों को भटकती हुई भेड़ें, मगर अब मेरे ख़यालात में बेदारी की एक लहर पैदा हो गई और ख़ास

तौर से इस्लाम के बारे में तफ़सील से जानने की खोज और बढ़ती गई मगर अफ़सोस कि मुझे इस का कोई मौक़ा न मिला ईसाईयत का अध्ययन किया तो मार्टन लोथर और इंगलिस्तान के हेनरी हशतुम पर बात आ कर रुक गई फिर भी यह प्रश्न ज़ेहन में तूफ़ान मचाने लगे।

1. क्या यसूअ मसीह ख़ुदा हैं?
2. तसलीस की कोई हक़ीक़त है उस के सुबूत क्या हैं?
3. जहन्नम क्या है क्या यह उम्मीद और आराम की जगह है या डर और सज़ा की?
4. क्या पोप को वास्तव में वह इख़तियारात हासिल हैं जिस का वह दावा करता है? आख़िर कैसे?
5. पादरी गुनाहों की माफ़ी की ज़िम्मेदारी क्यों लेते हैं जबकि ख़ुद मसीह ने ऐसी कोई बात नहीं की थी?
6. बाइबल लोगों की नफ़सियात और अक़्ल के क़रीब क्यों नहीं है?
7. क्या बाइबल बुतों की पूजा करने की इजाज़त देती है, अगर ऐसा नहीं है तो फिर रोमन कैथोलिक चर्च में ऐसा क्यों होता है?
8. मरयम को ख़ुदा की माँ क्यों कहा जाता है जबकि मसीह ने उसे इस लक़ब से कभी नहीं याद किया?
9. जैसा कि चर्च की तरफ़ से दावा किया जाता है रोटी मसीह के शरीर में कैसे बदल जाती है (यह रोटी इशाए रब्बानी के मौक़े पर लोगों में बाँटी जाती है)
10. पीटर के बारे में क्यों यह दावा किया जाता है कि वह चर्च की बुनियाद है?

यह और इस तरह के कई और प्रश्नों ने मेरे दिल व दिमाग़ में घबराहट की लहरें पैदा कर दीं। मेरा इल्म बड़ा अपूर्ण था। पादरी के पास गया और उस ने जवाब देने की कोशिश की मगर इतमीनान न हुआ। प्रश्न दोहराये तो सख़्ती से मना कर दिया गया कि चुपके से अपने ईमान पर क़ायम रहूँ और ऐब न निकालूँ। "असल में इन बातों में कुछ भेद हैं जो हमारी समझ में नहीं आ सकते" पादरी साहब ने ज़ोर दे कर कहा और मैं वास्तव में ख़ामोश हो गया। घबराहट की लहरें सहम कर वक़्ती तौर पर सो गई यहाँ तक कि मैं ने शिक्षा पूरी कर ली और स्कूल से छुट्टी पा ली।

1963 ई० में एक मुसलमान से मेरी दोस्ती हो गई उस ने मुझे इस्लाम के बारे में बहुत कुछ बताया और पूरी कोशिश की कि मैं उन का दीनी भाई बन जाऊँ मगर उसे कामियाबी न हुई फिर भी अगरचे वह नाकाम रहा मगर मेरे दिल में उस ने इस्लाम के लिये एक ज़बरदस्त ख़्वाहिश पैदा कर दी। मैं उन दिनों टाँगानेगा झील के किनारे ठहरा हुआ था, जल्द ही मुझे यह जगह छोड़ कर उत्तरी इलाक़े में जाना पड़ा, जहाँ मैं ने एक बार फिर ईसाईयत के बारे में अपने शुकूक व शुबहात का इज़हार किया। मैं चाहता था कि मुझे इन प्रश्नों के उत्तर मिल जाएँ, मेरा इतमीनान हो जाये और अपने धर्म पर क़ायम रहूँ वहाँ चर्च से संबंधित लोगों ने मुझे एक किताब दी जिस का विषय थाः "Let God be True" उस में बहुत सी बातें बाइबल के हवाले से सही साबित करने की कोशिश की गई थीं।

उन्हीं दिनों एक और मुसलमान से मेरा परिचय हो गया, यह मुसलमान भी अपने धर्म पर बहुत गर्व करता था। मैं ने उस की वजह पूछा तो कहने लगा मेरा धर्म बिल्कुल सच्चा है, इस के अक़ाइद बड़े ही सादा हैं, उन में कोई उलट फेर नहीं और हम

बिल्कुल उसी तरह इबादत करते हैं जिस तरह हमारे पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम किया करते थे। यह बातें ऐसी थीं कि भुलाई नहीं जा सकती थीं और अपने अन्दर बहुत ज़्यादा दिल को खींचने की योग्यता रखती थीं। ऊपर ज़िक्र की हुई किताब भी मेरे अध्ययन में थी और मैं अपने आप को संतुष्ठ महसूस करता था नतीजा यह हुआ कि मैं सख़्त उलझ कर रह गया। समझ में नहीं आता था क्या करूँ घबरा कर एक दिन अपने मुसलमान दोस्त से कहाः-

"मैं इन उलझाने वाली बातों से सख़्त दुखी हो गया हूँ जो हर धर्म में पाई जाती हैं" मेरा दोस्त मेरी बात पर मुसकुराया और बड़े हौसले, दर्दमंदी और हमदर्दी से इस्लामी शिक्षाओं की वज़ाहत की। मैं बहुत हैरान हुआ और ख़ुश भी कि यहाँ किसी क़िस्म की कोई पेचीदगी थी न उलझन, अलग-अलग बयान थे न तवह्हुम परस्ती, यह बातें मेरे दिल में उतर गईं मैं उस दोस्त के पास तीन महीने तक ठहरा रहा। इस्लाम के बारे में मेरा ज़ेहन साफ़ हो गया।

रोज़गार ने मुझे उस दोस्त से भी जुदा कर दिया। जनवरी 1964 ई० में एक और स्थान पर मेरा एक ऐसे मुसलमान से परिचय हुआ जो पहले दोनों मुसलमानों से ज़्यादा पढ़ा लिखा था, उस ने मेरे ज़ेहन से इस्लाम के बारे में रहे सहे संदेह भी खुरच डाले। मैं ने चर्च जाना छोड़ दिया ज़्यादा समय सोच विचार और अपने आप को समझाने में ख़र्च होता। एक महीने तक यही हालत रही। मैं इस नतीजे पर पहुँच गया कि इस्लाम ही ख़ुदा का सच्चा धर्म है और अब इस से दूर रहना बदक़िस्मती के सिवा और कुछ नहीं होगा। चुनाचे 23 फ़रवरी 1964 ई० को मैं ने मुसलमानों की एक सभा में इस्लाम कुबूल करने का एलान कर दिया मेरा इस्लामी नाक मूसा रखा गया।

अलहमदु-लिल्लाह अब मैं मुसलमान हूँ। एक ऐसे धर्म को मानने वाला जो बिल्कुल सच्चा है और ज़िन्दगी गुज़ारने का पूरा तरीक़ा पेश करता है जिस में तीन ख़ुदाओं की बजाये एक ख़ुदा की इबादत होती है और बिल्कुल इस्लाम के पैग़म्बर के तरीक़े पर जिस में किसी आसमानी किताब या पैग़म्बर का इंकार नहीं किया जाता और जिस में मूर्तियों की पूजा पाठ का नाम तक नहीं है।

आमिर अली दाऊद (इंगलिस्तान)

"यक़ीनन इस्लाम ही आख़िरी, मुकम्मल और सच्चा दीन है। यह ठीक है कि मुसलमान आज अपनी ज़ाती कोताहियों इस्लामी उसूलों से फिर जाने और दुनिया में खेल व कूद (बेमक़सद) में ज़िन्दगी बसर करने के कारण विश्वव्यापी बिरादरी में अपनी विशेषता का मक़ाम खो चुके हैं लेकिन यह बात किसी शख़्स या अशख़ास के ज़ाती व्यक्तिगत या सम्मेलनी कर्मों की है उस का इस्लाम के बुनियादी ठोस और मज़बूत उसूलों से कोई संबंध नहीं है।"

यह थे वह जोशीले शब्द जो जनाब आमिर अली दाऊद ने कहे हैं। उन्हों ने 20 जून 1969 ई॰ जुमा के दिन शाही मस्जिद लाहौर में मौलाना अब्दुर्रहमान जामी के हाथ पर इस्लाम कुबूल किया। वह उस से पहले ईसाई धर्म के मानने वाले थे।

34 साल के ख़ूबसूरत दाऊद साहब का पहला नाम पेट्रक डेविड था वह 1957 ई॰ से ब्रिटिश कौनसिल लाहौर में एजूकेशन सिक्रेट्री की हैसियत से काम कर रहे थे। उन के साथ उन की बीवी (पत्नी), बेटा सुहैल रज़ी और बेटी सबरीना आलिया भी मुसलमान हो गये।

आमिर अली दाऊद ने इस्लाम कुबूल करने के कारण बयान करते हुये कहाः-

"मैं एक ईसाई ख़ानदान से संबंध रखता था, मगर मेरे दादा पैदाइशी तौर पर ईसाई न थे, वह एक ऊँची ज़ात के ब्रहमण थे अंग्रेज़ों ने बर्रेसग़ीर पर क़ब्ज़ा किया तो मेरे दादा ईसाई हो गये और पिता जी ने भी यही धर्म अपना लिया, ख़ुद मुझे भी शुरू उम्र ही से धर्म से ख़ास लगाव था। अध्ययन का शौक़ गोया घुट्टी में पड़ा था। इस लिये थोड़ा सा समय मिलने पर भी पुस्तक दोस्त बनी रहती। ईसाईयत मेरा ख़ास विषय था"।

लेकिन वाक़िया यह है कि ईसाईयत का अध्ययन ज़ेहन में अजीब अजीब प्रश्न पैदा करता रहता। एक में तीन, और तीन में एक। यह फ़लसफ़ा मेरी समझ से बाहर था जितना पढ़ता जाता था ज़ेहन उतना ही उलझता जाता था। ईसाईयत पर विश्वव्यापी शोहरत के भाषण देने वालों के लेकचर भी सुने मगर दिल को इतमीनान न हुआ, फिर मुहब्बत, मुहब्बत की रट सख़्त परेशान कर देती और मुझे वह सारे "कारनामे" याद आ जाते जो यूरोप की ईसाई ताक़तें ऐशिया और अफ़रीक़ा में अंजाम दे रही थीं क्या मुहब्बत इसी का नाम है मैं अकसर सोचता रहता।

फिर एक और सवाल भी मुझे अकसर परेशान करता रहता और वह यह की इंसान की पैदाइश का मक़सद क्या है? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये मैं ने हज़ारों पन्ने पढ़ डाले, सैकड़ों लेक्चर सुने और बीसों रातें ग़ौर व फ़िक्र में जाग कर गुज़ार दीं। लेकिन ईसाईयत मुझे इस महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर न दे सकी।

बदक़िस्मती से मैं न तो अरबी ज़ुबान जानता हूँ न ही उर्दू पढ़ सकता हूँ फिर भी मैं ने क़ुरआन का अंग्रेज़ी अनुवाद हासिल किया और पूरे ध्यान के साथ उस का अध्ययन शुरू कर दिया। शुरू ही से मेरे ज़ेहन की गाँठें खुलने लगीं और मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया। क़ुरआन कहता है कि जब आदम को पैदा किया गया तो अल्लाह ने फ़रिश्तों को आदम के सामने सज्दा करने का

हुक्म दिया। इस से यह बात खुल कर सामने आ गई कि अल्लाह तआला को सब से ज़्यादा महबूब और पसंदीदा सज्दा है जब उस ने अपनी नूरानी मानवजाति को सज्दा करने का हुक्म दिया तो उस का मंतिक़ी और अकेला नतीजा इस के अलावा कुछ नहीं कि अब इंसान ख़ुदा के सामने अपने सिर को झुकाए।

कुरआन के अध्ययन ने फ़िक्र की बहुत सी उलझनें साफ़ कर दीं और इंजील के विपरीतता (तज़ादात) उभर कर सामने आ गये यह बात ज़ाहिर हो गई कि इंजील और ज़ुबूर के अंदर बहुत ज़्यादा उलट फेर कर दिया गया है और यह अब इंसानियत की रहनुमाई (सुधार) नहीं कर सकतीं चुनाचे यह कितनी अजीब बात है कि इंजील के मुताबिक़ हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम ने शादीशुदा ज़िन्दगी बसर ही नहीं की फिर उन को मानने वाले ऐसा किस वजह से करते हैं दूसरे यह कि हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम की उम्र आठ साल की थी जब आप के ख़तने हुये मगर ईसाई लोग सिरे से ख़तने कराने के ख़िलाफ़ हैं।

कुरआन के बाद मैं ने इस्लाम के विषय पर बहुत सी दूसरी पुस्तकें भी पढ़ीं और मेरा यह ख़याल यक़ीन की सूरत इख़्तियार करता चला गया कि कुरआन और इस्लाम का पैग़ाम प्राकृतिक, मुकम्मल और विश्वव्यापी है उस का ख़िताब बराहेरास्त लोगों से है उस की पहुंच इंसान की पूरी ज़िन्दगी और नफ़सियात तक है और इस बात पर मुझे बिल्कुल यक़ीन हो गया है कि इस्लाम दुनिया के हर धर्म से बेहतर धर्म है।

मैं ने ईसाईयत और इस्लाम के बारे में अपने ख़यालात का ज़िक्र कई ज़िम्मेदार पादरियों से किया। मैं उन्हें साफ़ तौर से कहता था कि आख़िर तुम लोगों को धोका क्यों देते हो और क्यों साफ़-साफ़ नहीं बताते कि हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) अल्लाह के सच्चे रसूल हैं। मेरी इन बातों पर वह बहुत

ज़्यादा क्रोधित होते मगर जवाब में कोई दलील नहीं दे पाते।

उन्हीं दिनों मैं ने पैग़म्बरे इस्लाम और उन के साथियों की ज़िन्दगी का अध्ययन किया तो मेरी आँखों के सामने से रहे सहे पर्दे भी हट गये। मैं ने महसूस किया कि अगर मैं इस पवित्र व पाक क़ाफ़िले से दूर रहा तो बदक़िस्मती की मौत मरूँगा और पक्का इरादा कर लिया कि इस धर्म से दूर नहीं रहूँगा जिस ने उमर रज़ि॰ और सलाहुद्दीन जैसे लोगों को पैदा किया और जिस की उपासना करने वाले इस गये गुज़रे दौर में भी बहरहाल अख़लाक़ी तौर पर सब से अच्छे लोग हैं। मैं यह इरादा कर ही रहा था कि एक अजीब क़िस्सा पेश आ गया।

हुआ यह कि मेरी बच्ची ईसाईयों के एक स्कूल में पढ़ती थी। वहाँ कुछ मुसलमान बिच्चियाँ भी शिक्षा हासिल करती थीं। धार्मिक पीरियड का समय आया तो टीचर ने कहा जो बच्चियाँ ईसाई हैं वह गिर्जे में चलें। मेरी बेटी सबरीना आलिया अपनी जगह पर बैठी रही टीचर ने पूछा कि तुम गिर्जे में क्यों नहीं गई तो उस ने तन कर जवाब दिया कि हम मुसलमान हैं यह जवाब सुन कर ईसाई टीचर हैरत की तसवीर बन गई। स्कूल की प्रिन्सिपल ने मुझे इस क़िस्से की ख़बर दी। मैं ख़ुद हैरान रह गया बहरहाल मैं ने स्कूल वालों से कहा कि यह मेरी बेटी का ज़ाती मुआमला है और दो-एक साल गुज़रे थे कि यही सारे ख़ानदान का मुआमला बन गया। मैं ने इस्लाम कुबूल कर लिया और इस के साथ ही मेरी बीवी मेरी बच्ची और बच्चे ने भी ख़ुशी के साथ इस्लाम कुबूल कर लिया। हम सब अपने इस सौभाग्य पर अल्लाह तआला के बहुत ज़्यादा शुक्रगुज़ार हैं।

(बशुक्रिया मुहम्मद रसूलुल्लाह स॰ ग़ैरों की नज़र में)

मुहम्मद मारमाडियूक पिक्थाल

(इंगलिस्तान)

मारमाडियूक पिक्थाल 17 अप्रैल 1875 ई० को इंगलिस्तान में सफ़्फ़क के क़रीब एक गाँव में पैदा हुये। उन के पिता चारलस पिक्थाल उसी गाँव के एक गिरजा घर के पादरी थे। चारलस की पहली बीवी से 10 बच्चे थे उन की मृत्यु हो गई तो दूसरी बीवी से मारमाडियूक पिक्थाल पैदा हुये।

मरमाडियूक ने हीरो के प्रसिद्ध पब्लिक स्कूल में शिक्षा हासिल की उन के साथ पढ़ने वाले छात्रों में से जिन लोगों ने आगे चल कर बरतानिया की सियासी और समाजी ज़िन्दगी में बड़ा नाम पैदा किया उन में सरविन्सटन चरचल भी शामिल थे चुनाचे दोनों की दोस्ती आख़िर तक क़ायम रही। स्कूल की शिक्षा को ख़त्म करने के बाद उन के सामने दो रास्ते थे एक यह कि आक्सफ़ोर्ड यूनीवर्सिटी में ऊँची शिक्षा के लिये दाख़िल हो जायें या फिर एक दोस्त मिस्टर डोलिंग के साथ फ़लस्तीन की सैर व सियाहत करें, फ़लस्तीन पर उस ज़माने में तुर्कों की हुकूमत थी और डोलिंग को वहाँ अंग्रेज़ी सफ़ारतख़ाने (दुतावास) में नोकरी मिल गई थी। मारमाडियूक पिक्थाल ने दूसरा रास्त अपनाया और आक्सफ़ोर्ड के प्रोग्राम को ख़त्म कर के फ़लस्तीन चले गये यहीं से उन की ज़िन्दगी में वह परिवर्तन आया जिस ने हमेशा के लिये उन के

भविश्य का फ़ैसला कर दिया।

पिक्थाल साहब बहुत ज़्यादा योग्यता (क़ाबलियत) के मालिक थे। बहुत सी ज़ुबानें सीखने का उन्हें शौक़ था चुनाचे उन्हों ने मादरी ज़ुबान के अलावा फ़्रानसीसी, जर्मन, अतालवी और हस्पानवी में बहुत ज़्यादा महारत हासिल की। पूरबी देशों में वह बहुत समय तक रहे और शाम, मिस्र और ईराक़ का सफ़र करते रहे। बैतुल-मुक़द्दस में उन्हों ने अरबी सीखी और उस में कमाल हासिल किया। उसी ज़माने में वह इस्लाम से इतना प्रभावित हो चुके थे कि मस्जिदे अक़्सा में प्रिन्सिपल से अरबी पढ़ते पढ़ते उन्हों ने अपना धर्म बदलने की इच्छा ज़ाहिर की। प्रिन्सिपल ज़्यादा उम्र के थे और तजर्बाकार भी, उन्हों ने यह देख कर कि नवजवान लड़के का यह जज़्बाती फ़ैसला न हो, उन्हें अपने माँ बाप से मशवरा करने की राय दी, पिक्थाल लिखते हैं:

"उस बात ने मेरे दिल पर अजीब प्रभाव डाला। इस लिये कि मैं समझे बैठा था कि मुसलमान दूसरों को अपने धर्म में लाने के लिये बेताब रहते हैं मगर इस बात चीत ने मेरी राय बदल दी और मैं यह समझने पर मजबूर हो गया कि मुसलमानों को बिला वजेह मुतअस्सिब (साम्प्रदायीक) जाना जाता है।"

इस्लाम के बारे में पिक्थाल का बराबर अध्ययन जारी रहा और वह बहुत ज़्यादा उस से प्रभावित हुये। मिस्र व शाम के मुस्लिम समाज का भी उन्हों ने गहरा और क़रीब से मुशाहिदा (अवलोकन) किया और इन सारी चीज़ों ने मिल कर उन के दिल व दिमाग़ को इस तरह घेर लिया कि उन्हों ने अरबी कपड़े पहनना शुरू कर दिये और इस्लाम की हक़ीक़त उन की रूह (मन) की गहराई में उतरती चली गई।

1913 ई० में पिक्थाल तुर्की गये जहाँ उन्हों ने तुर्कों की सियासी व समाजी और तहज़ीबी (संस्कृतिक) ज़िन्दगी का अध्ययन

किया। तुर्कों की समाजी और प्राकृतिक ख़ूबियों ने उन्हें पूरी तरह से अपनी ओर झुका लिया चुनाचे ग़ाज़ी तलअतबक और दूसरे नवजवान तुर्कों का ज़िक्र इस तरह करते हैंः

"एक दिन मैं ने तलअतबक से कहा आप यूँ ही बग़ैर हथियार के फिरते रहते हैं आप को अपने साथ हथियारबंद मुहाफ़िज़ (सुरक्षाकर्मी) रखने चाहिये, जवाब में उन्हों ने कहा कि ख़ुदा से बढ़ कर मेरा कोई सुरक्षा करने वाला नहीं मुझे उसी पर भरोसा है, इस्लामी शिक्षा के अनुसार मौत वक़्त से पहले कभी नहीं आ सकती।"

पिक्थाल साहब ग़ाज़ी अनवर पाशा, शौकत पाशा, ग़ाज़ी रऊफ़बक और दूसरे तुर्क सुधारकों का ज़िक्र प्यार भरे अन्दाज़ में किया करते थे, उन का ख़याल था "लोग नाहक़ तुर्कों पर लादीनी (बेधर्मी) का अपराध लगाते हैं। मैं ने उन्हें हमेशा ख़ुदा से डरने वाला मुसलमान पाया।"

तुर्की में रहने के दौरान उन्हों ने इस्लाम कुबूल करने का पक्का इरादा कर लिया चुनाचे उन्हों ने ग़ाज़ी तलअतबक से कहाः "मैं मुसलमान होना चाहता हूँ" जिस का जवाब उन्हों ने यह दिया कि कुसतुनतुनिया में अपने इस्लाम लाने का एलान न कीजिये वर्ना हम लोग अंतर्राष्ट्रीय कठिनाईयों में फंस जायेंगे बेहतर है कि इस का एलान लन्दन से हो, यूरोप में इस के तबलीग़ी नताइज ज़बरदस्त रहेंगे"। इसी मशवरे का नतीजा था कि पिक्थाल साहब ने लन्दन जा कर दिसम्बर 1914 ई० में इस्लाम कुबूल करने का एलान कर दिया, जिस से वहाँ की इल्मी और सियासी दुनिया में हलचल मच गई और ईसाई कहने लगे कि जिस धर्म को पिक्थाल जैसा शख़्स कुबूल कर सकता है उस में यक़ीनन दिल मोह लेने वाली अच्छाईयाँ होंगी।

इस्लाम कुबूल करने पर पिक्थाल साहब के ख़याल यह थे "मैं

अपने अध्ययन के ज़ोर से मुसलमान हुआ हूँ और मेरे दिल में इस की बेहद क़द्र है। मुसलमानों को इस्लाम पुश्तैनी मिला है इस लिये वह उस की क़द्र नहीं करते। हक़ीक़त यह है कि मेरी ज़िन्दगी में जितनी परेशानियाँ आईं, उन में अमन व शांति का एक ही गहवारा इस्लाम साबित हुआ इस नेमत पर अल्लाह तआला का जितना भी शुक्र अदा करूँ कम है।"

जंग के दौरान मुहम्मद मारमाडियूक पिक्थाल लन्दन में इस्लाम के प्रचार का काम करते रहे वह जुमा का ख़ुत्बा देते, इमामत कराते, ईदों की नमाज़ पढ़ाते, और रमज़ान में तरावीह के इमाम होते। रिसाला "इस्लामिक रिविव" की तरतीब व संपादन भी उन्हीं के सुपुर्द थी इस बीच इदारा (संस्था) मालूमाते इस्लामी से भी संबंधित रहे।

पिक्थाल साहब 1920 ई० में उमर सुबहानी की दावत पर बम्बई आये जहाँ "बम्बई करानीकल" की इदारत शुरू की और 1924 ई० तक उस के संपादक रहे। उस दौरान उन्हों ने तुर्कों और हिन्दुस्तानी मुसलमानों की समस्याओं की खुल कर मदद की और क़ौमी आनदोलनों में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया।

1924 ई० में मुहम्मद मारमाडियूक पिक्थाल को निज़ामे दकन (दकन के शासक जिन को निज़ाम कहा जाता है) ने हैदराबाद बुला लिया वहाँ उन्हें चादर घाट हाई स्कूल का प्रिन्सिपल और रियासत की सिविल सर्विस का शिक्षक बनाया गया। हैदराबाद ही से उन्हों ने "इस्लामिक कलचर" के नाम से एक पत्रिका (रिसाला) निकालना शुरू किया जिस का मक़सद ग़ैर इस्लामी दुनिया को इस्लामी सभ्यता और उस की शिक्षाओं से परिचित कराना था। लगभग 10 साल तक इस रिसाले से जुड़े रहे और बड़े ख़ुलूस और लगन से इल्मी और इस्लाम के प्रचार की सेवाएँ करते रहे।

निज़ामे हैदराबाद ही की देखभाल में पिक्थाल साहब ने कुरआन मजीद का अनुवाद अंग्रेज़ी में करना शुरू किया। निज़ाम ने उन्हें दो साल की छुट्टी दे दी और उन्हों ने मिस्र जा कर जामिया अज़हर के विद्यावानों के मशवरों से इस अनुवाद को पूरा किया। यह पहला अंग्रेज़ी अनुवाद है जिसे एक मुसलमान अंग्रेज़ ने दुनिया के सामने पेश किया उस में बाईबल के अनुवाद जैसा मज़ा आता है और ज़ुबान की रवानी के एतबार से बहुत ज़्यादा मक़बूल है। इस से पहले पामर, राडवेल, और सैल वग़ैरा के अनुवाद राइज थे मगर पिक्थाल ने कुरआन के अनुवाद की भूमिका में साफ़ तौर पर लिख दिया "ऐसा शख़्स जो किसी पवित्र पुस्तक के इलहामी (ख़ुदा की तरफ़ से उतरने) का मानने वाला न हो, वह कभी उस के साथ इंसाफ़ नहीं कर सकता" यही कारण है कि ईसाई दुनिया इन Remarks से बहुत नाराज़ हुई। यह बात बिल्कुल सही है कि पिक्थाल का अनुवाद न सिर्फ़ प्रभाव डालने वाला है बल्कि सारी दुनिया में बहुत ज़्यादा मक़बूल है।

जनवरी 1935 ई० में मुहम्मद मारमाडियूक पिक्थाल हैदराबाद एजूकेशन सर्विस से रिटायर हो कर लन्दन चले गये वहाँ के निज़ाम ने उन्हें उन की ज़िन्दगी तक पेन्शन दी और वह इंगलिस्तान में दीन के प्रचार में मशग़ूल हो गये। "इस्लामिक कलचर" यहीं से छपने लगा। इस्लाम को फैलाने के लिये उन्हों ने एक अंजुमन भी क़ायम की। 19 मई 1936 ई० को दिल की हरकत बन्द होने से अचानक उन की मृत्यु हो गई और लन्दन में मुसलमानों के क़ब्रस्तान में दफ़न हुये। अगरचे उन की इच्छा यह थी कि उन की मौत हसपानिया में हो, जहाँ के इस्लामी दौर से उन्हें बहुत ज़्यादा मुहब्बत थी।

पिक्थाल यूरोपियन थे मगर इस्लामी अख़लाक़ उन के अन्दर पूरी तरह से पाया जाता था। पाँचों वक़्तों की नमाज़ों या रमज़ान

के रोज़ों में कभी नागा़ नहीं किया। सच्चे मुसलमान की तरह वह ख़ुदा पर पूरा भरोसा करते और हर काम को उस की ख़ुशी पर छोड़ देते थे। क़दम क़दम पर अल्लाह और उस के रसूल (सल०) का ज़िक्र रहता। बहुत शरीफ़ दिल के थे और उन से मिल कर ईमान में ताज़गी पैदा होती थी, उन्हों ने क़द्र करने के क़ाबिल तबलीग़ी और इल्मी सेवाएँ की हैं और कुरआन के अनुवाद के अलावा बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं जिन में The Cultural side of Islam ख़ास महत्व रखती है। यह उन ख़ुतबात का मजमूआ है जो उन्हों ने 1927 ई० में मदरसों में सालाना इस्लामी ख़ुतबात के सिलसिले में दिये थे, उन्हों ने दस बारह नाविल भी लिखे।

एच, एफ़, फ़ेलोज़ (इंगलिस्तान)

मैं ने अपनी ज़िन्दगी का ज़्यादा हिस्सा बरतानिया की शाही समुन्द्री फ़ौज में गुज़ारा है और उसी सिलसिले में 1914 ई० और 1939 ई० की आलमी (विश्वव्यापी) जंगों में भी हिस्सा लिया है।

डर और ख़तरे की जब भी ऐसी कोई हालत पेश आती मैं अचानक महसूस करता कि दिल में सिर्फ़ एक ही हस्ती का ख़याल आता है और दिल की गहराईयों से जो आवाज़ निकलती है उस की मंज़िल भी वही हस्ती होती है और वह हस्ती है अल्लाह तआला की। मगर ईसाई घराने में पैदा होने की वजह से अब तक मुझे यही बताया गया था कि दुनिया की व्यवस्था तसलीस पर क़ायम है यानी बाप बेटा और रूहुल-क़ुद्स, लेकिन मेरी अन्तरात्मा इस फ़ारमूले को मानने से इंकार करती रही, आगे बढ़ कर और ज़्यादा ग़ौर किया तो ईसवी धर्म में बहुत सी और भी समझ में न आने वाली बातें नज़र आई मिसाल के तौर पर कफ़्फ़ारे का फ़लसफ़ा बिल्कुल समझ में नहीं आया। मैं अकसर सोचता कि जब हमें अपनी दुनियावी ग़लतियों का नतीजा ख़ुद भुगतना पड़ता है तो यह कैसे सम्भव है कि दूसरी दुनिया में हम अपने गुनाहों (पापों) की सज़ा से सिर्फ़ इस लिये बच जायेंगे कि यसूअ मसीह उन का कफ़्फ़ारा दे चुके हैं।

दूसरी बात जिस से मुझे बहुत वहशत (घबराहट) होने लगी

वह पैदाइशी पापी होने का नज़रिया (दृष्टिकोण) था। हालाँकि अगर ग़ौर से देखा जाये तो यह बात बिल्कुल ग़लत थी मैं ने रोज़ाना की ज़िन्दगी में ऐसे दृश्य देखे थे कि बराबरी और नर्मी का मिज़ाज रखने वाले लोग हमेशा दूसरों की भलाई सोचते हैं नवजवान भी आम तौर से अपने पड़ोसियों और मिलने जुलने वालों की मदद और सेवा ख़ुशी से करते हैं जहाँ तक बच्चों की बात है उन के माँ बाप अगर नेक और अच्छे हों और अध्यापक ज़हीन और तजर्बाकार हों तो उन की आदतें वास्तव में अच्छी और प्रशंसा के क़ाबिल होती हैं चुनाचे पैदाइशी गुनहगार का नज़रिया (दृष्टिकोण) इन्सानियत की बेइज़्ज़ती के अलावा और कुछ नहीं था, इन आशंकाओं और प्रश्नों ने मेरे ज़ेहन को मज़बूती से जकड़ लिया था, समझ में नहीं आता था कि क्या करूँ, ईसाईयत हर चीज़ का उल्टा अर्थ बयान करती थी, मिसाल के तौर पर हज़रत मसीह अलैहिस्सलाम ने हुक्म दिया था कि मूसा अलैहिस्सलाम के उन 10 हुक्मों पर अमल करो जो अल्लाह ने उन्हें "सीना" नाम के पहाड़ पर अता किये थे और उन में पहला हुक्म यह था "मैं तुम्हारा मालिक हूँ तुम्हारा ख़ुदा हूँ, तुम मेरे अलावा किसी और को इबादत के लाइक़ नहीं मानोगे" मगर ईसाई तीन ख़ुदाओं की इबादत करने लगे।

फिर दूसरा हुक्म यह शुरू होता है "तुम अपने लिये कोई मूर्ती नहीं बनाओगे न ही उन के सामने सजदे करोगे" लेकिन यहाँ मरयम और ईसा की मूर्ती बना ली गई और खुले तौर पर उन की इबादत की जाने लगी।

मैं ने और ज़्यादा जानकारी हासिल की तो पता चला कि अगरचे मार्टन लोथर ने रोमन कैथोलिक चर्च के ख़िलाफ़ बग़ावत कर के बहुत सी काफ़िराना रस्मों को ख़त्म कर दिया था मगर यह धर्म पूरी तरह से उन गंदगियों से पवित्र न हो सका और

आज तक बहुत सी काफ़िराना रस्में प्रोटेसटेन्ट धर्म में भी मौजूद हैं और बुनियादी तौर पर दोनों धर्मों में कुछ ज़्यादा फ़र्क़ नहीं है।

इतिहास के अध्ययन से यह ख़याल भी परेशान करता रहता कि आख़िर हज़रत मसीह की ज़िन्दगी या मौत ने फ़लस्तीन के यहूदियों, रोमनों या आम लोगों पर तुरन्त प्रभाव क्यों नहीं डाले और इतिहास में इन के हालात विस्तार के साथ क्यों नहीं मिलते चुनाचे यह बात समझ में नहीं आती थी कि स्कूल में बाईबल के अशलोक तो पढ़ाये जाते थे मगर मसीह अलैहिस्सलाम की ज़िन्दगी पूरी तरह से छुपी हुई रखी जाती है। यह बात भी भूली नहीं जा सकती कि ईसाईयत का प्रचार तो हज़रत मसीह अलैहिस्सलाम की मृत्यु के कई शताब्दियों के बाद हुआ था।

धर्म के बारे में यह थी वह ज़ेहनी हालत जिस के तहत मुझे 1919 ई॰ और 1923 ई॰ के बीच ऐसे जहाज़ों में रहना पड़ा जो तुर्की के पानियों में अपना काम कर रहे थे यहीं पहले पहल मुसलमानों से परिचय हुआ और इस्लाम को जानने और उस का अध्ययन करने का शौक़ पैदा हुआ, ख़ास तौर से इस शिक्षा ने मेरे ध्यान को अपनी ओर खींच लिया कि "अल्लाह के अलावा कोई इबादत के लायक़ नहीं और मुहम्मद (सल॰) उस के रसूल (अवतार) हैं" मैं ने इस्लाम के बारे में पुस्तकें ख़रीद लीं उन में वह पुस्तकें ज़्यादा थीं जिन में इस्लाम के ख़िलाफ़ बहुत ज़्यादा पक्षपात था।

लगभग एक साल और गुज़र गया मैं ने दोबारा इस्लाम को समझने की कोशिश शुरू कर दी, अब मैं ने लन्दन के मुस्लिम मिशन से संबंध क़ायम किया वहाँ से मुझे मुसलमान ग्रंथकारियों की लिखी हुई पुस्तकें भेजी गईं, उन पुस्तकों से मुझे मालूम हुआ कि यूरोप के विद्यावान इबारतों को तोड़ मोड़ कर और उस के सही अर्थ को मिटा कर अपने मन में आने वाले अर्थ बयान करते

हैं यानी उन इबारतों का जो सही अर्थ है उस को बयान नहीं करते बल्कि उन के मन को जो अर्थ पसन्द आता है और जो उन के चाल ढाल के मुताबिक़ होता है वही अर्थ बयान करते हैं, इस पर मुझे बहुत दुख हुआ और हैरत भी। उन पुस्तकों से मुझे यह भी मालूम हुआ कि यूरोप इस्लाम के ख़िलाफ़ क्यों उधार खाये बैठा है, असल में एक बार फिर इस्लाम उभर रहा है। और ऐसे आनदोलन चल पड़े हैं जो पूरी कोशिश के साथ उसे उस की मुकम्मल और सही सूरत में पेश कर रहे हैं। और यह चीज़ साबित होती जा रही है कि सिर्फ़ इस्लाम ही इस ज़माने की ज़रूरतों को साथ ले कर इन्सान की रहनुमाई कर सकता है बाक़ी सारे धर्म और नज़रिये अपना मक़ाम खो चुके हैं और उन के लिये ज़माने की जटिल समस्याओं और फ़िक्री व नज़री अंधेरों में रास्ता बनाना असम्भव है।

मुख़तसर यह कि मुझे मेरे सारे प्रश्नों के उत्तर मिल गये मेरे दिल को तसल्ली हासिल हो गई और मैं मुसलमान हो गया। मेरा दावा है कि इस्लाम ही वह अकेला धर्म है जो हर एतबार से एक सच्चा धर्म है और यही वह सीधा रास्ता है जो हमें इस संसार के बनाने वाले (ख़ालिक़े अकबर) तक ले जा सकता है।

शैख़ बशीर अहमद शाद (पाकिस्तान)

मैं 1928 ई० में ज़िला शैख़ूपुरा के एक गावँ धयानगालू के एक ईसाई ख़ानदान में पैदा हुआ। मेरे पिता मिथयास साहब मशहूर पादरी थे और धर्म के प्रचार के सिलसिले में अपने ख़ानदानी ज़िला गुरदासपुर से शैख़ूपुरा चले गये थे मेरे दादा मुसम्मी झंडेमल भी कट्टर ईसाई थे और धर्म का प्रचार करते थे।

मेरे पिता जी मुझे भी एक कामियाब धर्म प्रचारक और पादरी बनाना चाहते थे। चुनाचे शुरू ही से मेरी शिक्षा व प्रशिक्षण धार्मिक तरीक़े पर हुई। प्राईमरी शिक्षा मैं ने एस, डी, ए, मिशन स्कूल चौहड़काना मंडी में हासिल की। जहाँ शुरू ही से कोशिश की जाती थी कि हर बच्चा बड़ा हो कर ईसाई धर्म का एक अच्छा प्रचारक बन सके। मैं अपनी पढ़ाई में बड़ा तेज़ था, स्कूल के धार्मिक कामों के अलावा धर्म प्रचारक लिटरेचर बाँटने वाली पार्टियों में भी शामिल होता मुझे बचपन ही से तक़रीरें करने और धर्म का प्रचार करने का बहुत शौक़ था और मेरे इस शौक़ को सारे अध्यापक और पादरी क़द्र और मुहब्बत की निगाह से देखते थे।

प्राईमरी के बाद मैं एस, डी, ए, मिशन हाई स्कूल रुड़की चला गया वहाँ भी मेरी शिक्षा और धर्म प्रचार का काम सब से अलग रहा। यहाँ मैं ईसाईयत के बुनियादी उसूलों जैसे तसलीस (तीन ख़ुदा होना), मसीह के ख़ुदा का बेटा होने की समस्या,

कफ़्फ़ारे की समस्या, मसीह के ख़ुदा होने की समस्या और इलाहियत के कुछ दूसरे मसाइल की ट्रेनिंग हासिल की। इस स्कूल में भी अध्यापक ख़ास तौर से प्रिन्सिपल एच, सी, एलेगज़िन्डर मेरे मुआमले में बहुत ख़ुश और संतुष्ट थे उन्हें मेरी सूरत में भविष्य का एक कामियाब धर्म प्रचारक और पादरी नज़र आ रहा था।

उसी बीच मेरे पिता जी का ट्रान्सफ़र हो गया और उन्हें रावलपिंडी जाना पड़ा और साथ ही एक ऐसी दुर्घटना पेश आई जिस ने मेरी दुनिया में अंधेरा कर दिया यानी 1944 ई० में मेरी माँ जी की मृत्यु हो गई मेरे पिता जी ने दूसरी शादी कर ली हमारी नई माँ सारे बच्चों से मुहब्बत और प्रेम से पेश आती थीं और आख़िर तक उस में कोई कमी न आई।

1947 ई० में मेरी शिक्षा और धर्म प्रचार का कोर्स ख़त्म हो गया और मैं ने उसी साल मसीही कलीसा के सेवक की हैसियत से लाहौर में काम करना शुरू किया। मैं ने रोमन कैथोलिक मिशन के साथ अपना संबंध जोड़ा था। 1947 ई० के आख़िर में मेरी शादी शर्क़पुर के एक प्रोटेस्टेन्ट पादरी घराने में हुई, मेरी पत्नी एक कट्टर ईसाई औरत थी।

धर्म प्रचार के मैदान में मेरा अंदाज़ बड़ा ही ख़तरनाक था जहाँ मैं ईसाई धर्म को हक़ धर्म के तौर पर पेश करता वहाँ इस्लाम से उस का मुक़ाबिला भी करता और बड़ी कोशिश कर के ईसाईयत को इस्लाम से महान धर्म साबित करता, इस सिलसिले में बहुत से मुसलमान विद्यावानों से मेरी बहस हुई फिर भी यह बात अजीब है कि बहस करने के बीच मेरे मुंह से तरकीबें और परिभाषाएँ निकल जातीं जिस पर मेरे साथी मुझे टोकते और ख़ुद मैं भी लज्जित हो जाता, जैसे अल्लाह की तरफ़ से उतरने वाली पुस्तकों का ज़िक्र आ जाता तो मैं कहता कि अल्लाह की तरफ़ से उतरने वाली पुस्तकें चार हैं, तौरात, ज़बूर, इंजील, क़ुरआन

मजीद। ख़ुदा के बजाये आम तौर पर अल्लाह का और हज़रत मसीह के बजाये हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के शब्द बोल जाता, इबादत को नमाज़ कह जाता वग़ैरा।

कलीसाई सेवा का काम करते हुये अभी ज़्यादा दिन नहीं गुज़रे थे कि वह लोग जिन के साथ में काम करता था अपने वतन बेल्जियम चले गये मैं भी दीहात को तरक़्क़ी देने वाले सरकारी विभाग में शामिल हो गया और शैख़ूपूरा चला गया।

उसी बीच बेल्जियम वाले मिशनरी वापस आ गये और मुझे दोबारा धर्म प्रचार का काम करने के लिये बुलाया मगर मैं ने उन के साथ काम करने से इंकार कर दिया। इस सिलसिले में मेरी बीवी, बाप और ससुर ने भी बहुत कोशिश की बल्कि क्रोधित भी हुये मगर मैं अपनी ज़िद पर क़ायम रहा, मुसलमानों के इतने क़रीब रहने के बाद अब मिशनरी सेवाएँ करने को जी नहीं चाहता था।

लेकिन 1959 ई० में धर्म प्रचार का काम करने के लिये मेरे ऊपर फिर ज़ोर डाला गया और इस बार मैं ज़्यादा देर तक इंकार न कर सका। फिर भी यह इरादा ज़रूर कर लिया कि अब ईसाईयत का प्रचार करते हुये इस्लाम पर कभी कोई एतराज़ (आपत्ती) नहीं करूँगा, बल्कि ख़ुदा ने मौक़ा दिया तो इस्लाम के ख़िलाफ़ उन तमाम आपत्तियों को हक़ीक़त और तहक़ीक़ की कसौटी पर परखने की कोशिश जारी रखूंगा।

मेरे धर्म प्रचार का केंद्र शैख़ूपूरा था, मगर हफ़्ते में दो बार मसीही प्रचार के लिये ज़िला लाहौर में भी बुलाया जाता, मुझे धर्म प्रचार का काम करने की क़ाबिलीयत पुश्तैनी मिली थी जिन्हें मेरी मेहनत और चतुरता ने और निखार दिया था, चुनाचे मैं हर क़िस्म की तक़रीरें ख़ुद ही तयार करता। इंजील के विभिन्न हिस्सों को कविता की सूरत देता और बहुत ही ख़ूबसूरत प्रभावित आवाज़ में ख़ुद ही पेश करता। एक ख़ूबसूरत आवाज़ वाला पादरी

बन कर मैं लोगों को अपनी तरफ़ घंटों मुतवज्जेह रखता था। मेरी मक़्बूलियत का यह हाल था कि पादरियों में से अधिक लोग मेरे गीत गाया करते थे और यही सिलसिला अब तक जारी है। लेकिन सच्ची बात यह है कि इस्लामी माहौल ने मुझ पर कुछ ऐसा जादू कर दिया था कि मैं ने मुसलमानों से सिर्फ़ संबंध ही क़ायम नहीं किया, बल्कि उन से एक न ख़त्म होने वाला रिश्ता जोड़ लिया। मेरी बीवी उस पर बहुत ग़ुस्सा होती और अपने और मेरे माँ बाप को सारी चीज़ें बताया करती, कभी जोश में आ कर घर में इस्लाम की कोई ख़ूबी (अच्छाई) बयान कर देता तो एक तूफ़ान उठ खड़ा होता और कई दिनों तक माहौल में तलख़ी (कड़वाहट) रहती फिर भी मैं ने हिम्मत न हारी और इस्लाम के बारे में मेरी तहक़ीक़ (रिसर्च) आगे ही आगे बढ़ती रही।

मुझे सारे आराम मिले हुये थे लेकिन दिली सुकून हासिल न था। मैं अपने आप को अंधेरों में भटक्ता हुआ महसूस करता था। साफ़ नज़र आता था कि मैं लोगों को अच्छी शिक्षाएँ देता हूँ मगर ख़ुद जिहालत के अंधेरों में भटक रहा था और लोगों को रोशनी की तरफ़ बुलाता था जबकि ख़ुद रोशनी के लिये तरस रहा था। धर्म का प्रचार करते समय और लोगों को शिक्षा देते समय यह ख़याल मुझे बराबर परेशान करता रहता था। मैं अपने वादे के मुताबिक़ इस्लाम पर एतराज़ तो हरगिज़ कोई न करता था, मगर यह ख़याल ज़ेहन को परेशान करता रहता था कि मैं ईसाईयत का प्रचार कर के अपने आप को और दुनिया को धोका दे रहा हूँ ख़ास तौर से दो सवाल तो रूह की फाँस बन गये और मैं उन के बारे में हमेशा सोचा करता:-

1. अगर ईसाईयत सच्चा धर्म है और उसी के अनुसार कार्य करने में ही इन्सानों की मुक्ति है तो यह धर्म ज़वाल (नीचे) की तरफ़ क्यों जा रहा है? हालाँकि कहा जाता है कि उस की

बुनियाद (आधार) मुहब्बत व सदाचार पर है।

2. इस के विपरीत इस्लाम को हर ईसाई झूटा ख़याल करता है और कहा जाता है कि उस की बुनियाद अत्याचार और तलवार पर क़ायम है फिर यह इतनी ज़्यादा तरक़्क़ी क्यों कर गया? जबकि अत्याचार और सख़्ती इन्सानी तबीयत के ख़िलाफ़ है।

इन्हीं दो बुनियादी समस्याओं की खोज मुझे जाँच पड़ताल के रास्ते पर दूर तक ले गई और मैं ज़ेहनी व दिली बेचैनी को लिये हुये हक़ की तलाश के लिये इधर उधर भटकता रहा। बड़े बड़े विद्यावानों से अगर एतराज़ की सूरत में कोई बात चीत करता और इल्मी तहक़ीक़ करता तो उस का एक ही मक़सद होता था कि धर्म के बारे में दिल के अन्दर जो शक व शुब्हे हैं वह दूर हो जायें और दिल को सुकून व इतमीनान हासिल हो जाये। जाँच पड़ताल का यह यमय लगभग दस साल तक रहा उस के बाद अल्लाह का लाख लाख शुक्र है कि अंधेरे के तमाम पर्दे एक एक कर के निगाहों से हटते चले गये। ज़ेहन के सारे शक व शुब्हे दूर हो गये इस्लाम एक रोशन चमक्ता हुआ सूरज बन कर मेरे सामने आ गया और अब उस से इनकार करना सम्भव ही न था। चुनाचे 23 जून 1968 ई० का मुबारक दिन था जबकि मैं अपने घर के दस लोगों के साथ गोजरानवाला की मक्की मस्जिद में गया और मौलाना मुहम्मद यूसुफ़ काशमीरी के हाथ पर इस्लाम कुबूल कर लिया।

यहाँ पर एक गंभीर दुर्घटना का ज़िक्र बहुत ज़रूरी है मैं रूहानी सुकून की तलाश में इधर उधर भटक रहा था कि मेरी बीवी एक लम्बी बीमारी के बाद इस दुनिया को छोड़ कर चली गई। मैं ने दूसरी शादी कर ली और मैं ने उस से जैसे ही इस्लाम की बात की उस ने मेरी बात मान ली और हक़ को तलाश करने के सिलसिले में मेरी सहयोगी बन गई अल्लाह उसे बेहतरीन बदला दे।

आख़िर में मैं मुख़्तसर तौर से इस्लाम और ईसाईयत के इन अक़ीदों का विषलेशण पेश करता हूँ जिन्हों ने एक ज़माने तक मुझे तहक़ीक़ी मैदान में मशग़ूल रखा।

सब से पहले मुझे तसलीस की समस्या ने परेशान किया, ईसाई अक़ीदे के मुताबिक़ एक ख़ुदा में तीन दुनियाएं हैं यानी बाप, बेटा और रूहे पाक, जिसे वह इन्सान के जिस्म में तीन चीज़ों मेरी समझ, मेरी याद और मेरी मर्ज़ी से भी तुलना देते हैं। वह तसलीस को बहुत बड़ा भेद भी कहते हैं जो इन्सान की समझ में नहीं आ सकता। मैं ने ग़ौर किया तो पता चला कि ईसाई लोग पहले एक ख़ुदा कह कर तौहीद का इक़रार करते हैं मगर फिर एक ख़ुदा में तीन शख़्स कह कर तौहीद को बिगाड़ देते हैं, दूसरे शब्दों में इक़रार तो तौहीद का करते हैं मगर मानते तसलीस को हैं कहते कुछ हैं करते कुछ हैं।

फिर यह बात भी काफ़ी परेशान करने वाली थी कि तसलीस का भेद इन्सान की समझ में नहीं आ सकता, ज़ाहिर है जो चीज़ समझ में न आ सके उस पर कैसे अमल किया जा सकता है। इस के विपरीत ज़मीन व आसमान, दुनिया और मानवजाति का सारा क़ानून पुकार पुकार कर गवाही देता है कि दुनिया की सारी चीज़ों का पैदा करने वाला सिर्फ़ एक ही है और उस के साथ कोई दूसरा शरीक नहीं है यानी तौहीद के तसव्वुर को आम आदमी समझ सकता है और इन्सानी तबीयत के अनुसार है। वह तमाम पुस्तकें जो अल्लाह की तरफ़ से उतारी गई हैं इस की गवाही देती हैं।

हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की शादियों को ईसाई ख़ूब उछालते हैं, मैं भी जब पादरी था और ईसाई धर्म के प्रचार में लगा हुआ था तो इस बात को एतराज़ की सूरत दे कर फैलाता रहा मगर मैं ने तहक़ीक़ की और ख़ुदा ने मेरी आँखें

खोल दीं तो मालूम हुआ कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की हर बात में बुद्धि छुपी हुई थी, उन्हों ने जितनी भी शादियाँ कीं उन सब के पीछे किसी न किसी जाहिली रस्म को ख़त्म करना या इस्लामी शिक्षा के प्रचार का मक़सद होता था, फिर इतिहास से पता चलता है कि कई नबियों ने एक साथ बहुत सी शादियाँ कीं। ख़ुद हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम भी औरतों से बेज़ार न थे और किसी पैग़म्बर को शादी करने से नहीं रोका गया।

ईसाईयों की तरफ़ से आम एतराज़ किया जाता है कि मुसलमान एक से ज़्यादा शादियाँ करते हैं, मैं ने ग़ौर किया कि अगर वह ऐसा करते हैं तो अपने नबी (सल०) के तरीक़े पर अमल करते हैं। मगर ईसाई एक शादी कर के भी अपने नबी के तरीक़े के विपरीत काम करते हैं कि हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम ने सिरे से शादी ही नहीं की थी, फिर एक शादी करना और एक साथ बहुत सी औरतों के साथ नाजाइज़ संबंध क़ायम रखना आख़िर कहाँ की ईमानदारी और शराफ़त है और यह सब कुछ ईसाईयत की कौन सी शिक्षा के अनुसार किया जाता है।

इस्लाम धर्म की जिस चीज़ ने मुझे सब से ज़्यादा प्रभावित किया वह बराबरी की शिक्षा है। इस्लाम धर्म में बग़ैर किसी अन्तर के सब मुसलमान बराबर हैं, महानता है तो सिर्फ़ नेकी, पवित्रता और तक़्वा व परहेज़गारी की। मस्जिदों में राजा व प्रजा, गोरे काले, अमीर ग़रीब सब एक ही लाइन में खड़े होते हैं, ईसाईयों की तरह गोरों और कालों के गिर्जे अलग अलग नहीं होते, अमीर लोग इबादत के समय क़ुर्सियों पर नहीं बैठते न ग़रीब और निर्धन लोग फ़र्श पर बैठते हैं बल्कि यहाँ तमाम लोगों की हैसियत बराबर और एक जैसी है। इस्लाम बराबरी चाहने वाला और इन्सानियत का सम्मान करने वाला धर्म है और जिस धर्म में बराबरी है वही हक़ का धर्म है।

थामस इरविंग (केनेडा)

(Thomas Irving)

इस्लाम कुबूल करने से पहले और बाद में मैं जिस ज़ेहनी व जज़्बाती (मनोभाविक) तजर्बे से गुज़रा हूँ उसे बयान करने से पहले यह बता दूँ कि केनेडा और अमरीका के हज़ारों नवजवान इसी क़िस्म के ख़यालात से गुज़र रहे हैं मुझे यक़ीन है कि अगर मुनासिब और प्रभावित रूप से वहाँ इस्लाम का संदेश पहुंचाया जाये तो वह उसे बहुत जल्द कुबूल कर लेंगे।

जहाँ तक इस्लाम कुबूल करने की दास्तान का संबंध है मुझे बचपन का वह ज़माना अभी तक याद है जब मैं ईसाई अक़ीदे के मुताबिक़ हज़रत मसीह की ज़िन्दगी के हालात दोहराया करता था लेकिन यह दावा नहीं कर सकता कि मैं हमेशा मज़बूत अक़ीदे का ईसाई रहा हूँ। बचपन में अगरचे मैं बाईबल की कितनी ही कहानियों को अपने ज़ेहन में उतार चुका था लेकिन यह सोच कर हैरत में डूब जाता कि बाईबल पढ़ने के बावजूद लोग धर्म से दूर क्यों हैं? एक ही पुस्तक यानी बाईबल के बारे में ईसाईयों और यहूदियों का ख़याल इतना अलग क्यों है फिर भटके हुये लोगों और बेधर्म लोगों को क्यों दोशी ठहराया जाता है जबकि वह बाईबल ही के कहने के अनुसार पैदाइशी गुनहगार हैं और इस में उन का कोई दोश नहीं? यह ख़याल भी आम तौर से परेशान

करता कि ईसाई और यहूदी अपने आप को दूसरी सारी क़ौमों से महान समझते हैं मगर यह नेकी और ख़ुदा के बताये हुये रास्ते पर क्यों नहीं चलते ?

उसी ज़माने की बात है हिन्दुस्तान से एक पादरी वापस केनेडा आये तो उन्हों ने निहायत बेज़ारी से कहा कि वहाँ "मुहम्डन" लोग अपने धर्म पर सख़्ती से डटे हुये हैं और उन पर हमारा कोई जादू नहीं चलता। इस्लाम से यह मेरा पहला परिचय था मैं चौंक उठा प्रशंसा का एक ऐसा जज़्बा था जो उन लोगों के लिये अंजाने में पैदा हुआ जो आज भी अपने धर्म पर डटे हुये हैं। बग़ैर जाने बूझे दिल में इस्लाम के लिये नर्मी पैदा हो गई और इस बात की इच्छा होने लगी कि इस धर्म के बारे में जानकारी हासिल की जाये और यह इच्छा उस वक़्त पूरी हुई जब मैं ने यूनीवर्सिटी में जा कर पूर्वी लिटरेचर का अध्ययन शुरू किया। ख़ुदा का ख़याल अपनी मुकम्मल सूरत में अपनाने के लिये इन्सान कोशिश और तरक़्क़ी के जिन मरहलों से गुज़रा है उन की जानकारी हुई तो ज़ेहन की गांठें खुलने लगीं। हज़रत मसीह ने एक कृपाशील और दयावान ख़ुदा का तसव्वुर दिया था मगर मैं ने देखा कि यह नज़रिया तवह्हुम परस्ताना इबादत के गर्द व ग़ुबार में गुम हो कर रह गया है और मूर्तियों की पूजा ने उस का असर ख़त्म कर दिया है। एक तरफ़ तो यह यक़ीन दिलाना कि ख़ुदा कृपालू और दयावान है और इन्सानों से प्रेम करता है और कहाँ चर्च की यह शिक्षा कि बग़ैर ज़बरदस्त सिफ़ारिश और वास्ते के कोई इन्सान उस तक नहीं पहुंच सकता। ज़ेहन में यह बात मज़बूती के साथ बैठ गई कि ईसाईयत ख़ुदा का सच्चा धर्म नहीं ज़रूरत किसी ऐसे नज़रिये की है जो हक़ हो और इन्सानों को एक ख़ुदा की तरफ़ ले जाने की शक्ति रखता हो। इस मक़सद के लिये मैं ने इस्लाम का अध्ययन शुरू किया तो हैरान कर देने

वाली चीज़ें मालूम हुई, हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के सात सौ साल बाद उस वक़्त एक ख़ुदा की दावत दी जबकि पूरा यूरोप जानवरों की तरह ज़िन्दगी गुज़ार रहा था मरयम और ईसा की पूजा हो रही थी।

उस ज़माने में मैं ने इस्लाम के बारे में बहुत सी पुस्तकें पढ़ डालीं। बम्बई के एक समाजी काम करने वाले जीराज़ भाई ने मुझे H.W. Love Grove की पुस्तक What is Islam? भिजवा दी। इस पुस्तक से मुझे मालूम हुआ कि इस्लाम के आदेश क्या हैं और इन्सानी ज़िन्दगी पर उस के उपकार क्या हैं। फिर उन्हों ने मुझे मौलवी मुहम्मद अली का अनुवाद किया हुआ कुरआन दिया और इस के अलावा भी कई पुस्तकें दीं। मोन्टरयाल में मैं ने फ़्रानसीसी ज़ुबान में इस्लाम पर बहुत सा लिटरेचर पढ़ डाला नतीजा यह हुआ कि मुझे सारे प्रश्नों के उत्तर मिल गये और ज़ेहन में कोई शक व शुब्हा बाक़ी न रहा।

आख़िर मैं इस यक़ीन तक पहुंच गया कि हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ख़ुदा के सच्चे नबी थे और उन की बहुत ज़्यादा ज़रूरत भी थी। मैं ने अब तक जो नतीजे निकाले थे पूरे तौर पर कुबूल करने के लायक़ थे और इल्म व अक़्ल उन की सच्चाई पर गवाही देते थे। सब से बढ़ कर यह कि कुरआन पाक की महान्ता व पवित्रता में डूबा हुआ अंदाज़ और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की शिक्षाओं ने मेरे दिल पर बहुत ज़्यादा प्रभाव डाला और इस्लाम सूरज से ज़्यादा रोशन हो कर मेरे सामने आ गया और मैं ने उसे कुबूल कर लिया।

ख़दीजा फ़ज़ोई (इंगलिस्तान)

बचपन में मेरी धार्मिक शिक्षा व प्रशिक्षण चर्च आफ़ इंगलिस्तान की निगरानी में हुई, मगर होश संभाला तो मेरा ज़ेहन उस से बिल्कुल संतुष्ठ न हुआ मुझे चर्च आफ़ इंगलैन्ड की शिक्षा में कुव्वत और एहतिराम नज़र नहीं आया, इस लिये मैं ने उस चर्च से दूरी इख़तियार कर ली और 20 साल की उम्र में रोमन कैथोलिक बन गई। नतीजा यह हुआ कि मेरे दोस्त व रिश्तेदार बहुत क्रोधित हुये और उन के क्रोध बल्कि दुश्मनी ने मुझे कई वर्षों तक परेशान रखा, लेकिन मुझे चूँकि यक़ीन हो चुका था कि सिर्फ़ रोमन कैथोलिक ही सच्चा धर्म है और उसे ख़ुदा की सहायता हासिल है इस लिये मैं ने ग़ैरों की दुश्मनी या अपनी परेशानी की कोई परवाह न की और अपनी जगह पर क़ायम रही।

लेकिन कुछ दिनों के बाद मुझे बहुत ज़्यादा एहसास हुआ कि रोमन कैथोलिक से संबंध एक क़ीमत चाहता है और वह है सोच, फ़िक्र और इज़हार पर पाबन्दी। यानी यह विश्वास कि चर्च और चर्च की शिक्षाएँ हर क़िस्म की बीमारी से पवित्र हैं और उन पर एतराज़ कुफ़्र की तरह है ख़्वाह वह अक़्ली तक़ाज़ों के किस क़द्र ही ख़िलाफ़ क्यों न हों, चुनाचे जब कभी मेरी अक़्ल किसी बात पर एतराज़ करती तो मैं अपने आप को समझाती कि फ़ुतूर

असल में मेरी अक़्ल में है और चर्च अक़्ल से बुलंद है। मिसाल के तौर पर यह अक़ीदा कि चर्च में जो रोटी भी पादरी लोग खाते हैं वह पहले ही यसूअ मसीह के वुजूद में बदल जाती है। दूसरे शब्दों में उस की हैसियत एक वक़्त में ख़ुदा की भी होती है और इंसान की भी, अगरचे ज़ाहिरी तौर पर इस का एहसास नहीं होता। मैं अकसर हैरत में डूब जाती कि एक पूरा इंसान रोटी में कैसे समा सकता है। और फिर हज़रत मसीह एक वक़्त में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न रोटियों में कैसे प्रवेश कर सकते हैं जबकि दुनिया में लाखों चर्च हैं और हर चर्च में बहुत सी रोटियाँ प्रयोग होती हैं। यह बात बड़ी बेजोड़ और मज़हकाख़ेज़ (परिहास) लगती कि इंसान अपने गोश्त और ख़ून समेत एक रोटी की सूरत इख़्तियार कर जाये। ज़ेहन जिस दूसरी बात पर बहुत ज़्यादा परेशान होता वह हज़रत ईसा का सूली पर चढ़ना है कहा जाता है कि हज़रत ईसा की कुर्बानी का वाक़िआ बार-बार पेश आता है। मैं अकसर हैरान होती कि यसूअ तो एक बार सूली पर चढ़ गये थे फिर उस वाक़िअे का बार-बार होना कैसे मुम्किन हो सकता है इस के अलावा भी कई सवालात थे जो ज़ेहन में पैदा हुये। फिर भी मैं ने अपने आप को मजबूर किये रखा कि चर्च के अक़ाइद बिला शक व शुब्हा सही और ठीक हैं मगर अक़्ल से दूर हैं। ऐसे ख़यालात से बचने के लिये मैं ने अपने आप पर एक रूहानी सा नशा तारी कर लिया यानी ज़्यादा से ज़्यादा इबादत में मशग़ूल रहती ताकि अक़्ल को विभिन्न सन्देहों के बारे में सोचने की फुरसत ही न मिले न ही उस में बग़ावत के कीड़े कुलबुला सकें। यह अलग बात है कि मैं अपने आप को मज़बूत अक़ीदे की कैथोलिक नहीं समझती थी और इस पर सख़्त परेशान थी।

मगर अपने आप को बनावटी तौर पर मशग़ूल रखने का नशा देर तक रहने वाला साबित न हुआ, मैं कोशिश के बावजूद

अपने आप को कुंवारी मरयम, यसूअ या दूसरे बुज़ुर्गों की परस्तिश (पूजा) पर त्यार न कर सकी। कैथोलिक लोग यसूअ अलैहिस्सलाम की माँ को पवित्र नहीं मानते मगर वह उसे ख़ुदा की मलका और तमाम कुव्वतों का तीसरा हिस्सा मानते हैं और उस की सिफ़ारिश को लाज़िम क़रार देते हैं। मैं ने एक बार एक पादरी को देखा वह स्कूल के बच्चों को बता रहा था कि एक शख़्स अगरचे बहुत ज़्यादा पापी और गुनहगार था, लेकिन सिर्फ़ एक नेकी ने उसे जहन्नम से बचा लिया था और वह नेकी यह थी कि वह शख़्स मरयम की पूजा बड़ी बाक़ायदगी से करता था। मैं सोचती रह गई कि इंजील तो हज़रत ईसा को मुक्ति देने वाला बताती है, मगर पादरी साहब यह मरतबा (पद) मरयम को दे रहे हैं आख़िर दोनों बातों में संबंध क्या है?

इन सारी ज़ेहनी कठिनाईयों के बावजूद कैथोलिक चर्च में इतमीनान (संतुष्टी) के सामान भी थे और मैं कभी-कभी उस माहौल में काफ़ी ख़ुशी भी महसूस करती थी, फिर भी पूरे एक वर्ष तक मेरी हालत परेशान सी रही। मेरी मुलाक़ात प्रोटेस्टेन्ट अक़ीदे के कुछ लोगों से हुई जिन की धर्म के बारे में गर्मजोशी और ख़ुलूस कैथोलिक लोगों से कम न था उन्हों ने मुझे ऐसा रास्ता बताया जो कैथोलिक अक़ीदों से बिल्कुल मिलता जुलता था। और बाइबल की शिक्षाओं पर निर्धारित भी, और जिस में चर्च आफ़ इंगलैन्ड का सा इबहाम (समझ में न आने वाली बात) भी नहीं था वह सिर्फ़ यसूअ को मुक्ति दिलाने वाला समझते थे अगरचे मैं उन के अक़ीदे की सादगी से बहुत प्रभावित हुई। मगर मैं इस बात से सहमत न हो सकी कि सिर्फ़ अक़ीदा ही निजात का ज़रिया बन सकता है। बहरहाल कई तरह के संदेहों के बावजूद मैं रोमन कैथोलिक अक़ीदे पर क़ायम रही।

मैं उस वक़्त इस्लाम के बारे में कुछ नहीं जानती थी

अख़बारों के विषयों से सिर्फ़ इतनी ख़बर ज़रूर थी कि इस्लाम ग़ुलामी का क़ायल है और अब तक अरब मुल्कों में यह नापसंदीदा कारोबार जारी है। विवाह की संख्या की सूरत में औरत पर ज़ुल्म ढाये जाते हैं। जानवरों को बिला झिझक काट कर खाया जाता है और नशीली चीज़ों की तिजारत पर कोई पाबन्दी नहीं। स्कूल के ज़माने में सलेबी जंगों के बारे में भी पढ़ा था जिन में मुसलमानों को बहुत ज़्यादा ख़ूँख़्वार और बेरहम बताया गया था। इन सारे तअस्सुबात के बावजूद मैं ने इस्लाम के बारे में जानकारी हासिल करने का इरादा कर लिया। कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट अक़ीदों के बीच दिल व ज़ेहन की खींचातानी ने मेरे आसाब (पट्ठों) को तबाह कर के रख दिया था और मैं बीमार रहने लगी थी। हल सिर्फ़ एक ही था कि मैं जल्द से जल्द सच्चाई को पा लूँ और यकसूई हासिल करूँ। इस के लिये मैं ने कुरआन की तरफ़ तवज्जोह देने का फ़ैसला कर लिया। मैं ने ख़ुदा से सीधे रास्ते की दुआ की। फिर फ़र्ज़ कर लिया कि मैं दूर के किसी सय्यारे की मख़लूक़ (मानवजाति) हूँ, ईसाईयत के बारे में कुछ जानती हूँ न इस्लाम के बारे में। ज़ेहन में जितने तअस्सुबात (पक्षपात) थे वह झटक दिये और हक़ रास्ते को पाने के लिये कुरआन के अध्ययन में मशग़ूल हो गई।

मैं ने कुरआन की शक्ल में वास्तव में एक बदल तो पा लिया मगर ज़ेहन विभिन्न सवालों से भर गया। क्या वाक़ई यह ख़ुदा की तरफ़ से उतरा है या मुहम्मद (सल०) ने किसी ज़रिये से बाइबल की इतिहासी कहानियों को सुना और ख़ुदा के हवाले से अपने शब्दों में बयान कर दिया।

इन बेहूदा प्रश्नों के उत्तर के लिये मैं ने हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की ज़िन्दगी और चरित्र के बारे में जानने की ज़रूरत महसूस की। इस के लिये मैं ने मुस्लिम और

ग़ैर मुस्लिम ग्रंथकारियों की किताबें हासिल कीं। पता चला कि उन्हों ने किसी इन्सानी ज़रिये से यहूदी और ईसाई इतिहास की शिक्षा हासिल नहीं की थी वह पढ़ना लिखना जानते ही न थे इस लिये उन्हों ने ख़ुद बाइबल का अध्ययन भी नहीं किया था। अब अगर फ़र्ज़ किया जाये कि उन्हों ने कुरआन की सारी मालूमात यहूदी और ईसाई विद्यावानों से मालूम की थीं तो यह असंभव है कि ज़ुबानी बात चीत को इतने विस्तार से याद रखा जाये और फिर उन्हें किताबी सूरत में मुरत्तब भी कर लिया जाये। फ़र्ज़ किया अगर यह सूरत मुम्किन भी होती तो यह खेल दूसरे लोगों से छुपा नहीं रह सकता था और फिर ख़ुद यहूदियों और ईसाईयों के लिये कुरआन की मुख़ालिफ़त बिल्कुल बेतुकी हरकत थी। असल में कुछ लोगों ने इस तरह के इलज़ामात (आरोप) लगाने की कोशिश भी की मगर कोई सुबूत न होने की वजह से यह इलज़ाम दम तोड़ बैठे। बहरहाल पूरे तौर से इतमीनान होने पर मैं ने इस्लाम कुबूल कर लिया और उस पर ख़ुदा का शुक्र अदा करती हूँ।

सुलेमान शाहिद मुफ़स्सिर (अमरीका)

एक दुनिया जानती है कि अमरीका में सियाहफ़ाम निवासियों ने "बिलेक पावर" के नाम से क्या तूफ़ान खड़ा कर रखा है। लगभग तीन शताब्दियों से यह लोग सफ़ेदफ़ामों के ग़ैर इन्सानी व्यवहार और अत्याचार का निशाना बनने के बाद आख़िर में डॉक्टर मार्टन लोथर किंग की रहनुमाई में उठ खड़े हुये मगर बहुत जल्द उन की एतदालपसन्द (बराबरी की) रहनुमाई से रस्सी तुड़वा कर लड़ाई झगड़ा करने की सरगर्मियों पर उतर आये और Black Panthers नामी तनज़ीम के ज़रिये सफ़ेदफ़ामों के लिये मौत का पैग़ाम बन गये। दोनों तरफ़ से क़त्ल व ख़ूँरेज़ी और लूट मार की दौड़ शुरू हो गई और पूरी अमरीकी क़ौम 1965 ई० से 1968 ई० तक पूरे तीन वर्ष ख़ौफ़नाक नस्ली फ़सादात से दोचार रही जिन में इन्सानी ख़ून का कोई मूल्य न रहा, और राजधानी वाशिंगटन में कुछ हिस्से जला कर राख कर दिये गये।

इस्लाम से मेरा परिचय उसी ज़माने में हुआ, मुझे इस बात का बहुत ज़्यादा एहसास हुआ कि दोनों क़ौमें एक ही धर्म, ईसाईयत से संबंध रखती हैं मगर सफ़ेदफ़ाम ईसाई सियाहफ़ाम ईसाईयों को बरदाश्त करने के लिये त्यार नहीं और अब रद्देअमल के तौर पर दूसरी तरफ़ भी यही कैफ़ियत है। मैं ईसाईयत से सख़्त बदगुमान हो गया। ख़ुशक़िस्मती से मेरी मुलाक़ात मशहूर इंक़लाबी मलिक-शहबाज़ (मेलकम एक्स) से हो गई। यह अब

पक्के अक़ीदे के मुसलमान हो चुके थे और निहायत ख़ुलूस और सरगर्मी से इस्लाम के प्रचार में मशग़ूल थे। मैं उन से बेहद प्रभावित हुआ।

इन दिनों मैं एक मसीही धर्म Jehovah's Witness में पादरी की हैसियत से काम कर रहा था। ईसाईयत को छोड़ कर इस्लाम क़ुबूल करते हुये तबीयत सख़्त चिंतित थी, लेकिन इस्लाम पर मेरा ग़ौर व फ़िक्र बराबर जारी रहा। दूसरे वर्ष में इस ईसाई धर्म से अलग हो गया इस की एक वजह यह भी थी कि इस में बेहद ग़ैर अक़्ली बातें थीं, जैसे हज़रत ईसा के आने की कई तारीख़ों का एलान किया गया जिसे हर बार बदल दिया जाता था।

रूहानी सुकून के लिये मैं यहूदियत के पास भी आया, मगर मैं ने देखा कि यहूदी और ज़्यादा रूहानी परेशानियों का शिकार हैं और उन्हें किसी तरह का भी सुकून नहीं है, हर जगह पर उन के नस्ली तअस्सुबात (पक्षपात) उभर आते और मुझे यह अंदाज़ा करने में देर न लगी कि नस्लपरस्त यूरोपियन यहूदी मुझ सियाहफ़ाम को "धार्मिक भाई" के तौर पर कभी क़ुबूल नहीं करेंगे।

निराश हो कर मैं ने हर तरह के धर्म का ख़याल दिल से निकाल दिया और उन आनदोलनों में शामिल हो गया जो ग़रीब व निचले वर्ग के लोगों की गिरी हुई बस्तियों में इन्सानी सेवा करती हैं। लेकिन 1967 ई० में सुधार के काम करते हुये ज़िला कोलम्बिया के जेलख़ानों में मेरा इस्लाम से दोबारा परिचय हुआ। यहाँ बहुत से लोगों ने एक नस्ली क़िस्म के फ़िर्क़े (धर्म) Black Muslims को क़ुबूल कर लिया था अगरचे यह इस्लाम की सही और सच्ची सूरत नहीं थी फिर भी बहुत से मसीही फ़िर्क़ों के मुक़ाबिले में यह लोग बेहतर शह्री साबित होते थे। मैं ने बहुत से काले मुसलमान क़ैदियों को देखा, यह तमाम क़ैदियों के

मुक़ाबिले में मिसाली व्यवहार रखते थे और अपने अन्दर शरीफ़ाना ज़िन्दगी गुज़ारने की ज़बरदस्त इच्छा रखते थे।

उन्हीं दिनों ख़ुशक़िस्मती से मेरी मुलाक़ात एक ऐसे दोस्त से हुई, जिसे मैं ने कई वर्षों से नहीं देखा था। मेरा यह दोस्त भी एक ज़माने में Jehovah's Witness में प्रचारक की हैसियत से काम करता था, मगर अब वह नेकी और प्रहेज़गारी का नमूना था। बात चीत हुई तो उस ने ज़िन्दगी पर संपूर्ण और पक्का यक़ीन का इज़्हार किया। वह हक़ीक़ी आज़ादी और सच्ची ख़ुशी की नेमत से माला माल नज़र आता था। आम सियाहफ़ामों की तरह उस के व्यवहार या बातों में दूर दूर तक मायूसी का निशान तक न था। मैं ने उस की ख़ुशी का भेद मालूम किया कि यह ख़ुशी की नेमत तो अब मिलना मुश्किल हो गई है।

उस का जवाब था कि "इस्लाम" वह अब पक्के अक़ीदे का मुसलमान था। उस ने बताया कि इस्लाम क़ुबूल कर के अल्लाह की फ़रमाबरदारी (उपासना) की जाये तो वह सारी समस्याएँ हल हो सकती हैं जो "बिलेक पावर" कभी हल नहीं कर सकती। उस ने बड़े विश्वास से बताया कि अल्लाह की मुहब्बत और रहनुमाई हर प्रकार की नफ़रत और सख़्तियों (अत्याचारों) से ज़्यादा मज़बूत है, उस ने मुझे वाशिंगटन के इस्लामिक सेन्टर में आने की दावत दी और मैं ने यह दावत बड़ी चाहत से क़ुबूल कर ली।

और वह जुमा का बड़ा ही मुबारक दिन था, जब मैं ने पहली बार इस्लामिक सेन्टर में हाज़िरी दी। मैं सुकून और अज़्मत (महान्ता) की इस मिलावट को शब्दों में बयान नहीं कर सकता जो उस मुक़द्दस और पवित्र स्थान पर छाया हुआ था। मैं इस की ख़ूबसूरती से भी प्रभावित हुआ और क़ुरआन की सुरीली आवाज़ भी मेरे दिल में उतरती चली गई जो बहुत ज़्यादा तसल्ली देने वाली थी, मगर जिस चीज़ ने मुझे सब से ज़्यादा प्रभावित किया

वह इबादत का जादू करने वाला अंदाज़ था। इस दृश्य ने मेरी ज़िन्दगी का धारा ही बदल दिया। भाईचारगी बराबरी और व्यवस्था का कितना शानदार मुज़ाहिरा था जो आँखों के रास्ते दिल में उतर गया। मैं अकसर सोचा करता था कि बराबरी की बुनियाद पर कोई समाज वुजूद में आ ही नहीं सकता, मगर यह ख़याल वहम (संकोच) बन कर उड़ गया था। आँखों के पर्दों में नफ़रत का जो एहसास बस गया था, वह बिल्कुल मिट गया। मैं ने सियाह व सफ़ेद चीनी, अफ़रीक़ी और अमरीकी लोगों को भाईयों की तरह एक ख़ुदा के सामने एक जगह बैठे हुये देखा तो ख़ुदा और इन्सानियत पर मेरा विश्वास मज़बूत हो गया। मैं ने इस्लाम कुबूल कर लिया और उस वक़्त से मैं देख रहा हूँ कि इस्लाम का भाईचारगी का नज़रिया कोई बेजान तसव्वुर नहीं है, बल्कि ज़बरदस्त अमली कुव्वत है और मुस्लिम सोसाईटी में हर जगह मुझे इस का तजर्बा हुआ है। सिर्फ़ यही नहीं, बल्कि अब इस्लाम का हर काम मुझे बेहद पसन्द है। मैं अल्लाह का लाख लाख शुक्र अदा करता हूँ कि उस ने मुझे नस्ल व रंग के अंधेरों में डूबने से बचा लिया मेरी दुआ है कि मुझे अल्लाह तआला सच्चे धर्म का प्रचार करने की शक्ति दे, और मैं इन्सानों को सही रास्ते की तरफ़ बुलाता रहूँ। हक़ीक़त यह है कि अमरीका के निवासियों को इस्लाम की सही सूरत दिखाने की ज़रूरत है कि आज तक मग़्रिब में इस्लाम को उस की हक़ीक़ी शक्ल में नहीं दिखाया गया। आज लोग ईसाईयत और यहूदियत के बेजान धर्म से घबरा कर इधर उधर देख रहे हैं मगर उन्हें कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा। अब समय आ गया है कि इस्लाम का प्रचार अक़्ल और हिम्मत से किया जाये तब यह बात यक़ीनी है कि आने वाले समय में मग़्रिब में इस्लाम काफ़ी हद तक फैलेगा।

मुसतफ़ा यूसुफ़ * फ़ारिज़ रहमतुल्लाह

आयशा अब्दुल्लाह

नीचे तीन मुसलमान होने वालों के प्रभाव लिखे जा रहे हैं यह विषय मिस्र के किसी अरबी रिसाले से सईद मनसूर साहब ने अनुवाद किया। जो उर्दू डाइजेस्ट (जून 1974 ई०) में प्रकाशित हुआ।

☆☆☆☆

मेरी उन से मुलाक़ात डॉक्टर अब्दुल हलीम महमूद के दफ़्तर में हुई। दो मर्द थे और एक औरत। इन लोगों ने कुछ ही दिनों पहले इस्लाम कुबूल किया था और अब जामेअज़हर में अरबी ज़ुबान सीखने और कुरआनी शिक्षाएँ पढ़ने आये थे। हम देर तक बातें करते रहे। उन्हों ने अपने इस्लाम लाने का क़िस्सा बयान किया, गुज़री हुई रातों और दिनों का ज़िक्र किया और कहा, हम लोग भौतिकवाद (माद्दापरस्ती) से तंग आ चुके थे जिस में हमारा समाज डूबा हुआ था, हम माद्दी (प्राकृतिक) ज़िन्दगी के आराम से पूरी तरह लाभ उठा रहे थे लेकिन हमारी रूह बहुत निराश थी। ऐसा मालूम होता वह ख़ला (हवा) में भटक्ती फिर रही है उस खोखली ज़िन्दगी ने हमारे अंदर रूहानी सुकून का रास्ता ढूँढने की बेचैनी और तड़प पैदा की और यही बेक़रारी और तड़प हमें

इस्लाम के दामन में ले आई।

"आख़िर इस्लाम में ऐसी क्या ख़ूबी नज़र आई कि आप ने उसे कुबूल कर लिया?" मैं ने पूछा

"हम बहुत दिनों तक इस्लाम का अध्ययन करते रहे और फिर इस नतीजे पर पहुँचे कि इस्लाम ही सच्चा दीन है, अक्ली तक़ाज़ों के बिल्कुल मुताबिक़, इंसानियत का दीन, ख़ानदान और समाज का दीन......" उन्हों ने जवाब दिया।

उन की बातें सुनते हुये मैं सोच रहा था अल्लाह ने इंसान को ठीक पवित्र तबीयत का बनाया हो तो वह इसी तबीयत के मुताबिक़ इस्लाम तक पहुंच कर रहता है और अल्लाह तआला उस की कामियाबी का कोई न कोई ज़रिया पैदा कर देता है।

मुसतफ़ा यूसुफ़

आइये ज़रा अब अपने दीनी भाईयों से मिलिये। यह हैं मुहम्मद यूसुफ़, माँ बाप ने इन का नाम स्टीफ़न कलार्क रखा था। अमरीका के रहने वाले हैं, न्यूयार्क में पैदा हुये उम्र लगभग 24 साल होगी। कोलम्बिया यूनीवर्सिटी के मज़ाहिबे मशरिक़ी विभाग से ग्रेज्वेट हैं।

मुसतफ़ा यूसुफ़ ने अपनी ज़िन्दगी की दास्तान बयान करते हुये कहा, माद्दियत ज़िन्दगी के विभिन्न भागों में जिस तरह छा गई थी, उस का ख़याल कर के भी मुझे बहुत तकलीफ़ होती। मेरी ज़िन्दगी उस के लगाये हुये ज़ख़्मों से निढाल थी। मैं सोचा करता इंसानी ज़िन्दगी की वह सही क़द्रें कहाँ मिल सकती हैं जिन से इंसान और इंसान के बीच मुहब्बत व प्रेम पैदा हो, जो उसे हक़, न्याय और शान्ति दे। सोचते-सोचते मैं उन क़द्रों की तलाश में निकल खड़ा हुआ उसी तलाश व तहक़ीक़ के दौरान मेरा

परिचय "सूफ़िया" के एक गिरोह से हुआ। उस गिरोह में कुछ नवजवान मुसलमान शामिल थे। उन लोगों ने मुझे काफ़ी प्रभावित किया और अंत में मैं ने तसव्वुफ़ का अध्ययन करने का फ़ैसला कर लिया। जल्द ही कोलम्बिया यूनीवर्सिटी के मज़ाहिबे मशरिक़ के विभाग में दाख़िल हो गया। मेरा इरादा था मैं इस्लाम के साथ-साथ तमाम धर्मों का अध्ययन करूंगा, लेकिन थोड़े दिनों बाद पता चला कि उस विभाग में ज़्यादा ध्यान बुद्धमत और हिन्दू धर्म पर दिया जाता है मेरे लिये यूनीवर्सिटी की लाइब्रेरी में पनाह लेने के सिवा कोई चारा न था। यहाँ मैं ने इस्लामी तसव्वुफ़ से संबंधित बहुत सी अनुवाद की हुई पुस्तकें पढ़ीं। सब से ज़्यादा प्रभावित मैं इमाम ग़ज़ाली की इंक़लाबी ज़िन्दगी और उन की किताब "अहयाए उलूमुद्दीन" से हुआ। इसी तरह जलालुद्दीन रूमी के बहुत से अशआर भी मेरे दिल की गहराईयों में उतर गये अब मैं विभिन्न धर्मों को अच्छी तरह परख सकता था। मैं ने महसूस किया विभिन्न धर्मों की ज़्यादातर शिक्षाएँ अक़्ल के तराज़ू पर पूरी उतरती हैं न सच्चाई और हक़ीक़त के तराज़ू पर, जैसे अगर कोई शख़्स मेरे दाहने गाल पर तमाचा मारे तो मैं अपना बायाँ गाल भी उस के आगे पेश कर दूँ..... या शराब और रोटी मसीह अलैहिस्सलाम के ख़ून में बदल गई वग़ैरा..... इस क़िस्म के मसाइल का हक़ीक़त से नहीं, जादू से संबंध महसूस होता है। हज़रत मसीह अलैहिस्सलाम ऐसी ज़िन्दगी बसर करते थे कि कोई इंसान ऐसी ज़िन्दगी बसर करने से मजबूर है। उन की ज़ात एक और दुनिया से संबंध रखती है और जो शख़्स उन की उपासना करना चाहता है उसे चाहिये कि वह उन्हीं की जिन्स का हो जाये। इस के विपरीत इस्लाम कहता है मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम इंसान थे उन की ज़िन्दगी तमाम इंसानों के लिये नमूना है और हर शख़्स उस नमूने के मुताबिक़ अपनी ज़िन्दगी ढाल

सकता है। इस अध्ययन के नतीजे में मैं ने मुसलमान होने का फ़ैसला कर लिया। अमरीका से तियूनिस पहुँचा, वहाँ मशहूर धार्मिक विद्यावान शैख़ फ़ाज़िल बिन आशूर से मिला और उन के हाथ पर इस्लाम कुबूल कर के इस्लामी बिरादरी में दाख़िल हो गया"।

फ़ारिज़ रहमतुल्लाह

फ़ारिज़ रहमतुल्लाह इस्लाम लाने से पहले फ़यादिर ऐवाने जफ़रनर कहलाते थे। विन्ज़वेला के शहर काराकास में पैदा हुये। उम्र 27-28 वर्ष के लगभग है। अपनी ज़िन्दगी के पन्ने पलटते हुये उन्हों ने कहाः-

"मेरा ख़ानदान विन्ज़वेला से अपना वतन छोड़ कर अमरीका चला गया। जहाँ मैं ने ऊँचे विद्यालियों में शिक्षा पाई फिर मैं ने इटली की राह ली जहाँ रूमा यूनीवर्सिटी के विभाग फुनूने लतीफ़ा में दाख़िला ले लिया। कुछ दिनों के बाद अमरीका वापस आ गया और कोलम्बिया यूनीवर्सिटी में फ़िल्म बनाने वाले विभाग में दाख़िल हो गया।

अब मेरी बुद्धी काफ़ी मज़बूत हो चुकी थी मुझे अमरीकी समाज और विधार्थियों की ज़िन्दगी में बहुत ज़्यादा फ़र्क़ महसूस हुआ। इस फ़र्क़ पर जितना ग़ौर करता, मेरा एहसास उतना ही ज़्यादा होता जाता।

यूनीवर्सिटी से निकल कर अमली ज़िन्दगी में आया। न्यूयार्क, हालीवुड, कैलीफ़ोरनिया और शकागो में काम किया। जहाँ भी गया वहाँ के दिन और रात में डूब गया। यह ज़िन्दगी बिल्कुल ऐश व आराम की ज़िन्दगी थी। कोई प्राकृतिक आराम ऐसा न था जो हासिल न हो। यहाँ एक और बात का तजर्बा हुआ। अमरीकी फ़िल्में दुनिया भर में मशहूर हैं। लोग जब उन्हें देखते हैं तो उन

के दिल में यह आरज़ू मचलने लगती है कि अमरीकियों की तरह शानदार ज़िन्दगी गुज़ारें और अब भी जब लोगों को पता चलता है कि मैं अमरीका से आया हूँ तो उन के ज़ेहन के पर्दे पर फ़िल्मों में देखे हुये अमरीकी ज़िन्दगी के मनाज़िर (दृश्य) उभर आते हैं।

मगर मुझे यह ज़िन्दगी ऐसी लगी जैसे कोई ख़्वाब देख रहा हूँ। ऐसा ख़्वाब जो अपने पीछे भयानक ताबीर छोड़ जाता है। मुझे दुनिया का हर सामान हासिल था उस के बावजूद मेरी ज़िन्दगी खोखली और बेबुनियाद थी मुझे चारों तरफ़ धोके और फ़रेब की दुनिया फैली हुई नज़र आती। मेरा जी चाहता इस धोके की ज़िन्दगी को छोड़ छाड़ कर कहीं निकल जाऊँ, मगर कहाँ? इस का कोई जवाब मेरे पास न था। इस बेचारगी का बहुत ज़्यादा असर मुझ पर हुआ मैं खेल कूद और नफ़्स की लालसा में और ज़्यादा डूब गया और ऐसी खाई में जा पहुँचा कि यह एहसास होने लगा कि हक़ीक़त में मैं जहन्नम में आ गिरा हूँ, वह जहन्नम जिस में प्रवेश करने के लिये हर इंसान बेक़रार रहता है।

अब मेरे सामने सिर्फ़ दो रास्ते रह गये थे। उस जहन्नम में ज़िन्दगी गुज़ारता रहूँ या ज़िन्दगी गुज़ारने का कोई और तरीक़ा अपनाऊँ, लेकिन वह नई ज़िन्दगी गुज़ारने का तरीक़ा कौन सा हो सकता है? इस सवाल ने मुझे एक तकलीफ़ देने वाली सूरतेहाल से दोचार कर दिया, और फिर एक दिन दिल की गहराईयों से रोशनी की किरन दिखाई दी जो धीरे-धीरे काना फूसी में ढल गई। "ज़िन्दगी के जिस रास्ते की तुम्हें तलाश है वह धर्म ही दिखा सकता है"।

मैं पैदाईशी कैथोलिक था। मैं ने न्यूयार्क के बहुत से विद्यालियों में कैथोलिक शिक्षा हासिल की थी, अब जो इस धर्म का मज़बूत बुद्धी के साथ अध्ययन किया, तो मुझे इस से नफ़रत

हो गई। फिर बुद्धमत, हिन्दूमत और बहुत से बुतों की पूजा करने वाले धर्मो का अध्ययन करता रहा, लेकिन उन में से कोई भी मेरे ज़ेहन व दिल की बेचैनी को न दूर कर सका। रहा इस्लाम, तो उस समय में मुझे उस की ख़बर तक न हो सकी। अमरीका में आप को इस्लाम के सिवा हर धर्म पर बहुत सी किताबें मिल सकती हैं इस्लाम पर कोई किताब क्यों आसानी से नहीं मिलती इस के दो कारण हैं।

पहला यह कि यहूदी प्रबंधक (तनज़ीमें), ज़राए इबलाग़ (ख़बरें पहुंचाने की सुविधाएँ, टीवी, रेडियो आदि), सहाफ़त (लिखना), सेनिमा, थेटर और लाब्रेरियों हर जगह पर छाई हुई हैं। वह पूरी कोशिश करती हैं कि इस्लाम की शिक्षाएँ लोगों तक अपनी हक़ीक़ी शक्ल व सूरत में न पहुंचने पाएँ।

दूसरा यह कि यहाँ ज़्यादातर मुसलमान काले हैं और कालों को अमरीकी गोरे शैतान या मौत से कम नहीं समझते। यूनीवर्सिटियों में भी काले ही इस्लाम का अध्ययन करते हैं, वही अमरीका में इंक़लाब के सरदार बने हुये हैं जिस से आम अमरीकी बहुत ज़्यादा नाराज़ हैं इस तरह वह इस्लाम को भी ख़तरनाक धर्म समझने लगे हैं।

बहरहाल मैं ने जिन धर्मो का अध्ययन किया उन के दामन में मुझे अपनी बीमार रूह के स्वस्थ होने का कोई सामान न मिला। आख़िर अल्लाह की तरफ़ झुका और उस से दुआएँ माँगने लगा कि वह मुझे हिदायत दे और गुमराही की इस हौलनाक दलदल से निकाले। दुआ माँगते-माँगते मैं सज्दे में गिर जाता। एक बार मैं इसी तरह सज्दे में पड़ा हुआ दुआ माँग रहा था कि लोगों ने देख लिया उन्हों ने मुझे बताया कि जो कुछ तुम कर रहे हो मुसलमान वही कुछ अपनी नमाज़ में करते हैं।

जाँच पड़ताल की चिंगारी मेरे दिल में भड़क उठी, ज़रा इस्लाम का अध्ययन भी कर के देखूँ। अध्ययन की शुरूआत नाक़िदाना (ख़राबी निकालना) अंदाज़ में की, फिर रह रह कर मायूसी भी आ लेती कि दूसरे धर्मों की तरह उस के दामन में भी क्या ख़बर कुछ मिलेगा या नहीं? लेकिन धीरे-धीरे मायूसी की जगह ख़ुशगवार हैरत ने ले ली। अल्लामा यूसुफ़ अली का अनुवाद किया हुआ कुरआन पढ़ा, तो मुझे अपने नफ़्स की गाठें खुलती हुई दिखाई दीं। कुरआन के अर्थ दिल की गहराईयों में बैठते चले गये। यूँ लगा जैसे मेरी तबीयत उसी ज़िन्दगी के तरीक़े की तलाश में थी। कुरआन के अर्थ पर ग़ौर व फ़िक्र में बढ़ोतरी के साथ-साथ ज़ाहिर होता चला गया कि इस्लाम की शिक्षाएँ इंसानी तबीयत के बिल्कुल मुताबिक़ हैं।

उ¨ अपना समय ज़्यादातर कुरआन पढ़ने और समझने में गुज़रने लगा। मैं ने देखा उस पवित्र किताबे हिदायत में मेरी रूह की हर ज़रूरत का सामान मौजूद है। चुनाचे मैं मुसलमान हो गया। इस्लाम कुबूल करने के बाद मैं ने इस्लामी किताबों का भी अध्ययन किया जैसे जैसे पढ़ता गया, नई-नई हक़ीक़तें मेरे सामने आती गई और इस्लामी ज़िन्दगी के क़ानून पर मेरा यक़ीन और मज़बूत हो गया। जिस समाज में पैदा हुआ और फिर पला बढ़ा उस ने मेरी अख़लाक़ी और रूहानी ज़िन्दगी तबाह कर के रख दी थी, लेकिन इस्लाम जो समाज क़ायम करता है वह न सिर्फ़ रूह की ज़रूरतें पूरी करता है, बल्कि प्राकृतिक (माद्दी) ज़िन्दगी को भी जायज़, बराबर और संतुलित बुनियादों पर क़ायम करता है, और इंसान की कामियाबी का गवाह है। इस्लाम के इस पहलू ने मुझे सब से ज़्यादा प्रभावित किया।

मेरी माँ ने जब सुना कि मैं मुसलमान हो गया हूँ और जब मैं ने उन्हें इस्लामी शिक्षाएँ बताई, तो वह भी मुसलमान हो गई।

मैं ने भाई फ़ारिज़ से पूछा क्या वह अपने मुसलमान भाईयों को कोई संदेश देंगे? कहने लगे मैं उन्हें सिर्फ़ एक बात कहूँगाः प्राकृतिक (माद्दी) ज़िन्दगी की तरफ़ देखने के बजाये अल्लाह ने उन को सच्चे दीन की सूरत में जो ज़िन्दगी का सामान दिया है वह उस की तरफ़ देखें, उस की शिक्षाओं और हुक्मों का पालन करें और उस को अपनी अकेली और इजतिमाई ज़िन्दगी में लागू करें। प्राकृतिक ज़िन्दगी और उस पर निर्धारित ज़िन्दगी के तमाम नज़रिये बाक़ी न रहने वाले हैं और सिर्फ़ शैतान के पैदा किये हुये। जाज़ और राक ऐन्ड रौल की मौसीक़ी में गुम होने के बजाये वह उस सुरीली आवाज़ की तरफ़ ध्यान दें जो मुवज़्ज़िन दिन रात में पाँच बार पुकारता है और उन्हें अल्लाह की बड़ाई और कामियाब ज़िन्दगी अपनाने की दावत देता है..... *अल्लाहु अकबर .....अल्लाहु अकबर....... हय्या अलस्सलाह .... हय्या अललफ़लाह ....*"।

आयशा अब्दुल्लाह

बहन आयशा अब्दुल्लाह, इस्लाम लाने से पहले वरजीनिया हेनरी कहलाती थीं, अमरीका की शह्री हैं और लोई वेल कंटकी की निवासी। उम्र 26 साल से ऊपर है और कोलम्बिया यूनीवर्सिटी से शिक्षा हासिल कर चुकी हैं।

बहन आयशा कहती हैं मैं बचपन ही से धर्म पर चलती थी। बिला नाग़ा प्राटेस्टेन्ट गिरजे में जाती, प्रोटेस्टेन्ट कलीसा की एक तालीम यह है कि आख़िरत की ज़िन्दगी पर ईमान लाया जाये। इस के अलावा बहुत कम लोग जानते थे कि आख़िरत की ज़िन्दगी कैसी होगी अकसर लोगों को तो मौत की फ़िक्र ही नहीं होती। जवानी बेफ़िक्री की हालत में गुज़रती है, हाँ जब बूढ़े हो जाते हैं तो फिर उन्हें मौत की फ़िक्र लग जाती है।

मैं ने बचपन में कई लोगों को मरते देखा। उन में मेरी कुछ सहेलियाँ भी थीं और मेरी उम्र के लड़के, लड़कियाँ भी, जब भी कोई ऐसी घटना होती, सोचने लगती मरने के बाद उन के साथ क्या गुज़रेगी? मगर हमारे यहाँ तो सोचने का तरीक़ा ही दूसरा था। हर एक इसी ख़याल में रहता कि वह कम से कम 60 साल की उम्र में मरेगा और इस समय में उसे दुनिया की लज़्ज़तों और ख़ुशियों से अच्छी तरह फ़ायदा उठा लेना चाहिये।

मेरे आस पास जिस क़िस्म की ज़िन्दगी फैली हुई थी उस से मैं ज़रा भी संतुष्ठ न थी, मुझे उस माहौल में अपनी रूह घुटती महसूस होती। आख़िर रूहानी सुकून की तलाश में लग गई। उन दिनों शह्र में एक बहुत बड़ी तहरीक (आनदोलन) काम कर रही थी जिस का नाम "रूहानी" था। उस आनदोलन की बुनियाद मरने के बाद ज़िन्दा होने पर क़ायम थी..... आनदोलन से संबंध रखने वाले ऐसे लोग भी थे जिन का यह दावा था कि वह मौत की ज़िन्दगी से संबंध क़ायम रखने की ताक़त रखते हैं, ज़ाहिर में ऐसा मालूम होता था कि यह ताक़त अल्लाह ने उन्हें दी है उसे वह "आलमे रूहानी" कहते थे। लेकिन जब मैं ने उन लोगों के तौर तरीक़े और सरगर्मियों का अच्छी तरह से जायज़ा लिया तो पता चला कि उस मौत की दुनिया का इंसान की रूहानी और नेक ज़िन्दगी से कोई संबंध नहीं, बल्कि वह यह सारा खेल प्राकृतिक नुक़्तए नज़र ही से खेलते हैं। उन से मायूस हो कर मैं फिर सीधे रास्ते की तलाश में चल पड़ी। मैं ने चार साल तक यूनीवर्सिटी में इस्लाम के अलावा बहुत से धर्मों का गहरा अध्ययन किया, इस लिये कि हमारे विभाग का सद्र (सभापती) एक यहूदी मोरीस फ़्रेडमन था, उस ने इस्लाम के अध्ययन को कोई महत्त्व न दी थी।

उसी बीच किसी ने एक प्रोफ़ेसर को मार डाला इस घटना ने तो मुझे हिला कर रख दिया। अपने आस पास की सारी चीज़ें ग़ैर

हक़ीक़ी नज़र आने लगीं, जिस ने अपने ऊपर हक़ीक़त का ख़ोल चढ़ा रखा था। यहाँ तक कि वह पुस्तकें भी जो विभिन्न धर्मों पर प्रकाशित हुई थीं मेरे नज़दीक हक़ीक़त से ख़ाली थीं। बुद्धमत, हिन्दूमत और दूसरे धर्म सब मेरी नज़र में सिर्फ़ पुरानी इमारतों के खंडर थे। इस्लाम के बारे में मेरी जानकारी न होने के बराबर थीं। मगर इस रद्दे अमल की लपेट में वह भी आ गया। उस के सच्चा होने का एहसास पहली बार उस समय हुआ जब मेरे शौहर (पती) ने इस्लाम कुबूल किया। मैं ने सूफ़िया की पुस्तकें और दूसरा इस्लामी लिटरेचर पढ़ना शुरू किया। मुसलमानों से मिल कर इस्लाम की शिक्षा हासिल की। यहाँ तक कि अल्लाह तआला ने मुझे हिदायत दी और मैं मुसलमान हो गई। मुसलमान होने के बाद पता चला कि अल्लाह ने मुझे कितनी बड़ी नेमत से नवाज़ा है। मेरी ज़िन्दगी का रूख़ बिल्कुल बदल गया, और इस्लाम का यह बहुत बड़ा चमतकार था"।

मेविस बी जोली (इंगलिस्तान)

(Mavis B. Jolly)

मैं एक ईसाई ख़ानदान में पैदा हुई। और होश संभालने पर एक चर्च स्कूल ही से शिक्षा का आरम्भ किया जहाँ मैं ने हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के बारे में वह कहानियाँ पढ़ीं जो बाइबल में बयान की गई हैं। उन कहानियों ने और चर्च के माहौल ने मुझे जज़्बाती तौर पर बहुत प्रभावित किया। ऊँची कुर्बानगाह पर भड़क्ती हुई शमएँ, तेज़ ख़ुशबू की लपटें, लम्बे चोग़े पहने हुये पादरी और इबादत के वक़्त आहिस्ता आहिस्ता बात करने का माहौल, यह सब कुछ मुझे बहुत ही अजीब लगता और मेरे नन्हें से ज़ेहन पर रोब सा छाया रहता। उन दिनों मैं वास्तव में मुख़लिस और पुरजोश ईसाई थी, लेकिन जैसे-जैसे उम्र बढ़ती गई बाइबल और ईसाईयत का अध्ययन बराबर जारी रखा। मैं सोचने लगी कि जो कुछ मैं पढ़ती हूँ, जिस पर मेरा ईमान है और जिसे मैं इबादत की अमली सूरत भी देती हूँ आख़िर उस की हक़ीक़त क्या है? इसी सोच का नतीजा था कि ईसाईयत पर मुझे पूरा इतमीनान न रहा और कई बातों पर यक़ीन डगमगाने लगा। यहाँ तक कि हालत यह हुई कि जब मैं स्कूल से फ़ारिग़ हुई तो पूरी तरह से दहरिया (नास्तिक) हो चुकी थी।

दहरिया (नास्तिक) बनने के बावजूद भी दिल को सुकून

हासिल न हुआ तो मैं ने और दूसरे धर्मो का अध्ययन करने का सोचा। पहले बुद्धमत का अध्ययन शुरू किया और बहुत दिलचस्पी से उस के जटिल फ़लासफ़ी का अध्ययन किया और इस नतीजे पर पहुँची कि बिला शुब्हा इस धर्म के कुछ नेक मक़ासिद भी हैं लेकिन इंसानी रहनुमाई उस के मुक़द्दर में नहीं ज़रूरी तफ़सीलात का यहाँ भी बहुत ज़्यादा आकाल नज़र आया।

हिन्दूमत का अध्ययन किया तो मैं बहुत सटपटाई। मैं ईसाईयत के तीन ख़ुदाओं से बहुत दुःखी थी मगर यहाँ तो हज़ारों ख़ुदा कुलबुला रहे थे और उन की कहानियाँ इतनी ख़राब थीं कि उन्हें कुबूल करना तो दूर की बात पढ़ते हुये भी घिन आती थी।

मैं ने यहूदियत को भी जानने की कोशिश की। अहदनामा पुराने (तौरेत) को मैं पहले ही पढ़ चुकी थी और अंदाज़ा कर चुकी थी कि मेरे मेयार के मुताबिक़ एक धर्म को जैसा होना चाहिये, यहूदियत उस के बिल्कुल विपरीत है। एक दोस्त ने रूहानियत की तरफ़ तवज्जोह दिलाई और सुझाव दिया कि रूहों को बुलाने के लिये चिल्लाकशी करूँ। मैं ने यह काम शुरू भी किया, मगर उसे ज़्यादा देर तक जारी न रख सकी। असल में मुझे ख़ूब अंदाज़ा हो गया था कि कम से कम मेरे मुआमले में यह काम सरासर ख़ुद को धोका देने की तरह होगा, बल्कि अगर इसे आगे तक जारी रखा गया तो बहुत ज़्यादा हानिकारक साबित होगा।

दूसरी आलमी जंग ख़त्म हो गई। मैं ने लंदन के एक दफ़्तर में नौकरी कर ली, ज़ाहिर में मैं मशग़ूल हो गई मगर मेरा ज़ेहन धर्म की खोज से दूर न रह सका। उन्हीं दिनों की बात है एक अख़बार में किसी का ख़त छपा जिस के खंडन में मैं ने बाइबल के हवालों से साबित करने की कोशिश की कि मसीह की पवित्रता एक वहम से ज़्यादा कोई हैसियत नहीं रखती। मेरा यह ख़त बहुत से लोगों से संबंध का कारण बन गया, जिन मे से एक मुसलमान

भी था। उस ने कुरआन के हवालों से साबित किया था कि मसीह की अज़मत और पवित्रता हर क़िस्म के शक व शुब्हे से महान है। जानकारी बढ़ी तो मैं ने अपने उस मुसलमान दोस्त से इस्लाम के बारे में ख़त व किताबत का सिलसिला शुरू किया। मैं मानती हूँ कि हर नुक्ते पर मेरे अंदर इस्लाम की मुख़ालिफ़त का जज़्बा दम तोड़ता गया अगरचे यह बात नामुम्किन लगती थी, मगर मैं यह स्वीकार किये बग़ैर न रह सकी कि इंसानी ज़िन्दगी में मुकम्मल इंक़लाब एक ही शख़्स मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने ही पैदा किया था जबकि बीसवीं शताब्दी की तमाम सुविधाओं के बावजूद आज की बेहतरीन हुकूमतें इस इंक़लाब की गर्द तक भी नहीं पहुँच सकतीं और संस्कृतिक व फ़िक्री सुधार के लिये इस्लाम की मुहताज़ हैं।

उस मौक़े पर मैं कुछ दूसरे मुसलमानों से भी मिली और मुसलमान औरतों से भी बात चीत की, मगर इतमीनान हासिल न हो सका। उस बीच मैं ने कई पुस्तकों का अध्ययन किया जिन में "Religion of Islam", "Mohd & Craist" और "Sources of Christanity" ज़िक्र के क़ाबिल हैं। आख़िरी पुस्तक के अध्ययन से मालूम हुआ कि ईसाईयत और पुरानी मूर्ती पूजा के बीच हैरान कर देने वाली मुशाबेहत पाई जाती है फिर मैं ने कुरआन मजीद का भी अध्ययन किया। शुरू में बहुत ज़्यादा तकरार का एहसास हुआ। यह भी नहीं मालूम कि मैं उस से कोई प्रभाव कुबूल करती थी या नहीं, मगर यह ज़रूर महसूस हुआ कि कुरआन निहायत ख़ामोशी से रूह पर प्रभाव डालता है। रातों पर रातें बीत गईं और मैं ने कुरआन को हाथ से न छोड़ा। फिर भी मैं यह सोच कर अकसर हैरत में डूब जाती कि एक इंसान पूरे इंसानों को मुकम्मल रहनुमाई कैसे दे सकता है। मुसलमान कभी दावा नहीं करते कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम इंसानियत के दर्जे से

ऊँचे थे। मुझे यह भी पता चल गया कि इस्लामी अक़ीदे के मुताबिक़ तमाम पैग़म्बर इंसान होते हैं वह हर क़िस्म के गुनाह से सुरक्षित होते हैं और यह कि वह्ी कोई नई चीज़ नहीं है बनी इसराईल के पैग़म्बरों पर भी वह्ी उतरती रही है बिल्कुल उसी तरह हज़रत ईसा भी ख़ुदा के पैग़म्बर थे। यहाँ एक नया प्रश्न मेरे ज़ेहन में पैदा हुआ कि फिर बीसवीं शताब्दी में कोई पैग़म्बर क्यों नहीं भेजा गया इस का जवाब मुझे कुरआन से मिल गया कि मुहम्मद ख़ुदा के पैग़म्बर और आख़िरी नबी हैं। ज़ेहन ने भी यह बात कुबूल की। वास्तव में मुनासिब भी यही था कि जब कुरआन जैसी किताब अपनी मुकम्मल सूरत में मौजूद है जो हर मुआमले में इंसान की रहनुमाई कर रही है उस की रक्षा की ज़िम्मेदारी ख़ुद ख़ुदा ने ली है तो इस सूरत में किसी नये पैग़म्बर या नई किताब की ज़रूरत भी क्या है।

इस्लाम के बारे में काफ़ी जानकारी हासिल कर लेने के बावजूद मेरा ज़ेहन उन तअस्सुबात से छुटकारा नहीं हासिल कर सका था जो ईसाई ग्रंथकारियों ने हर तरफ़ फैला दिये थे। मिसाल के तौर पर बीवियों की संख्या Polygamy के नज़रिये ने मुझे परेशान कर दिया। मैं ने सोचा कि कम से कम इस मुआमले में मग़रिब ने इस्लाम पर ज़रूर महानता हासिल की है और एक बीवी Monogamy का लाज़िमी नज़रिया फ़ितरी भी है और तरक़्क़ी पसंदाना भी। इस का ज़िक्र मैं ने एक मुसलमान दोस्त से किया तो उन्हों ने बहुत से अख़बारी तराशों और विषयों की मदद से मुझे मग़रिब की एक औरत की तसवीर दिखा दी कि किस तरह क़ानूनी बीवी तो वास्तव में एक होती है मगर मर्द इस के अलावा एक साथ 10-10 औरतों से संबंध क़ायम कर लेता है। उन्हों ने बताया कि पच्छिम में पोशीदा जिन्सी संबंध जो तबाह कर देने वाली सूरत इख़्तियार कर रहे हैं उस का एक ही हल है कि

महदूद पैमाने पर बीवियों की संख्या को जायज़ क़रार दे दिया जाये। और वास्तव में यूरोप में जंग के बाद मर्दों की संख्या औरतों के मुक़ाबिले में बहुत कम हो जाने से औरतों की एक बड़ी संख्या अकेले रहने पर मजबूर हो रही थी। जिस की वजह से बहुत सी बुराईयाँ पैदा हो रही थीं।

यह मरहला तैय हुआ तो इस्लाम में इबादत के तरीक़े की समस्या सामने आ खड़ी हुई। आख़िर नमाज़ों की इतनी ज़्यादती में क्या तुक है और उन का लगातारपन तो बिल्कुल बग़ैर मतलब का लगता है मेरे मुसलमान दोस्त ने उस का जवाब दियाः "मौसीक़ी की उस प्रेकटिस के बारे में तुम्हारा क्या ख़याल है जिस में तुम लोगों का जी चाहे न चाहे ज़रूर हिस्सा लेते हो और रोज़ाना आधा घंटा उस में ख़र्च करते हो, यूरोप में लोगों ने मौसीक़ी को रूहानी गिज़ा क़रार दे दिया है और बिल्कुल यही मुआमला इस्लामी इबादत का है हालाँकि मौसीक़ी एक बनावटी और थोड़े दिनों के लिये रहने वाला तरीक़ा है जबकि इबादत इंसानी फ़ितरत का तक़ाज़ा है और ज़्यादा देर तक रहने वाला प्रभाव रखती है"। मेरे मुसलमान दोस्त ने बताया कि इबादत ख़ुदा के फ़ायदे के लिये नहीं की जाती, उस के फ़ायदे ख़ुद इंसानी ज़ात को पहुँचते हैं।

इस तरह मैं इस्लाम की सच्चाई की क़ाइल हुई और आख़िरकार इस्लाम क़ुबूल कर लिया। मैं ने यह फ़ैसला पूरे ज़ेहनी व दिली इतमीनान के साथ किया। कोई नहीं कह सकता कि यह मेरा जज़्बाती फ़ैसला है बल्कि लगभग दो साल तक मैं ने इस पर विचार किया है एक-एक बात को अक़्ल की कसौटी पर परखा है और जब मैं ने यक़ीन कर लिया है कि इस्लाम वह ख़ालिस धर्म है जो हर मेयार (कसौटी) पर पूरा उतरता है तो मैं ने उसे दिल की गहराईयों के साथ क़ुबूल कर लिया।

विलयम बशीर पिकार्ड (इंगलिस्तान)

(Willium Burchell Bashyr Pickard)

विलयम बरशल बशीर पिकार्ड बी, ऐ, (कैनटब) एल, डी (लन्दन) एक ग्रंथकार और नाविल लिखने में बहुत मशहूर हैं उन की रचनाओं में "लैला और मजनू", "अलक़ासिम के सफ़र" और "नई दुनिया" ख़ास महत्व रखती हैं।

इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का मशहूर कथन हैः-

"हर बच्चा फ़ितरते इस्लाम पर पैदा होता है यह उस के माँ बाप हैं, जो उसे यहूदी या ईसाई बना देते हैं"।

इस सच्चे कथन के हिसाब से मैं भी पैदाईशी मुसलमान था, मगर इस हक़ीक़त से मैं कई सालों के बाद परिचित हुआ।

स्कूल और कालेज की ज़िन्दगी में मेरी सारी दिलचस्पियाँ निसाबी सरगर्मियों तक घिरी हुई थीं या फिर अच्छा खाना या अच्छा पहनना तबीअत को बहुत पसंद था। मेरी गिनती ज़्यादा ज़हीन छात्रों में नहीं होती थी, मगर बुलंद इरादे सीने में हर वक़्त मचलते रहते थे। ईसवी धर्म के जैसे भी मेयार हैं, मैं ने उन के मुताबिक़ ख़ुदा और इबादत के तसव्वुरात को पहचानने की कोशिश की उस समय यह सारी बातें मुझे बहुत अच्छी लगती थीं। इन के अलावा मैं जिन इंसानी ख़ुसूसियात को पूजा की हद

तक पसंद करता था, वह शराफ़त और बहादुरी थी।

कैम्बरिज से फ़ारिग़ हो कर मैं नौकरी के सिलसिले में वस्ती अफ़रीक़ा के देश योगेंडा चला गया। यहाँ इंसानी ज़िन्दगी के कुछ अनोखे और दिलचस्प पहलुओं को देखा। मैं ने देखा कि यह लोग अगरचे सियाह फ़ाम हैं मगर उन के दिल ख़ुलूस और इंसानी हमदर्दी की रोशनी से रोशन हैं। उन की ज़िन्दगी सादा है, मगर सच्ची ख़ुशियों से भरी हुई है। यह लोग मुसलमान थे और इस्लाम से मेरा पहला परिचय उन्हीं के ज़रिये से हुआ।

योगेंडा में मेरी तनहाईयों की साथी अलिफ़ लैला (Arabian Nights) थी। मैं ने उसे पहले पहेल कैम्बरिज में पढ़ा था। उसी के अध्ययन का असर था कि ग़ैर महसूस तरीक़े से मशरिक़ी आदर की मुहब्बत मेरे दिल में बैठ गई थी। योगेंडा में रहने की वजह से यह चीज़ और ज़्यादा मज़बूत हो गई थी।

1914 ई० में पहली आलमी जंग छिड़ गई तो मैं अपने वतन इंगलिस्तान आ गया। यहाँ आते ही मैं बीमार पड़ गया। सेहत ठीक हुई तो मैं ने फ़ौज में कमीशन के लिये दरख़्वास्त दे दी। मगर सेहत की कमज़ोरी की वजह से मुझे कमीशन न मिली। मैं ने हिम्मत न हारी और एक रज़ाकार गुरूप में शामिल हो गया और बाद में बाक़ायदा फ़ौजी की हैसियत से जंग में भरती हुआ। मग़रिबी महाज़ पर फ़्रान्स के स्थान सोमे पर लड़ते हुये ज़ख़्मी हुआ और दुश्मनों के हाथ लग गया, जो क़ैदी बना कर मुझे जर्मनी ले गये जहाँ मुझे सिसक्ते बिलक्ते इंसानों की बुरी हालत को क़रीब से देखने का मौक़ा मिला। ख़ास तौर से मैं उन रूसी क़ैदियों को नहीं भूल सकता, जो पेचिश में मुबतला हो कर कुत्तों की मौत मर रहे थे। मेरा दायाँ बाज़ू बहुत ज़्यादा ज़ख़्मी हो कर लगभग बेकार हो गया था इस लिये मुझे अस्पताल में रखा गया था। बाद में सूईज़रलैन्ड के एक अस्पताल में भेज दिया गया।

रंज व मूसीबत, अपने वतन से दूरी और क़ैदी की इस हालत में मुझे कुरआन अकसर याद आता था। मेरे ख़यालात पर अलिफ़ लैला का एक दृश्य छाया रहता था। जिस में एक नागहानी आफ़त पूरे के पूरे शहर को मुकम्मल तौर पर मलियामेट कर देती है, मगर एक नवजवान दुनिया से बेपरवाह कुरआन के अध्ययन में इस तरह डूबा होता है कि उसे अपने आस पास की तबाही की ख़बर तक नहीं होती, न ही यह तबाही उसे कुछ नुक़सान पहुँचाती है। चुनाचे मैं जर्मनी ही में था जब मैं ने अपने घर ख़त लिख कर सेल (SALE) का अनुवाद किया हुआ कुरआन मंगवाना चाहा था। बाद में मुझे पता चला कि यह भेजा गया था मगर मुझ तक न पहुँचा। सूईज़रलैन्ड में मेरे बाज़ू और टांग का आप्रेशन हुआ। मेरी सेहत ठीक हुई और मैं चलने फिरने के क़ाबिल हो गया तो मैं ने सावारी (SAVARY) का फ़्रान्सीसी ज़ुबान में अनुवाद किया हुआ कुरआन ख़रीद लिया (यह आज भी मेरे पास मौजूद है और जान से ज़्यादा प्यारा है) मैं बयान नहीं कर सकता कि उस मौक़ा पर कुरआन ने मुझे कितना ख़ुश और संतुष्ठ कर दिया। ऐसा लगता था कि हमेशा रहने वाली सच्चाईयों की कोई किरन अपनी तमाम बरकतों के साथ मेरे दिल पर उतर रही है जिस की ठंडी ठंडी रोशनी रूह की गहराईयों में उतरती जा रही है।

अब मेरे दिल में कुरआन लिखने की चाहत और बढ़ने लगी दायाँ हाथ अभी तक बेकार था। इस लिये बायें हाथ से लिखना शुरू कर दिया कुरआन के शब्द लिखते हुये मैं वही ख़ुशी और क़ामियाबी महसूस करता था, जो एक छोटा बच्चा शुरू शुरू में कुछ लिखते हुये महसूस करता है। सच्ची बात तो यह है कि मैं सूईज़रलैन्ड में था जबकि अपने आप को मुसलमान समझने लगा था।

जंग बन्द हुई तो मैं दिसम्बर 1918 ई० में रिहा (आज़ाद) हो

कर वतन वापस आ गया। 1921 ई० में मैं ने लंदन यूनीवर्सिटी के अदबी शोबे में दाख़िला ले लिया। मेरा एक विषय अरबी था जिस के लिये मुझे किंगज़ कालेज में लेकचर सुनने के लिये जाना होता था। एक दिन की बात है कि अरबी के अध्यापक (इराक़ के मरहूम बेलशाह) ने लेकचर के बीच कुरआन का ज़िक्र किया और कहा "चाहे आप का उस पर ईमान हो या न हो लेकिन आप उस किताब को बेहद दिलचस्प और सम्मान के लायक़ पाएँगे"।

"लेकिन मैं तो उस किताब की सच्चाई पर यक़ीन रखता हूँ" मैं ने तुरन्त जवाब दिया उस पर वह पहले तो बहुत हैरान हुये फिर ख़ुशी का इज़हार किया और थोड़ी देर की बात चीत के बाद उन्हों ने लंदन के नवटंग हिल गेट पर एक मस्जिद में मुझे बुलाया। मैं वहाँ गया नमाज़ पढ़ी और इस्लामी शिक्षाओं को समझने की और ज़्यादा कोशिश की। मैं बाद में भी अकसर मस्जिद में चला जाता और नमाज़ में शामिल हो जाता यहाँ तक कि अल्लाह ने मुझे हिदायत दीं और मैं ने एक जनवरी को मुसलमान होने का एलान कर दिया।

मेरी ज़िन्दगी के उस पवित्र इंक़लाब को लगभग आधी शताब्दी का समय गुज़र चुका है। अलहमदु-लिल्लाह मैं इस्लाम पर नज़री और अमली दोनों एतबार से पक्का विश्वास रखता हूँ। मैं ने देखा है कि अल्लाह की कुव्वत व हिकमत और कृपा व करम की कोई हद ही नहीं है और ज्ञान की हदें जितनी फैलती जाती है उस की क़द्रें उतनी ही रोशन होती जा रही हैं। मैं यक़ीन रखता हूँ कि ख़ुदा की उपासना, उस की तसबीह व तहलील (हर समय ख़ुदा को याद करना) और अक़ीदत व मुहब्बत ही हमारे लिये गर्व के लायक़ है और आख़िरत का सामान है। (*अलहमदु-लिल्लाहे रब्बिल आलमीन*)

इन्टरविटज़

मिस ख़दीजा (आस्ट्रेलिया)

मोहतरमा ख़दीजा ने जूलाई 1980 ई० में मंसूरह लाहौर में मियाँ तुफ़ैल मुहम्मद इस्लामी आनदोलन के मुख्या के हाथ पर इस्लाम कुबूल किया। दो महीने के बाद वापस वह आस्ट्रेलिया चली गई और अगस्त 1981 ई० में दोबारा पाकिस्तान आई और यही 29 सितम्बर को उन की मृत्यु हो गई, इस विषय को लिखने वाले नें उन से इस्लाम कुबूल करने के कुछ ही दिनों के बाद मंसूरह में मुलाक़ात कर के नीचे दिया गया इंटरवियू रिकार्ड किया था वह पूरी तरह से बापर्दा औरइस्लामी वस्त्र पहने हुई थीं।

☆☆☆☆

प्रश्नः– मेहरबानी कर के सब से पहले अपना तफ़सीली परिचय करा दीजिये।

उत्तरः– इस्लाम कुबूल करने से पहले मेरा नाम मिस मारलीना गारसिया था। मेरा आबाई वतन ब्राज़ील था मगर मेरे पिता डॉक्टर आरथर एडवर्ड गारसिया जो एक माहिर डॉक्टर थे बर्तानवी फ़ौज की मेडिकल कोर में एक बड़े अफ़सर थे और बर्मा में रहते थे। वहीं 1929 ई० मैं पैदा हुई। मैट्रिक तक शिक्षा रंगून में हासिल की। फिर पिता जी ने नोकरी से रिटायरमेन्ट ले ली और कैलीफ़ोरनिया में रहने लगे। वहाँ उन्हों ने प्राईवेट परेकटिस शुरू

कर दी जो बड़ी कामियाबी से चलने लगी मगर अफ़सोस कि जल्द ही उन्हें मौत की तरफ़ से बुलावा आ गया। उस समय मेरी उम्र 18-19 वर्ष की थी। मेरी माँ अभी इस घटना को भुला न पाई थीं कि दो तीन साल के अन्दर ही अन्दर उन की भी मृत्यु हो गई।

मैं दुनिया में अकेली रह गई। मैं अपने माँ बाप की अकेली सनतान थी, बहन भाई कोई न था फिर भी मैं ने हिम्मत न हारी। मैं हमेशा से एक अच्छी छात्र थी। पिता जी मुझे डॉक्टर बनाना चाहते थे चुनाचे मैं ने शिक्षा का सिलसिला जारी रखा और यूनिवर्सिटी आफ़ मेडिसन कैलीफ़ोर्निया से ग्रेजवेशन कर लिया। लिखने पढ़ने का शौक़ भी था, इस लिये बहुत से अख़बारों में ख़बरें और विषय लिखने का काम भी शुरू कर दिया और प्राईवेट परेकटिस के साथ साथ शराब, तम्बाकू और इस के अलावा दूसरी नशीली चीज़ों के ख़िलाफ़ लेकचर भी देने लगी। इन लेकचरों के सिलसिले में मुझे अमरीका और यूरोप के बहुत से देशों में जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ। मैं ने दुनिया भर का सफ़र किया यहाँ तक कि मैं आस्ट्रेलिया के शह्र सिडनी में हमेशा के लिये रहने लगी। वहीं क्लीनिक बना लिया और फ़िरी लानसर पत्रकार का काम भी करती रही। इस से मुझे अच्छी ख़ासी आमदनी हो जाती थी।

प्रश्नः- इस्लाम से आप कब और कैसे परिचित हुई?

उत्तरः- मेरा आबाई धर्म ईसाईयत है। मैं कैथोलिक धर्म से संबंध रखती थी मगर सच्ची बात है कि इस धर्म ने मुझे कभी प्रभावित न किया। ज़ेहन में तरह-तरह के प्रश्न पैदा होते थे और मैं पादरियों और इस से संबंधित दूसरे लोगों से बहस भी करती थी मगर कहीं से कोई तसल्लीबख़्श जवाब न मिलता था। मिसाल के तौर पर तसलीस का अक़ीदा ग़लत और बग़ैर अर्थ का है कि कोई बुद्धिमान इंसान उसे कुबूल नहीं कर सकता। इस के साथ ही

यह भी बताती चलूं कि मेरे ज़मीर (अन्तरात्मा) ने मुझे शराब पीने और ऐश करने से दूर रखा। मैं ने कभी गोश्त नहीं खाया, काफ़ी तक नहीं पी, सब्ज़ियों और फलों के जूस पर गुज़ारा करती रही हूँ। मेरा ज़मीर कहता था कि जो अंदाज़ यूरोप ने अपना रखा है यह फ़ितरत के ख़िलाफ़ है।

चुनाचे हक़ तलाश करने के लिये मैं ने दूसरे धर्मो का अध्ययन शुरू किया जैसे जोडाज़्म, कंफ़ियूशिज़्म और हिन्दूमत। मगर किसी से भी मेरी तसल्ली न हुई। इसी सिलसिले में मैं ने इस्लाम के बारे में भी कुछ पुस्तकों का अध्ययन किया, इस के अच्छे उसूलों से मैं प्रभावित तो हुई मगर तसवीर साफ़ न हुई। शायद इस लिये कि इन किताबों के ग्रंथकार यूरोप के फ़िरक़ा परस्त ईसाई थे। इस लिये मैं अपने दिल में इस्लाम के बारे में नर्म गोशा रखने के बावजूद उस से दूर रही। इसी हालत में एक मुद्दत गुज़र गई।

यह मेरी ख़ुशनसीबी है कि मैं ने मोहतरमा मरयम जमीला की किताबों का अध्ययन किया और फिर जब 1960 ई० के लगभग पत्रकारों के एक गिरोह के साथ मैं पाकिस्तान आई और मरयम जमीला से मिली तो मैं उन की सादगी और शख़सियत से बहुत प्रभावित हुई। उन्हों ने एक ऐसे शख़्स से शादी की जो पहले ही शादी शुदा था और उस के बच्चे भी थे। वह अपनी बूढ़ी सास की ख़ूब सेवा करतीं और ख़ामोशी और प्रतिष्ठा से धर्म की सेवा करने में मशग़ूल रहती थीं। मरयम जमीला ने मुझे मौलाना मौदूदी से भी परिचित कराया और उन की एक किताब "To Words Understanding Islam" पढ़ने को दी। इस किताब से मुझे इस्लाम का भरपूर परिचय हासिल हुआ। मैं ने अंदाज़ा लगा लिया कि इस्लाम एक विस्तृत और फ़ितरी धर्म है। तौहीद दुनिया की सब से बड़ी सच्चाई है और नज़र आने वाली हर चीज़ ख़ुदा की वहदानियत (ख़ुदा का एक होना) की गवाह है। आस्ट्रेलिया वापस

जा कर मैं अपने आप को इस्लाम कुबूल करने के लिये तयार करने लगी, मगर बदक़िस्मती से एक दिन एक घटना हो गई। मैं गिर पड़ी और टख़ने के क़रीब से मेरी टाँग की हड्डी टूट गई, मैं एक लम्बी मुद्दत तक अस्पताल के बिस्तर पर पड़ी रही। इस हालत में सिर्फ़ ख़ुदा की याद और दुआ ही एक सहारा था जिस ने मुझे दोबारा स्वस्थ किया। मैं दूसरी बार पाकिस्तान आई मरयम जमीला से मिली, इस्लाम कुबूल करने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की और उन्हीं के मशवरे पर मंसूरह आ कर मियाँ तुफ़ैल मुहम्मद साहब के ज़रिये से इस पवित्र और महान नेमत से माला माल हुई हूँ। इस सौभाग्य पर मैं अल्लाह का जितना भी शुक्र अदा करूं कम है।

प्रश्नः– आप के इस फ़ैसले का आप के ख़ानदान और सोसाइटी पर क्या प्रभाव होगा ?

उत्तरः– जैसा कि मैं बता चुकी हूँ कि मेरा कोई ख़ानदान नहीं। मैं ने शादी नहीं की और इस का कारण यह था कि यूरोप के समाज में मर्द औरत से ख़ुलूस का रिश्ता बिल्कुल नहीं रखते थे। वह औरत को खिलौना और दिल बहलाने व ऐशपरस्ती का ज़रिया समझते हैं और मुझे उन की इन हरकतों से हमेशा नफ़रत रही है। मुझे कोई मुख़लिस और इंसानियत का क़द्र करने वाला मर्द नज़र ही नहीं आया, इस लिये मैं शादी नहीं कर सकी।

बह्रहाल जहाँ तक आम मिलने वालों और सोसाईटी का संबंध है तो मै जानती हूँ कि उन का जवाबी कार्य ठीक नहीं होगा। वह नाक भूँ चढ़ाएँगे, हंसी उड़ाएँगे मगर मुझे इस की परवाह नहीं। यूँ भी अब मैं आस्ट्रेलिया में नहीं रहना चाहती। वापस जा कर फ़्लेट बेचूँगी, मशग़ूलियात को समेटूँगी और पाकिस्तान या सऊदिया चली जाऊँगी। मेरी ख़्वाहिश है कि मेरी बाक़ी ज़िन्दगी मदीना में गुज़रे या लाहौर में। मैं मक्का जा कर जल्द हज करने का भी इरादा रखती हूँ। शायद आप जानते हों

कि आस्ट्रेलिया की समाजी ज़िन्दगी में आम यूरोप की तरह सुकून और चैन नाम की कोई चीज़ नहीं मिलती। चोरी, डकैती और जराईम की भरमार है। बच्चे, बूढ़े, औरतें नशीली चीज़ों की आदी हैं जिन्सी बेराहरवी आख़िरी हदों को फाँद चुकी है, और मामूली बात पर मकान जला दिये जाते हैं चुनाचे कहा नहीं जा सकता कि मैं वापस जाऊँ तो अपना फ़्लेट जला हुआ देखूं। सिडनी में थोड़ी-थोड़ी देर के बाद फ़ायरब्रिगेड की गाड़ियाँ शोर मचाती भागती दिखाई देती हैं और यह वहाँ की ज़िन्दगी का दुख देने वाला तरीक़ा बन गया है।

प्रश्नः– आप के ख़याल में इस्लाम के प्रचार का सही तरीक़ा क्या है?

उत्तरः– सिर्फ़ एक और वह यह कि मुसलमान अपने चरित्र और अमली ज़िन्दगी को इस्लाम के साँचे में ढाल दें। यूरोप का इंसान अंधेरों में भटक रहा है, उस के धर्म में इतनी ताक़त नहीं कि उस की रहनुमाई कर सके। उस की सभ्यता (तहज़ीब) ने सारी ज़िन्दगी को जहन्नम में बदल दिया है। उस की रूह प्यासी है और यह प्यास इस्लाम और सिर्फ़ इस्लाम ही बुझा सकता है मगर अफ़सोस की आम मुसलमान इस्लामी ज़िन्दगी से दूर हो गये हैं चुनाचे जब यूरोप का शिक्षिक इंसान इस्लाम के बारे में पढ़ता है तो वह उस की सच्चाई को मानने लग जाता है मगर जब इस्लामी दुनिया की नासाज़गार सूरते हाल को देखता है तो वह परेशान और मायूस हो कर इस्लाम से दूर रहता है।

इस की पूर्ति इस तरह हो सकती है कि मुसलमान इस्लाम को सही अर्थों में अमली तौर पर इख़तियार करें। तब पूरा यूरोप, अमरीका, आस्ट्रेलिया और जापान इस्लाम की गोद में आ कर रहेगा।

प्रश्नः– कोई ऐसी इस्लामी शख़सियत जिस ने आप को बहुत

प्रभावित किया हो?

उत्तरः- जी हाँ मैं मोहतरमा मरयम जमीला से बहुत प्रभावित हुई हूँ। उन्हों ने अपनी पुरानी ख़ानदानी व मुल्की रिवायात को छोड़ कर पूरी तरह से इस्लामी अंदाज़ अपना लिया है, वह बहुत ही सादा व ख़ामोश ज़िन्दगी गुज़ारती हैं। शौहर और उन की 90 साला बूढ़ी माँ की ख़िदमत करती हैं। बच्चों का बहुत अच्छे ढंग से पालन पोशन करती हैं और मिलने वालों से बहुत ही आवभगत से पेश आती हैं और सब से बढ़ कर उन्हों ने ऐसी क़ीमती किताबें लिखी हैं जिन्हों ने एक तरफ़ पच्छिमी सभ्यता (तहज़बी) की ज़ाहिरी टीप टाप को उतार फेंका है और दूसरी तरफ़ इस्लाम की सच्चाई ज़ाहिर और रोशन कर दी है। मैं देख कर हैरान हुई हूँ कि मोहतरमा मरयम जमीला टी,वी नहीं देखतीं। मैकअप और बनाव सिंगार के सामान की परवाह नहीं करतीं। ऐशपरस्ती से बेपरवाह हैं मैं ने उस औरत को महानता की इंतिहाई बुलंदियों पर देखा है और उन्हीं की पुस्तकों और शख़सियत से प्रभावित हो कर इस्लाम की आज्ञाकारी बनी हूँ। मैं उस महान औरत की शुक्रगुज़ार हूँ और उसे सलाम कहती हूँ।

प्रश्नः- मौलाना मौदूदी के बारे में आप के ख़यालात क्या हैं?

उत्तरः- मेरे दिल में मौलाना का बेहद आदर व सम्मान है। मैं ने इस्लाम कुबूल करने से पहले उन की किताबें भी पढ़ी थीं और इस्लाम की सही तसवीर उन्हीं की लिखावटों से साफ़ हुई थी। मेरी मुख़लिसाना राय है कि मौलाना ने इस्लाम की बहुत ज़्यादा सेवाएँ की हैं और समय गुज़रने के साथ-साथ दुनिया भर में उन के आदर व सम्मान में बढ़ोतरी होती जाएगी। अल्लाह तआला उन के दरजात में बढ़ोतरी करे और उन के मिशन को कामियाब करे।

प्रश्नः- कोई संदेश जो आप पाकिस्तानी मुसलमानों को देना

चाहती हैं? ख़ास तौर से औरतों को।

उत्तरः– मैं अपनी मुसलमान बहनों तक यह संदेश पहुँचाना चाहती हूँ कि वह इस्लाम के न्याय के तरीक़े को अपनाएँ और ज़िन्दगी गुज़ारने का जो तरीक़ा इस्लाम ने उन के लिये बनाया है, वही अपनाएँ। मैं ने शलवार क़मीस, चादर और बुरक़े से बढ़ कर अच्छा वस्त्र औरतों के लिये कोई नहीं देखा। इसी से औरतों की इज़्ज़त है और यही चीज़ समाज को बहुत सी बुराईयों से बचा सकती है मैं उन तक यह बात पहुँचाना चाहती हूँ कि यूरोप में औरतों का वस्त्र इंतिहाई बुरा और बेइज़्ज़ती वाला होता है ख़ुदा के लिये उन की नक़्ल करने से बचें और पर्दे का वह अंदाज़ अपनाएँ जो इस्लाम ने बताया है।

★★★★★

स्पष्टीकरणः– मोहतरमा मिस ख़दीजा की यह बात ईमान को बढ़ाने वाली है कि उन पर फ़ालिज का हमला हुआ तो उन्हें बेहोशी की हालत में "यू सी एच" में दाख़िल कराया गया, तीन-चार दिन के बाद उन्हें होश आया और पता चला कि वह यूनाईटेड क्रिशचन अस्पताल के बिस्तर पर पड़ी हैं तो बहुत परेशान और क्रोधित हुई। बार-बार कहती थीं कि मर जाऊँगी, मगर किसी ईसाई के हाथ से दवाई नहीं खाऊँगी। वह तकलीफ़ से कहती थीं क्या मैं ने ईसाईयत छोड़ कर इस लिये इस्लाम कुबूल किया है कि मुझे ईसाईयों के अस्पताल में मौत आये। उन्हों ने बार-बार कहा कि मुझे जल्द से जल्द इस अस्पताल से निकाला जाये। चुनाचे इन्हें दूसरे अस्पताल में भेज दिया गया जहाँ वह 29 सितम्बर को अल्लाह तआला से जा मिलीं। उसी शाम मंसूरह में मियाँ तुफ़ैल मुहम्मद ही नें उन की जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई और

आदर व सम्मान के साथ उन्हें क़ब्रस्तान में दफ़न कर दिया गया। इस तरह उन की यह ख़्वाहिश अजीब व ग़रीब तरीक़े से पूरी हो गई कि वह आस्ट्रेलिया छोड़ कर हमेशा के लिये पाकिस्तान में रहना चाहती थीं।

फ़ातिमा (चीकोसलावाकिया)

प्रश्नः– आप का परिचय और इस्लाम कुबूल करने के कारण?

उत्तरः– मेरा मसीही नाम मोनिका था। इस्लामी नाम फ़ातिमा है। 2 सितम्बर 1943 ई० को चीकोसलावाकिया में पैदा हुई थी लेकिन बाद में पच्छिमी जर्मनी में रहने लगी। वहीं 21 अप्रैल 1963 ई० को 20 वर्ष की उम्र में एक तुर्क ज्ञानी अध्यापक उमर के हाथ पर इस्लाम कुबूल कर लिया।

जहाँ तक इस्लाम कुबूल करने के कारण की बात है तो बचपन ही से मेरा ज़ेहन सोच विचार का आदी रहा है। हर मुआमिले की अक़ली तशरीह (स्पष्टा) करना और हालात व वाक़िआत की फ़लसफ़ियाना बुनियादें तलाश करना मेरा पसंदीदा काम था। इस पहलू से जब अपने आबाई (पुशतैनी) धर्म ईसाईयत पर विचार किया तो ज़ेहन को बहुत ज़्यादा झटके लगे और यह धर्म मुझे बिल्कुल समझ में न आने वाला नज़र आया, घबरा कर दूसरे धर्म जैसे यहूदियत और हिन्दूमत का अध्ययन शुरू किया मगर दिमाग़ ने उन्हें भी कुबूल न किया। जिस चीज़ की मुझे तलाश थी अगरचे वह हाथ न आई थी मगर मेरा ज़मीर कहता था कि इस दुनिया के पैदा करने वाले ने इंसान को अज़ली (हमेशा) हिदायत से महरूम नहीं रखा और मैं उस हिदायत को एक दिन ज़रूर पा लूँगी।

यह वह दिन थे जब मेरे माँ बाप चीकोसलावाकिया को छोड़ कर पच्छिमी जर्मनी में बस गये थे वहाँ पर लाखों की संख्या में तुर्क शहरी काम करते हैं। धर्मो के मुआमिले में मेरी तहक़ीक़ (तलाश) मुझे उन के पास ले गई और मुझे बेहद ख़ुशी हुई कि यह लोग अपने ख़ानदानी व समाजी निज़ाम के एतबार से यूरोप के अंधेरों में रोशनियों के मीनार दिखाई देते थे और यहीं से मैं उन के धर्म इस्लाम के बारे में जानकारी हासिल करने पर मजबूर हुई। इस में कोई शक नहीं कि इस्लाम के बारे में मेरा शुरूआती प्रभाव कुछ ज़्यादा अच्छा नहीं था, क्यों कि मेरे जानने वाले मुसलमानों में ज़्यादा तर वह लोग थे जो सिर्फ़ विरासत के तौर पर इस्लाम से या इस्लाम की ऐसी बिगड़ी हुई शक्ल से संबंध रखते थे जो पूरब में रिवाज पा गई हैं। इस के बावजूद मैं उन के बुलंद अख़लाक़ से प्रभावित हुई और मैं ने इस्लाम को समझने के लिये उस का बाक़ायदा अध्ययन शुरू कर दिया। इस्लाम के बारे में किताबों को पढ़ना शुरू किया कुरआन का अनुवाद पढ़ा और एक तुर्क अध्यापक उमर से लम्बी बात चीत भी की। मुझे अंदाज़ा हो गया कि इस्लाम की असल शिक्षाएँ और मुसलमानों में राइज रस्म व रिवाज एक दूसरे के विपरीत हैं और इस्लाम बिल्कुल वही धर्म है जिस की तलाश मेरे ज़मीर और रूह को बहुत दिनों से थी।

मैं ने कुरआन में पढ़ा कि अल्लाह जिस को हिदायत देना चाहता है उस का दिल इस्लाम के लिये खोल देता है। तुरन्त ही मुझे एहसास हुआ कि इस्लाम मुझे अपनी ओर खींच रहा है और उस की साफ़, पवित्र शिक्षाएँ मेरी अक़्ल और फ़ितरत को अपील करने लगीं। मेरे लिये सब से ज़्यादा अपनी ओर खींचने वाली चीज़ इस्लाम का मिसाली समाजी नियम था जो रंग व नस्ल में अन्तर किये बग़ैर सब इंसानों के लिये बराबर है फिर रूहानी और

दुनियावी मुआमलात में काफ़ी आसानी और रूख़सत और दोनों के तक़ाज़ों को बराबरी के साथ अंजाम देने की तरग़ीब, इल्म व अक़्ल की यह कारफ़रमाई कि शिक्षा हासिल करना हर मुसलमान मर्द और औरत के लिये ज़रूरी क़रार दिया गया। फिर औरत को जो महान पद (दर्जा) और आदर व सम्मान दिया गया उस से तो मेरी रूह झूम उठी और सब से बढ़ कर यह कि ख़ुदा और इंसान के बीच सीधा संबंध। इन सब चीज़ों ने मेरे दिल व दिमाग़ पर जादू सा कर दिया। मुझे यक़ीन हो गया कि हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़लसफ़ी नहीं थे, अल्लाह के सच्चे पैग़म्बर थे। इस्लाम उन के ज़ेहन की पैदावार नहीं है बल्कि यह अल्लाह की तरफ़ से उतारा गया है। यही वह अकेला रास्ता है जिस की तरफ़ अल्लाह ने शुरू ही से इंसानों की रहनुमाई की है और आज भी सिर्फ़ इसी धर्म में वह हौसला है कि ज़माने की मुसीबतों का सामना कर सके और दुखी इंसानियत के ज़ख़्मों पर मरहम रखे। इस यक़ीन के तुरन्त बाद मैं ने इस्लाम क़ुबूल कर लिया।

प्रश्नः– आप के इस्लाम क़ुबूल करने का प्रभाव आप के ख़ानदान और परिचित लोगों पर क्या हुआ?

उत्तरः– यह प्रभाव कई तरह का था। माँ जी तो रोने लगीं और मुझे इस इरादे से दूर रखने के लिये कहा कि "मेरी इच्छा का सम्मान इस्लाम क़ुबूल करने से ज़्यादा महत्वपूर्ण और सौभाग्य वाला है"। मेरी दादी ने इस्लाम के बारे में मुझ से बात चीत की और एलान कर दिया कि "यह एक बेहतरीन धर्म है, इसे क़ुबूल कर के मोनिका ने ग़लत काम नहीं किया"। मेरी एक सहेली ने मेरे इस काम को गुनाह क़रार दे कर मुझ से संबंध तोड़ लिया। कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्हों ने मेरी हंसी और मज़ाक़ उड़ाया, मगर मैं ने किसी के नकारात्मक प्रभाव का कोई असर न लिया।

मैं ने यह फ़ैसला ख़ूब सोच समझ कर किया था और इस से बाल बराबर पीछे हटने का सवाल ही पैदा नहीं होता था।

प्रश्नः– आप के ख़याल में इस्लाम के प्रचार और उस को फैलाने का बेहतरीन तरीक़ा क्या है?

उत्तरः– मेरे ख़याल में इस्लाम को फैलाने का बेहतरीन तरीक़ा जो एक प्रचारक या छात्र अपना सकता है वह यह है कि अपने काम और चरित्र से उम्दा मिसाल पेश करे। अख़लाक़ी एतबार से गिरे हुये यूरोपियन समाज का एक व्यक्ति जब किसी शख़्स को क़ुर्बानी, शराफ़त, ईमानदारी, बेग़र्ज़ी और इंसानी एहतराम का मुज़ाहिरा करते हुये देखेगा तो यक़ीनन प्रभावित होगा और इस्लाम के क़रीब आने की कोशिश करेगा, लेकिन अफ़सोस कि इस्लामी दुनिया इस महत्वपूर्ण मुआमले की तरफ़ से बेख़बर है और अच्छे काम व अच्छे चरित्र का मुसलमान बनने की कोशिशें नहीं की जातीं। इस्लाम को बढ़ाने के रास्ते में यही सब से बड़ी रूकावट है।

इस्लाम को फैलाने के लिये दूसरी ज़रूरी चीज़ यह है कि मुसलमान किसी प्रचारक इस्लामी जमाअत से रहनुमाई हासिल करें और ज्ञानी लोगों के सहयोग से भरपूर इल्मी व धार्मिक जानकारियों से माला माल हों। हक़ीक़त यह है कि इस समय दुनिया में इस्लाम के लिये हालात बहुत ही साज़गार (ठीक ठाक) हैं उस में एक विश्वव्यापी धर्म बनने की योग्यताएँ मौजूद हैं और वह इस ज़माने के इंसान की तमाम रूहानी व माद्दी ज़रूरतें पूरी कर सकता है। देखना यह है कि इस्लाम की उपासना करने वाले इस मौक़े से किस तरह फ़ायदा उठाते हैं।

(बशुक्रिया ख़ुद्दामुद्दीन 11 जनवरी 1980 ई०)

★★★★★

डॉक्टर प्रोफ़ेसर ज़ियाउर्रहमान आज़मी (भारत)

निम्न लिखित इंटरवियू सज्जाद हिजाज़ी ने संपादित किया था और "उर्दू डाईजेस्ट" के जनवरी 78 ई॰ के शुमारे में प्रकाशित हुआ था। ज़ियाउर्रहमान आज़मी पहले राबता आलमे इस्लामी में महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारियाँ निभा रहे थे लेकिन पी, एच, डी, करने के बाद वह अब मदीना यूनेवर्सिटी में प्रोफ़ेसर हो गये हैं।

☆☆☆☆

मैं ने उन का ज़िक्र पहली बार मार्च 77 ई॰ के फ़ारान में पढ़ा। माहिरुलक़ादिरी ने उन से मक्का मुकर्रमा में मुलाक़ात का ज़िक्र किया था इन्हों ने हिन्दू धर्म छोड़ कर इस्लाम कुबूल किया था। मेरे दिल में इस ख़ुशनसीब नवजवान से मुलाक़ात की तड़प पैदा हो गई जिसे अल्लाह तआला ने कुफ़्र के अंधेरों से निकाल कर इस्लाम की रोशनी की तरफ़ बढ़ने की शक्ति दी और जब ख़ुशनसीबी मुझे हिजाज़ ले आई तो उस तड़प ने मुझे उस नवजवान तक पहुँचा दिया। मेरे सामने एक ख़ूबसूरत नवजवान खड़ा था गंदुमी रंग, निकलता हुआ क़द, चेहरे पर सलीक़े से कटी हुई ख़ूबसूरत दाढ़ी, ऐनक के शीशों के पीछे ज़िहानत की लौ से

चमकती हुई आँखें, सौभाग्य के नूर से रोशन चौड़ा माथा, बात चीत में नर्मी और ठहराव, तक़रीर में संजीदगी और दिल व दिमाग़ दोनों को एक तरह से अपील करने वाली इल्मिय्यत की हसीन मिलावट। यह थे डॉक्टर ज़ियाउर्रहमान आज़मी। डॉक्टर साहब ने इस्लाम कुबूल करने के बाद शुरू की इस्लामी शिक्षा दाक्षिणीय हिन्द के एक विद्यालय में हासिल की थी, फिर जामिया इस्लामिया मदीना मुनव्वरा में दाख़िला मिल गया। यहाँ से शिक्षा पूरी करने के बाद जामिअतुल-मलिक अब्दुल अज़ीज़ मक्का मुकर्रमा से माजिस्तर (एम, ए,) किया, फिर जामियतुल-अज़हर क़ाहिरा से पी, एच, डी, किया। आज कल आप राबतए आलमे इस्लामी में एक ज़िम्मेदार पद पर हैं।

पहले से तैय किये हुये समय के मुताबिक़ उन का इंटरवियू लेने उन के घर पर पहुँचा तो उन्हों ने ख़ुशी के साथ मेरा स्वागत किया। मुझे अपने अध्ययन वाले कमरे में ले गये जहाँ एक तरफ़ अलमारियों में चुनी हुई किताबें बड़े सलीक़े से रखी हुई थीं। उन में से ज़्यादातर अरबी ज़ुबान की किताबें थीं। कुछ उर्दू की भी थीं।

चाय के साथ-साथ बात चीत का सिलसिला शुरू हुआ। मैं ने सब से पहला प्रश्न उन के ख़ानदान और शुरू की ज़िन्दगी के बारे में किया।

"मैं 34 साल पहले 1943 ई० में ज़िला आज़मगढ़ (भारत) के एक इलाक़े में एक हिन्दू घराने में पैदा हुआ"। डॉक्टर साहब ने गुज़रे हुये ज़माने के दरीचे खोलते हुये कहा। "मेरे पिता बिरादरी के चौधरी थे। हमारा कलकत्ते में काफ़ी लम्बा चौड़ा कारोबार था। मैं ने मिडिल तक शिक्षा अपने इलाक़े के मिडिल स्कूल में हासिल की। फिर शिबली कालेज आज़मगढ़ में दाख़िला लिया। यहीं इस्लामी आनदोलन से परिचित और प्रभावित हुआ और ज़िन्दगी

की गाड़ी का रूख़ ही बदल गया"।

प्रश्नः– "इस्लामी आनदोलन से किस तरह परिचित और प्रभावित हुये"? मैं ने पूछा।

उत्तरः– "1951 ई॰ में मैट्रिक की परिक्षा देने के बाद घर आया तो एक साहब ने मुझे सय्यद अबुल आला मौदूदी की किताब "दीने हक़" का हिन्दी अनुवाद पढ़ने के लिये दिया। किताबों के पढ़ने से मुझे फ़ितरी तौर पर दिलचस्पी थी चुनाचे बड़े शौक़ से किताब पढ़ी और उस अध्ययन नें मेरे दिल की दुनिया ही बदल डाली। मुझे ऐसा लगा कि मैं अब तक गहरे अंधेरे में खोया हुआ था। धीरे-धीरे वह अंधेरे दूर हो रहे हैं और पहली बार रोशनी की किरनें दिखाई दे रही हैं। इस एहसास ने मेरे दिल को उस रोशनी से क़रीब होने की तड़प पैदा कर दी। मैं ने उस किताब को कई बार पढ़ा और हर बार शौक़ की गर्मी बढ़ती गई। मैं ने फ़ैसला किया कि इस ग्रंथकार की हिन्दी में अनुवाद की हुई तमाम किताबें हासिल कर के पढ़ूँ।

प्रश्नः– "क्या आप ने इस से पहले हिन्दू धर्म का बाक़ायदा अध्ययन भी किया था"? मेरा अगला सवाल था।

उत्तरः– "मैं ने हिन्दू धर्म की बाक़ायदा शिक्षा हासिल तो नहीं की थी अलबत्ता एक हिन्दू घराने में पैदाइश और अपने आस पास के शदीद धार्मिक माहौल की वजह से मैं हिन्दू धर्म के अक़ाइद और रूसूम से अच्छी तरह परिचित भी था और काफ़ी प्रभावित भी। बल्कि मेरे दिल में हिन्दू धर्म के लिये बहुत तरफ़दारी थी। मैं हिन्दू धर्म के अलावा किसी दूसरे धर्म को हक़ नहीं समझता था लेकिन इस्लाम का अध्ययन शुरू किया और मेरे सामने इस्लाम का यह दावा आया कि

"इन्नद्दीना इंदल्लाहिल–इस्लाम" إِنَّ الدِّيْنَ عِنْدَ اللّٰهِ الْإِسْلَام

(यानी सिर्फ़ इस्लाम ही हक़ और सच्चा धर्म है) तो मैं ने एक बार फिर हिन्दू धर्म को नये सिरे से समझने की कोशिश की। इस मक़सद के लिये अपने कालेज के संसकृत के लेकचरार के पास गया। वह गीता और वैदों के बहुत बड़े ज्ञानी थे लेकिन मुझे संतुष्ठ न कर सके। हक़ीक़त तो यह है कि हिन्दू धर्म के देवमालाई विश्वासों की व्यवस्था और समझ में न आने वाले रूसूम में दिल की तसल्ली के लिये सिरे से कोई सामान ही मौजूद नहीं। यही वजह है कि हिन्दूओं के नवजवान तबक़े में अपने धर्म के देवमालाई तसव्वुरात और अजीब व ग़रीब रूसूम के बारे में बहुत बेइतमीनानी पाई जाती है। अगर उन लोगों से संबंध क़ायम किया जाये और उन की ज़ेहनी सतेह और ख़ास पसमंज़र को सामने रखते हुये लिटरेचर तयार कर के उन में फैला दिया जाये तो उन में इस्लामी शिक्षा के फैलने की ज़्यादा आशा है। इस का मुझे ज़ाती तौर पर तजर्बा है। मैट्रिक पास करने के बाद जब मैं कालेज गया तो मेरी यह आदत थी कि मनोरंजन के पीरियड में मौलाना मौदूदी की हिन्दी में अनुवाद की हुई पुस्तकों का अध्ययन करने के साथ साथ अपने दोस्त हिन्दू छात्रों को एक अलग जगह बिठा कर सय्यद मौदूदी की मशहूर पुस्तक "दीनियात" पढ़ कर सुनाया करता, वह न सिर्फ़ यह कि बड़े ध्यान और दिल लगा कर सुना करते बल्कि इस सिलसिले में उन की दिलचस्पी इतनी ज़्यादा थी कि अगर मेरे मुसलमान हो जाने का लोगों को इतनी जल्दी पता न चल जाता तो वह लोग भी मेरे साथ ही इस्लाम कुबूल कर लेने का ऐलान करते"।

प्रश्नः– "किताबों के अध्ययन से बाक़ायदा इस्लाम कुबूल करने का समय कितने दिनों में और किस तरह तैय हुआ"? मैं ने पूछा।

उत्तरः– "छुट्टियों के बाद कालेज खुला तो मेरे अंदर इस्लामी

पुस्तकों के अध्ययन का शौक़ और ज़्यादा पैदा हो चुका था। ख़ुशकिस्मती यह थी कि मुझे सय्यद मौदूदी की हिन्दी में अनुवाद की हुई किताबें आसानी से मिल जातीं। उसी अध्ययन के दौरान मुझे मालूम हुआ कि सय्यद मौदूदी ने 1953 ई० में सिर्फ़ इस्लामी व्यवस्था के क़याम के लिये सज़ाये मौत को ख़ुशी के साथ कुबूल कर लिया था और कृपा की दरख़्वास्त की पेशकश यह कह कर रद कर दी थी कि मेरे लिये अल्लाह की राह में शहीद होना ज़ालिमों से कृपा की अपील करने के मुक़ाबिले में बहुत ज़्यादा बेहतर है इस वाक़िआ नें मुझे बहुत ज़्यादा प्रभावित किया। पहले मैं यह समझता था कि सिर्फ़ ख़ुदा की ख़ुशी हासिल करने के लिये मौत को ख़ुशी के साथ कुबूल करने वाले लोग सिर्फ़ इतिहास की किताबों में मिलते हैं। अब पता चला कि इस्लाम में आज भी ऐसे महान लोग मौजूद हैं जो राहे हक़ में हंसी ख़ुशी जान दे देने को अपनी ज़िन्दगी की सब से बड़ी ख़ुशक़िस्मती समझते हैं इस जानकारी ने मुझे इस्लाम से और ज़्यादा क़रीब कर दिया।

डॉक्टर साहब कुछ देर ख़ामोश रहे फिर कहने लगेः "उसी दौरान मुझे ख़्वाजा हसन निज़ामी का हिन्दी में अनुवाद किया हुआ कुरआन पढ़ने का मौक़ा मिला। अल्लाह ने और ज़्यादा मेहरबानी यह की कि शिबली कालेज ही के एक अध्यापक ने जो सय्यद मौदूदी की फ़िक्र से गहरे प्रभावित थे, और जिन्हों ने एक हफ़तावार कुरआन के दर्स का हल्क़ा भी क़ायम कर रखा था, इस्लाम के लिये मेरा ज़ौक़ व शौक़ देख कर मुझे अपने दर्स के हल्क़े में शामिल होने की ख़ुसूसी इजाज़त दे दी।

सय्यद अबुलआला मौदूदी की पुस्तकों के लगातार अध्ययन और कुरआन के दर्स के हल्क़ें में बाक़ायदा की हाज़िरी ने मेरे इस्लाम कुबूल करने के जज़्बे को और बढ़ा दिया मगर कुछ शंकाएँ दिल व दिमाग़ में उभर-उभर कर मेरे उस रूहानी सफ़र

की राह में आ जाते और मैं ठिठक कर रह जाता। सब से ज़्यादा परेशानी यह थी कि मैं दूसरे ख़ानदान वालों के साथ किस तरह निबाह कर सकूँगा। ख़ास तौर से छोटी बहनों के भविष्य के बारे में बहुत परेशान था। मगर उसी दौरान एक ऐसा वाक़िआ पेश आया कि मुझे नताइज की परवाह किये बग़ैर तुरन्त इस्लाम कुबूल कर लेने का फ़ैसला करना पड़ा। हुआ यह कि एक दिन उन्हीं अध्यापक साहब ने जिन के दर्स में मैं रोज़ाना शामिल होता था सूरह अनकबूत का दर्स दिया। पहले उन्हों ने यह आयत पढ़ीः-

مَثَلُ الَّذِيْنَ اتَّخَذُوْا مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ اَوْلِيَاءَ كَمَثَلِ الْعَنْكَبُوْتِ اِتَّخَذَتْ بَيْتًا ط
وَاِنَّ اَوْهَنَ الْبُيُوْتِ لَبَيْتُ الْعَنْكَبُوْتِ لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ.

"मसलुल-लज़ीना-त्तख़ज़ू मिन दूनिल्लाहि अवलियाआ कमसलिल अनकबूति इत्तख़ज़त बैतन, व-इन्ना औहनल-बुयूति लबैतुल अनकबूति लौ कानू यालमून।"

(जिन लोगों ने अल्लाह को छोड़ कर दूसरों को अपना काम बनाने वाला समझ लिया है उन की मिसाल मकड़ी की तरह है जो घर बनाती है और सब से कमज़ोर घर मकड़ी का होता है। काश वह लोग इस हक़ीक़त से बाख़बर होते)।

फिर इस की वज़ाहत (स्पष्टीकरण) करते हुये बताया कि अल्लाह तआला के अलावा दूसरे तमाम सहारे मकड़ी के जाले की तरह कमज़ोर और बेबुनियाद हैं। उन के इस स्पष्टीकरण और दिल में बस जाने वाले बयान करने के अंदाज़ ने मुझे झिंझोड़ कर रख दिया और मैं ने किसी तरह की देर किये बग़ैर इस्लाम कुबूल करने और तमाम सहारों को छोड़ कर अल्लाह तआला का सहारा पकड़ने का फ़ैसला कर लिया। उसी सभा में मैं ने अपने अध्यापक से कहा मैं तुरन्त इस्लाम कुबूल करना चाहता हूँ। साथ ही उन से नमाज़ से संबंधित कोई मुनासिब पुस्तक भी माँगी। उन्हों ने मुझे

"मकतबा अल हसनात" दिल्ली की आसान हिन्दी ज़ुबान में प्रकाशित की हुई पुस्तक "नमाज़ कैसे पढ़ें"? दी जिस से मैं ने कुछ घंटों के अन्दर अन्दर नमाज़ सीख ली। मग़रिब के क़रीब दोबारा अध्यापक जी के पास पहुँचा। उन के हाथ पर पूरी तरह से इस्लाम कुबूल कर लिया और उन्हीं के पीछे मग़रिब की नमाज़ पढ़ी। यह मेरी सब से पहली नमाज़ थी और उस की हालत मैं कभी भूल न सकूँगा"।

प्रश्नः- "क्या आप ने इस्लाम कुबूल करते ही उस का एलान भी कर दिया या इस्लाम कुबूल करने और उस के ज़ाहिर होने और एलान के बीच कुछ समय भी लगा"? मैं ने पूछा।

उत्तरः- "इस्लाम कुबूल करने, उस के ज़ाहिर होने और एलान के बीच कई कई महीने का समय लगा। मुसलमान होने के तुरन्त बाद मुझे एक बहुत बड़ी ज़ेहनी उलझन से गुज़रना पड़ा। इस ज़ेहनी उलझन का नतीजा यह हुआ कि मेरी शिक्षा का सिलसिला बन्द हो गया। मेरा सारा समय या तो सय्यद मौदूदी की पुस्तकों के अध्ययन में गुज़रता या उन पुस्तकों के चुने हुये हिस्से अपने साथियों को सुनाने में। नमाज़ के समय मैं चुप चाप घर से निकल जाता और किसी अलग जगह जा कर नमाज़ पढ़ता। यह सिलसिला क़रीब-क़रीब चार महीने तक चलता रहा लेकिन मेरी यह लगन ज़्यादा दिनों तक छुपी न रह सकी। मैं आज़मगढ़ में अपने एक दोस्त के यहाँ रहता था, उस का लड़का मेरा दोस्त और राज़दार था, उस ने मुझ में यह परिवर्तन देखा तो पहले ख़ुद मुझे समझाने की कोशिश की और कहा कि इस तरह इस्लाम कुबूल करने के बाद मैं अपने माँ बाप और रिश्तेदारों से अलग हो जाउँगा लेकिन जब उस ने मेरे अन्दर सुधार की कोई राह नहीं पाई तो पिता जी को कलकत्ते में ख़त लिख दिया कि तुरन्त आज़मगढ़ पहुंचें नहीं तो लड़का हाथ से निकल जाएगा। पिता जी

ख़त मिलते ही पहुंच गये और फिर मुझे धीरे धीरे उन हालात को भुगतना पड़ा जिन की उम्मीद थी और जिन के लिये मैं अपने आप को ज़ेहनी तौर पर पहले से तयार कर चुका था"।

प्रश्नः– "क्या आप उन हालात की तफ़सील (विवरण) बताना पसंद करेंगे"? मैं ने पूछा।

उत्तरः– विवरण तो मेरी एक पुस्तक "गंगा से ज़मज़म तक" में आ रहा है। फिर भी मुख़तसर तौर पर कुछ बातें बयान कर देता हूँ। पिता जी कलकत्ते से आज़मगढ़ पहुंचे तो उन्हों ने शुरू में ख़ुद मुझे कुछ कहने के बजाये मेरे हालात का जायज़ा लिया। फिर यह समझते हुये कि शायद मैं किसी जिन्न या भूत से प्रभावित हो गया हूँ बहुत से पंडितों और परोहितों से मेरा इलाज कराने लगे लेकिन कोई जिन्न या भूत होता तो झाड़ फूंक से चला जाता। यहाँ तो मुआमला ही दूसरा था चुनाचे जो चीज़ भी पंडितों या परोहितों से ला कर देते मैं बिस्मिल्लाह पढ़ कर खा लेता। बहरहाल जब वहाँ मेरा इलाज न हो सका तो पिता जी ने मुझे अपने साथ कलकत्ते ले जाने का फ़ैसला किया ताकि इस्लामी आनदोलन के लोगों से जो उन के नज़दीक इस "बीमारी" की असल जड़ थे, संबंध क़ायम न रह सके लेकिन भला यह संबंध कहाँ इस तरह के हीलों बहानों से टूट सकता था? चुनाचे कलकत्ते पहुँचते ही वहाँ के आनदोलन (तहरीक) से संबंधित लोगों से संबंध क़ायम किया और मेरी सब से बड़ी यानी नमाज़ पढ़ने की समस्या भी सुलझ गई। पिता जी को ख़बर हुई तो वह हैरान रह गये। उन्हों ने तुरन्त मुझे इलाहाबाद में रहने वाले अपने एक दोस्त के यहाँ भेज दिया। यहाँ अब झाड़ फूंक के साथ-साथ बहुत से पंडितों और परोहितों ने भी समझाना बुझाना शुरू कर दिया। कहने लगेः "हिन्दू धर्म इस्लाम के मुक़ाबिले में ज़्यादा मुकम्मल धर्म है लेकिन जब मैं ने हिन्दू धर्म के बारे में प्रश्न किये तो वह

जवाब न दे सके मजबूर हो कर बोलेः

"अच्छा अगर हिन्दू धर्म छोड़ना ही है तो फिर मुसलमान बनने के बजाये ईसाई बन जाओ क्यों कि मुसलमानों की मौजूदा गिरावट और उस के मुक़ाबिले में ईसाईयों की तरक़्क़ी से यह साबित होता है कि ईसाईयत इस्लाम के मुक़ाबिले में कहीं ज़्यादा बेहतर धर्म है।" मैं ने जवाब में कहाः "असल में मैं मुसलमानों से नहीं बल्कि इस्लाम से प्रभावित हो कर मुसलमान हो रहा हूँ।"

आख़िर कुछ दिनों की झाड़ फूंक और बहस के बाद मुझे नाक़ाबिले इलाज क़रार दे दिया गया और पिता जी दोबारा अपने घर ले आये। घर वालों का पहले ही रो-रो कर बुरा हाल हो चुका था। मुझे मकान के एक कमरे में रखा गया और जिन लोगों का आनदोलन से संबंध था उन से मिलना जुलना बन्द कर दिया गया। साथ ही मेरी माँ, बहनों और दूसरी रिश्तेदार औरतों ने मुझे इस्लाम से दूर रखने के लिये अपने तौर पर रोने धोने और सिफ़ारिश करने का सिलसिला शुरू कर दिया। उधर झाड़ फूंक भी जारी रही लेकिन यहाँ हर चीज़ बेअसर साबित हो रही थी। तंग आ कर घर वालों ने सख़्त क़दम उठाने का फ़ैसला कर लिया। मुझ पर दबाव डालने के लिये उन सब ने भूक हड़ताल कर दी यह बड़ी सख़्त समस्या थी। माँ बाप और बहन भाई कोई भी खाने की किसी चीज़ को हाथ न लगाता। वह मेरी नज़रों के सामने भूक से निढाल पड़े सिसक्ते रहते लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि उस ने मुझे इसतिक़ामत बख़्शी और इस्लाम से दूर रखने की यह चाल भी काम न आई।

इस नाकाम कोशिश के बाद घर वालों ने एक और चाल चली। एक मौलवी साहब को ले आये जिन्हों ने मुझे बताया कि इस्लाम इस बात की इजाज़त नहीं देता कि कोई व्यक्ति अपने माँ बाप की ज़िन्दगी में उन की मर्ज़ी और इजाज़त के बग़ैर इस्लाम

कुबूल करने का एलान या कोई भी ऐसा काम करे जिस से उस के इस्लाम कुबूल करने का पता चलता हो इस लिये जब तक आप के माँ बाप ज़िन्दा हैं आप अपने इस्लाम को दिल में रखें और नमाज़ और दूसरे इस्लामी अहकामात पर अमल करने से सख़्ती से बचें। मौलवी साहब की यह बात मुझे कुछ अजीब सी लगी लेकिन उस समय तक मुझे इस सिलसिले में ज़्यादा जानकारी नहीं थी। इस लिये मैं ने मौलवी साहब के इस मशवरे को वाक़ई इस्लाम का एक हुक्म समझते हुये मान लिया। इस पर घर और बिरादरी में ख़ूब ख़ुशियाँ मनाई गई। कुछ ही दिनों के बाद पता चला कि उन मौलवी साहब का संबंध एक ऐसे फ़िरक़े (धर्म) से है जो ख़ुद अपने आप को मुसलमानों की जमाअत से अलग समझता है, और यह कि उन के इस फ़तवे का इस्लाम से कोई संबंध नहीं। यह पता चलते ही मैं ने अपने आप को दोबारा इस्लाम के सांचे में ढालने का फ़ैसला कर लिया। और दोबारा पाबंदी के साथ पाँचों वक़्त की नमाज़ पढ़ने लगा। साथ ही हिन्दू धर्म से खुले तौर पर अलग रहना शुरू कर दिया। कुछ ही दिनों के बाद मैं एक मस्जिद में नमाज़ पढ़ रहा था कि मक़ामी हिन्दुओं के एक गिरोह ने मस्जिद में घुस कर नमाज़ियों पर हमला कर दिया, मैं ने यह सूरते हाल देखी तो फ़ैसला कर लिया कि अब इस्लाम कुबूल करने के बाक़ायदा एलान का समय आ चुका है। चुनाचे मैं ने मस्जिद ही में सरेआम अपने इस्लाम कुबूल करने का एलान कर दिया और यह भी बता दिया कि अब मेरा हिन्दूमत या हिन्दुओं से कोई संबंध नहीं है। यह कोई मामूली बात न थी यह हिन्दुओं के लिये एक खुला चेलंज था और मुझे उन की तरफ़ से इस चेलंज का जवाब देने के बारे में कोई ग़लतफ़हमी न थी।

घर पहुंचा तो घर वालों का रंग ही बदला हुआ था। उन की वह ख़ुशियाँ जो कुछ दिनों पहले मेरे इस्लाम को छुपे रखने के

फ़ैसले से पैदा हुई थीं, ख़त्म हो चुकी थीं और सब के चेहरे ग़म से निढाल हो चुके थे। लेकिन अल्लाह का लाख लाख शुक्र है कि ऐसी किसी भी चीज़ से मेरे इस्लाम पर अटल रहने में कोई कमी न आई। उधर पिता जी ने यह समझ कर कि अब मुझे इस्लाम से रोकना उन के बस की बात नहीं है, मेरा मुआमला एक हिन्दू तनज़ीम (संघटन) के सुपुर्द कर देने का फ़ैसला कर लिया। यह तनज़ीम (संघटन) अपनी इन्तिहापसंदी और इस्लाम दुश्मनी के लिये बुरी तरह बदनाम है। अब आज़माईशों और मुसीबतों का एक नया और न ख़त्म होने वाला बहुत सख़्त और सब्रआज़मा सिलसिला शुरू हो गया और अगर अल्लाह मुझे सब्र व अटल रहने की शक्ति न देता तो शायद मैं उन हालात का मुक़ाबिला नहीं कर सकता था।"

प्रश्नः– उन मुसीबतों की तफ़सील बताना पसंद करेंगे"? मैं ने पूछा।

उत्तरः– "मुझे हिन्दुओं की जिस तनज़ीम (संघटन) के हवाले करने का फ़ैसला किया गया था, वह धर्म के मुआमले में इन्तिहा पसंद ही नहीं तशद्दुद पसंद भी है। उस तनज़ीम के उद्देशों (मक़ासिद) में दूसरी बातों के अलावा यह भी शामिल है कि उन मुसलमानों और ईसाईयों को हर मुम्किन तरीक़े से दोबारा हिन्दू बनने पर मजबूर किया जाये जिन के माँ बाप और घर वाले हिन्दू थे। ज़ाहिर है जिन लोगों की इन्तिहापसंदी का यह हाल हो, वह एक हिन्दू नवजवान के इस्लाम कुबूल करने को किस तरह ठंडे पेटों बरदाश्त कर सकते थे। उन के हत्थे चढ़ने के बाद किसी शख़्स के सामने सिर्फ़ दो ही रास्ते खुले रह जाते हैं। अपने धर्म की तरफ़ दोबारा लौट आना या फिर मौत। तीसरे किसी रास्ते का सवाल ही पैदा नहीं होता फिर भी अल्लाह तआला ने मुझे बिल्कुल ही चमत्कारी तौर पर इस आज़माइश से बचा लिया

लेकिन जिन दूसरी आज़माईशों से गुज़रना पड़ा वह भी कुछ कम न थीं।

कुछ मुख़लिस दोस्तों के बहुत ज़्यादा कहने पर जो मुझे इस इन्तिहापसंद तनज़ीम के हवाले कर देने के मंसूबे को जानते थे, मुझे शहूर के बाहर एक दोस्त के घर एक ऐसे कमरे में रहना पड़ा जहाँ जानवर बाँधे जाते थे उस इन्तिहापसंद तनज़ीम को मेरे इस तरह अचानक गुम हो जाने की ख़बर मिली तो उस में काम करने वाले मुझ को तलाश करने के लिये पूरे शहूर में फैल गये। शहूर की कोई मस्जिद, किसी मशहूर मुसलमान का मकान, कोई रास्ता कोई अड्डा ऐसा न था जहाँ पर पहरे न बिठा दिये गये हों। मुझे इस नाकाबंदी की बराबर ख़बर मिलती रही। यह सिलसिला कई दिन तक जारी रहा। यह रमज़ानुल-मुबारक का पवित्र महीना था। सहरी व इफ़तारी और नमाज़ की अदायगी का इन्तिज़ाम भी उसी जानवरों के कमरे में होता। लगभग एक हफ़ता उस कमरे में इसी हाल में गुज़रा। फिर उस तनज़ीम में काम करने वालों ने वहाँ से निराश हो कर अपनी तलाश का रूख़ दूसरे शहूरों की तरफ़ फेर दिया। चुनाचे एक दिन रात के पिछले पहर भेस बदल कर एक साथी के साथ रेलवे स्टेशन पहुँचा और एक दूसरे बड़े शहूर में पहुँच गया। वहाँ के तहरीकी साथियों को मेरे इस्लाम कुबूल करने के बारे में पहले से पता था। असल में मैं उन्हीं के बुलाने पर वहाँ गया था मुझे उन लोगों ने हाथों हाथ लिया और मेरी इच्छा पर एक धार्मिक विद्यालय में दाख़िल करा दिया लेकिन अभी वहाँ कुछ ही दिन गुज़रे थे कि उस हिन्दू तनज़ीम के कर्मचारी वहाँ भी पहुँच गये और वहाँ रहना मुम्किन न रहा चुनाचे उन साथियों ने मुझे बादायूँ के एक क़सबे के विद्यालय में भेज दिया, उस विद्यालय का चुनाव इस लिये मुनासिब था कि यह इलाक़ा उस हिन्दू तनज़ीम की पहुंच से बाहर मालूम होता था।

वहाँ मैं ने दीनी शिक्षा हासिल करने के साथ-साथ उर्दु ज़ुबान भी सीखना शुरू कर दी क्यों कि उस के बग़ैर सिर्फ़ हिन्दी ज़ुबान के बल बूते पर उर्दु ज़ुबान में मौजूद लम्बे चौड़े इस्लामी लिटरेचरों पर हावी होना मुम्किन न था। अभी उस विद्यालय में मुश्किल से डेढ़ दो साल का समय ही गुज़रा होगा कि उस तनज़ीम के कर्मचारी हमारी तलाश में वहाँ भी पहुंच गये। यह सिर्फ़ एक चमत्कार था कि उन के आने की ख़बर मुझे पहले मिल गई और वहाँ से निकल जाने में आसानी रही।

अब मेरी मंज़िल दक्षिणी भारत का सूबा मदरास था। वहाँ का मशहूर धार्मिक विद्यालय "दारूल-इस्लाम" के लोग मेरे बारे में पहले से जानते थे। उन्हों ने मुझे सिर आँखों पर बिठाया। ख़ुदा का शुक्र है कि यहाँ लगभग छः साल तक मुझे पूरी यकसूई और इतमीनान के साथ दीनी शिक्षा हासिल करने का मौक़ा मिल गया। यहाँ लगभग पाँच साल गुज़ारने के बाद मैं ने कुछ दिनों के लिये अपने ख़ानदानी क़सबे में जाने का फ़ैसला किया। वहाँ मैं अपने उन्हीं दोस्तों के यहाँ ठहरा जिन्हों ने मुझे सब से पहले सय्यद अबूलआला मौदूदी की एक छोटी सी पुस्तक (दीने हक़) के ज़रिये इस्लाम से परिचित कराया था। लोगों को मेरे आने की ख़बर हुई तो वह गिरोह दर गिरोह मुझ से मिलने के लिये टूट पड़े। हैरान करने वाली बात यह थी कि उन में हिन्दू भी थे। इस का कारण मुझे बाद में मालूम हुआ। वह यह कि उन्हों ने जब देखा कि इतनी तकलीफ़ों और मुश्किलों के बावजूद मैं इस्लाम पर जमा रहा और मुझे कोई लालच और डर हक़ के रास्ते से फेर न सका तो उन की नफ़रत मुहब्बत में बदल गई। उसी बीच ईदुल-फ़ित्र आ गई। मुसलमानों ने एलान कर दिया कि ईद की नमाज़ भी मैं ही पढ़ाऊँगा और ख़ुत्बा भी मैं ही दूँगा। उस एलान के नतीजे में न सिर्फ़ यह कि आस पास के हज़ारों मुसलमान जुलूसों की शक्ल में

ईदगाह में जमा होने लगे बल्कि ईदगाह के चारों तरफ़ हज़ारों हिन्दू भी मेरी तक़रीर सुनने के लिये पहुंच गये। वह इस बात पर बेहद हैरान थे कि मुसलमानों ने एक ऐसे शख़्स को जो अभी कुछ ही साल पहले हिन्दू था, अपना धार्मिक रहनुमा और इमामत के उहदे (पद) पर किस तरह बिठा दिया है। वह इस्लाम के इस पहलू और फिर मेरी तक़रीर से बेहद प्रभावित हुये"।

प्रश्नः– "अपने माँ बाप से भी मिले होंगे?" मैं ने पूछा।

उत्तरः– "जी हाँ और ख़ुदा का शुक्र है उन के व्यवहार में भी काफ़ी बदलाव आ गया था। बल्कि मैं समझता हूँ अगर उन्हें मुझ जैसे हालात से दोचार होने की संभावना न होती, तो कोई बड़ी बात न थी कि थोड़ी सी तवज्जोह से वह भी इस्लाम में दाख़िल हो जाते"।

आयशा ब्रिजिटहनी (इंगलिस्तान)

(Ayesha Bridget Honey)

यह इंटरवियू सब से पहले दमिश्क़ के अरबी अख़बार "जमनारतु-ल इस्लाम" में प्रकाशित हुआ। इस का उर्दू अनुवाद कराची के "चिराग़ राह" में छपा। नीचे लिखा गया अनुवाद Islam Qur Choice *से लिया गया है।*

☆☆☆☆

प्रश्नः– आप ने कब इस्लाम कुबूल किया और उस समय आप की उम्र क्या थी?

उत्तरः– आज से साढ़े तीन वर्ष पहले अल्लाह तआला ने इस्लाम की शमा (दीपक) मेरे दिल में रोशन की। उस समय मेरी उम्र 21 साल की थी।

प्रश्नः– कृपा कर के विस्तार (तफ़सील) से बताइये कि आप ने इस्लाम क्यों और कैसे कुबूल किया?

उत्तरः– मैं ने जिस घराने में आँखें खोलीं और परवरिश पाई वह आम अंग्रेज़ी घरानों से अलग न था। मेरी माँ ईसाई धर्म की मानने वाली थीं मगर मैं ने उन्हें कभी इबादत करते देखा न ईसवी उसूलों की कभी उन्हों ने पाबन्दी की। पिता जी की हालत इस से भी गई गुज़री थी, वह सिरे से किसी धर्म पर यक़ीन ही

न रखते थे, चुनाचे हमारे घर की हालत पूरे तौर पर बेदीनी की थी, मुझे याद नहीं आता कि मैं ने वहाँ किसी की ज़ुबान से कभी ख़ुदा का नाम सुना हो।

बचपन में मुझे एक स्कूल में दाख़िल कराया गया वहाँ वही कोर्स पढ़ाया जाता था जो आम चर्च स्कूलों में राइज था, मगर यह अजीब बात है कि जल्द ही ईसाईयत के बहुत से अक़ीदे ज़ेहन में खटक्ने लगे ख़ास तौर से तसलीस के तसव्वुर से तो वहशत सी होने लगी और कफ़्फ़ारा का तसव्वुर बहुत ज़्यादा हंसी मज़ाक़ वाला नज़र आने लगा कि हज़रत यसूअ (या ख़ुदा) तमाम इंसानों के गुनाहों के बदले सूली पर चढ़ गये और अब इंसान अपने तमाम कामों में पूरे तौर से आज़ाद है। मैं ने उन अक़ीदों के बारे में बहुत सी दलीलें सुनीं मुबाहिसे भी सुने, मगर साफ़ एहसास होता था कि तसवीर का एक रूख़ पेश किया जा रहा है मैं सारी तसवीरें देखना चाहती थी। मुख़्तसर यह कि मैं पढ़ती तो एक धार्मिक स्कूल में थी मगर जब उसे छोड़ा तो बेधर्म हो चुकी थी। स्कूल की शिक्षा से फ़ारिग़ हो कर मैं ने फ़लसफ़ा पढ़ना शुरू किया। असल में हक़ को मालूम करने की प्यास बड़ी तेज़ थी चुनाचे जब मैं ने 15 वर्ष की उम्र में मशहूर चीनी फ़लासफ़र टाऊ Tao की पुस्तक Taoteh Ching पढ़ी तो बहुत प्रभावित हुई, फिर जब मैं ने बुद्धमत के बारे में कुछ परिचित बातें मालूम कीं तो उन दोनों अक़ीदों के बारे में विस्तार से जानकारी हासिल करने की ख़्वाहिश बढ़ गई एक इरादा यह किया कि चीनी ज़ुबान सीखूँ और चीन जा कर उन धर्मों का क़रीब से अध्ययन करूँ। लेकिन ज़ाहिर है 15 वर्ष की एक लड़की जिस के पास पैसे थे न कोई सहारा। यह ख़्वाहिश सिर्फ़ बेकार ख़याल से ज़्यादा कोई हैसियत न रखती थी फिर भी 17 वर्ष की उम्र में नोकरी के सिलसिले में केनेडा चली गई और दो वर्ष में अच्छी ख़ासी रक़्म जमा कर ली।

इरादा यह था कि सिकेन्डरी स्कूल की डिगरी हासिल कर के यूनीवर्सिटी में दाख़िला ले लूँ और चीनी ज़ुबान सीख लूँ।

केनेडा में मेरा परिचय हिन्दू धर्म से हुआ और मैं ने उन की लगभग सारी पुस्तकों का अध्ययन किया। इस तरह मैं ने अंदाज़ा किया कि टाऊइज़्म, बुद्धमत और हिन्दू धर्म में हुस्न भी है गहराई भी और कामियाबी का अंदाज़ भी, मगर इन में से किसी ने भी मेरे ज़ेहन को संतुष्ठ न किया। इस लम्बी चौड़ी दुनिया में जहाँ लोग एक दूसरे के बहुत क़रीब आ गये हैं यह तीनों धर्म रोज़ाना की ज़िन्दगी में कोई बराबरी या मज़बूती पैदा करने में बिल्कुल नाकाम हैं वह किसी न किसी पहलू को पूरी तरह से भूल जाते हैं। मिसाल के तौर पर टाऊ फ़लासफ़ी का बनाने वाला सूफ़ी बन गया और हर प्रकार का आनंद छोड़ कर दुनिया के दूर दराज़ कोनों में मारा-मारा फिरता रहा। बुद्ध ने हक़ की तलाश में बीवी बच्चों से किनारा इख़्तियार कर लिया। हिन्दू लिटरेचर की बुनियाद अगरचे अख़लाक़ पर निर्भर है, मगर इस धर्म में एक साथ ज़िन्दगी गुज़ारने के सारे नज़रियात बेबुनियाद और नज़र के धोके के सिवा कुछ दिखाई नहीं देते। इस विश्लेषण ने मुझे बहुत ज़्यादा निराश किया और मैं उन में से किसी पर ईमान न ला सकी। मैं अकसर सोचती हक़ क्या है उस पर कैसे ईमान लाऊँ? आख़िर इस ज़िन्दगी का मक़सद क्या है जैसा कि कुछ लोग कहते हैं यह सब कुछ सिर्फ़ इत्तिफ़ाक़ है क्या यह सारा कारख़ाना सिर्फ़ हादसाती है? ज़ेहनी तनाव और परेशानी बढ़ती रही। यहाँ तक कि मैं रात-रात भर सो न सकती और रूहानी प्यास मुझे अंगारों पर लोटाती रहती।

इन्हीं हालात में मैं ने सिकंडरी स्कूल की परिक्षा पास करने के बाद लन्दन यूनीवर्सिटी में दाख़िला ले लिया और चीनी ज़ुबान भी सीखने लगी मगर यह सब सिर्फ़ समय बेकार करना नज़र आता

था। यह अलग बात है कि मैं ख़ुद भी नहीं जानती थी कि ख़ुदा मेरी हक़ की तलाश की कोशिशों को क़द्र की निगाह से देख रहा है और यूनीवर्सिटी में दाख़िला ही मेरी ज़िन्दगी के रोशन इंक़लाब का सबब बन जायेगा।

यूनीवर्सिटी में मेरा परिचय कुछ मुसलमान छात्रों से हुआ। उस से पहले मैं ने इस्लाम के बारे में कुछ सुना था न पढ़ा था। और सच्ची बात तो यह है कि तमाम यूरोपियन लोगों की तरह मैं उस के बारे में तअस्सुब और ग़लतफ़हमियों का शिकार चली आ रही थी मगर यूनीवर्सिटी में मुसलमान छात्रों ने सब्र और पूरी हमदर्दी के साथ अपने बुनियादी अक़ाइद की वज़ाहत की। मैं ने जो एतराज़ भी किया उस का उत्तर उन्हों ने बड़े हौसले और सभ्यता के साथ दिया और पढ़ने को पुस्तकें भी दीं। शुरू में मैं ने उन पुस्तकों की सिर्फ़ वर्क़गर्दानी की और छोड़ दिया। मगर जब मैं ने वाक़ई संजीदगी के साथ उन के कुछ हिस्सों को पढ़ा तो पता चला कि यह पुस्तकें दूसरे धर्म की पुस्तकों से बिल्कुल अलग हैं। इस्लाम के बारे में मेरी ग़लतफ़हमियाँ आहिस्ता-आहिस्ता बदलने लगीं।

अब मैं ने उन पुस्तकों का अध्ययन बहुत एहतियात और ध्यान से शुरू किया। उन के बयान करने के तरीक़े और तशरीह (प्रतिपादन) के तरीक़े का नयापन व ताज़गी के अंदाज़ ने मुझे हैरान कर दिया। दुनिया के पैदा करने वाले, मानवजाति और मरने के बाद दोबारा ज़िन्दा होने के अक़ाइद को जिन मंतिक़ी और साइंसी दलीलों के साथ पेश किया गया था, उस ने मुझे बेहद प्रभावित किया। उस के बाद उन मुसलमान छात्रों ने मुझे क़ुरआन का एक अंग्रेज़ी अनुवाद दिया। हक़ीक़त यह है कि चाहे मैं कितनी ही कोशिश करूँ उस प्रभाव के तनासुब (अनुपात) को बयान नहीं कर सकती, जो क़ुरआन ने मेरे दिल में नक़्श किया

था। चुनाचे तीसरी सूरत ख़त्म करने से पहले मैं ख़ुदा के सामने सजदे में गिर चुकी थी यह मेरी पहली नमाज़ थी और अल्लाह का शुक्र है कि मैं उस वक़्त से मुसलमान चली आ रही हूँ। इस्लाम से परिचय हुये मुश्किल से तीन महीने हुये थे कि मैं उस की पनाह में आ गई, अभी मैं उस के बुनियादी अक़ाइद से हट कर उस के बारे में कुछ नहीं जानती थी। उस की बहुत सी शाख़ों की तफ़सीलात जानने का मरहला बाद में आया और मैं ने एक-एक मुआमले में अपने मुसलमान भाईयों से रहनुमाई हासिल की जिस में मुझे किसी मायूसी या शक का सामना न करना पड़ा।

प्रश्नः- आप के इस्लाम कुबूल करने पर आप के ख़ानदान और रिश्तेदारों का प्रभाव क्या था?

उत्तरः- जहाँ तक माँ बाप का संबंध है उन्हों ने मेरे इस्लाम कुबूल करने पर कोई ध्यान नहीं दिया उन्हों ने सोचा कि चीनी ज़ुबान सीखने की तरह यह भी मेरा बेकार शौक़ है जो वक़्त के साथ अपना उबाल खो देगा, मगर जब उन्हों ने देखा कि मेरे अक़ाइद ने आगे बढ़ कर मेरी ज़िन्दगी को बदलना शुरू कर दिया है और मेरी आदतें और समाजी तरीक़े में इंक़लाब (बदलाव) आ गया है तो वह बहुत घबराये और पछताये भी। मैं ने शराब और सुवर का गोश्त छोड़ा तो वह काफ़ी क्रोधित हुये उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं था कि मैं एक चादर में लिपटी हुई रहूँ और सिर पर हर समय दुपट्टा लिये रहूँ। असल में उन्हें फ़िक्र लोगों के चुपके चुपके बातें करने की थी वरना मेरे अक़ीदे और ईमान से उन का कोई संबंध नहीं था। इस के विपरीत मेरे जानने वाले अंग्रेज़ों का व्यवहार काफ़ी अलग था वह दलील के साथ बात चीत और बहस व मुबाहिसे से नहीं बिदक्ते थे और अक़ली तौर पर उन्हें कोई बात भी समझाई जाती, वह उसे कुबूल करने पर तयार थे। चुनाचे जब मैं इस्लाम के अक़ीदे और उस के समाजी नज़रियात

पर बात चीत करती तो वह इस्लाम की हिकमतों को मानते। मुझे याद है एक बार शादी की संख्या के बारे में इस्लामी नज़रिये पर बात हुई और मैं ने उस का मुक़ाबिला मौजूदा मग़रिबी सभ्यता के उन्हीं पहलुओं से किया तो मेरे दोस्तों ने माना कि शादी विवाह से संबंधित ज़िन्दगी की समस्याओं का बेहतरीन हल यही है जो इस्लाम ने पेश किया है।

प्रश्नः– क्या आप ने इस्लाम कुबूल करने के बाद कोई मुश्किल या उलझन महसूस की?

उत्तरः– बात यह है कि इंगलिस्तान के वह लोग जिन के पास सोच समझ नहीं है इस्लाम के बारे में सख़्त पक्षपात का व्यवहार इख़्तियार करते हैं और मुसलमानों का आम तौर से मज़ाक़ उड़ाते हैं यह हरकत वह मुँह पर न करते हों मगर पीठ पीछे इस्लाम वालों का मज़ाक़ उड़ाना उन का दिलपसंद काम है इस के विपरीत वह उन लोगों को कुछ नहीं कहते जो बेदीन हैं, बल्कि उन की "आज़ाद रवी" की वह जी भर कर तारीफ़ करते हैं। मेरे वतन के रहने वालों के इस आम व्यवहार के बावजूद कम से कम मेरे साथ यह मुआमला पेश नहीं आया उस की वजह यह थी कि मैं यूनीवर्सिटी में Oriental and African Studies की छात्रा थी और जिन लोगों से नया नया परिचय होता था वह आम तौर से धर्म और अक़ीदे से परिचित होते थे फिर भी मैं अच्छी तरह से जानती हूँ कि दूसरे मुसलमानों को किस क़िस्म के सुलूक का सामना करना पड़ता था।

प्रश्नः– आप का क्या ख़याल है क्या इस्लाम किसी तरीक़े से मौजूदा तहज़ीब (सभ्यता) पर प्रभाव डाल सकता है अगर आप का जवाब हाँ में है तो कैसे?

उत्तरः–आज का यूरोप अंधेरों में भटक रहा है यहाँ रोशनी की

कोई छोटी सी किरन भी नहीं जो रूह और ज़ात के इन अंधेरों में रहनुमाई कर सके। हर वह शख़्स जो यूरोप की सही सूरतेहाल को थोड़ा सा भी समझता है वह जानता है कि तरक़्क़ी की झूटी चमक दमक और बनावटी शान व शौकत के पीछे असल में हर तरह के दुख दर्द और बहुत ज़्यादा परेशानियाँ छुपी हुई हैं लोग परेशानियों से मुक्ति पाने का कोई ज़रिया चाहते हैं मगर उन्हें ऐसा कोई ज़रिया नहीं मिलता। इस सिलसिले में उन की सारी तलाश बेकार जा रही है अब उन के सामने एक ही रास्ता रह गया है और वह सीधा तबाही व बरबादी के जहन्नम की तरफ़ जाता है। इस्लाम जिस्म के तक़ाजों और रूह की ज़रूरतों के बीच जो बराबरी पैदा करता है, यूरोप में आज उस के लिये ज़बरदस्त कशिश पाई जाती है। इस्लाम मग़रिबी तहज़ीब (पच्छिमी सभ्यता) की सच्ची कामियाबी और सही निजात की तरफ़ रहनुमाई कर सकता है। यह मग़रिब के इन्सान को ज़िन्दगी के हक़ीक़ी मक़सद की समझ दे सकता है और उसे सिर्फ़ अल्लाह की मर्ज़ी के लिये कोशिश करने की तरग़ीब दे सकता है जो उस की दुनिया में कामियाबी के साथ साथ आख़िरत में निजात (मुक्ति) का ज़रिया बनेगी। अल्लाह हमें दुनिया व आख़िरत की कामियाबी अता फ़रमाये।

प्रश्नः- आप के ख़्याल में इस्लाम के प्रचार और उस को फैलाने के लिये कौन सा तरीक़ा बेहतर है?

उत्तरः- अग़यार (ग़ैरों) में इस्लाम का प्रचार और उस को फैलाने से पहले हमें अपनी ज़िन्दगी और कर्मों का हिसाब करना चाहिये उन आदर्शों को हासिल करना बेहद ज़रूरी है जो इस्लाम ने नियुक्त किये हैं। असल में यह फ़र्ज़ कर लिया गया है कि इस्लाम का प्रचारक बनने के बाद हमें किसी फ़िक्र की ज़रूरत नहीं हालाँकि यह ज़िम्मेदारी बहुत ही नाज़ुक और अहम है। इस्लाम के

बारे में पूरी जानकारी रखने के बाद ही हम अच्छे प्रचारक बन सकेंगे और हर तरह के एतराज़ात और प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे। इस में कोई शक नहीं कि इस सिलसिले में बहुत सी पुस्तकों को भी काफ़ी महत्व हासिल है और एक ग़ैर मुस्लिम ज़ुबानी बात चीत के मुक़ाबिले में पुस्तक पर ज़्यादा ध्यान दे सकता है लेकिन बदक़िस्मती से अंग्रेज़ी में इस्लाम पर अच्छी पुस्तकें बहुत कम हैं। फिर भी मैं कहूँगी कि एक जीती जागती ज़िन्दा मिसाल ही इस्लाम के प्रचार और उस को फैलाने के लिये मुफ़ीद रहेगी। अगर हम अपनी ज़िन्दगियों को लाज़िमी तौर से उसी साँचे में ढाल लें जो कुरआन चाहता है तो इस्लाम को फैलने से कोई ताक़त नहीं रोक सकेगी।

प्रश्नः– बरतानवी मुसलमानों को समाजी ज़िन्दगी में किन परेशानियों का सामना करना पड़ता है?

उत्तरः– जहाँ पूरे का पूरा ख़ानदान इस्लाम कुबूल कर लेता है वहाँ कोई मुश्किल पेश नहीं आती वह लोग इस्लाम को पूरी तरह इख़्तियार कर लेते हैं और शान्ति व सुकून की ज़िन्दगी गुज़ारते हैं। लेकिन जब कोई ग़ैर शादी शुदा लड़का या लड़की या शादी शुदा मर्द या औरत अकेले इस्लाम कुबूल करता है तो उसे बहुत सी परेशानियों का सामना करना पड़ता है उन्हें हर वक़्त यह एहसास परेशान करता है कि यह समाज और यह माहौल उन का अपना नहीं है उन्हें नमाज़ पढ़ने और रोज़ा रखने में बहुत ज़्यादा रुकावटों का सामना करना पड़ता है, ख़ुदा का शुक्र है मुस्लिम घराने इस सिलसिले में अपनी ज़िम्मेदारियों को निभा रहे हैं।

आख़िर में मैं इस्लामी मुल्कों के मज़बूत ख़ानदानी निज़ाम और साफ़ सुथरी समाजी ज़िन्दगी को मुबारकबाद पेश किये बग़ैर नहीं रह सकती, अगर हम उस का मुक़ाबिला यूरोप की समाजी

और ख़ानदानी बुराईयों से करें तो पता चलता है कि मुसलमान महान्ता की किन ऊँचाईयों पर पहुंचा हुआ है इस से अंदाज़ा होता है कि अगर हक़ीक़त में इस्लाम के समाजी क़ानून पर लोग अमल करने लगें तो रहमत व बरकत का क्या आलम होगा।

डॉक्टर फ़ारूक़ अहमद (भारत)

डॉक्टर फ़ारूक़ अहमद दक्षिणी भारत से संबंध रखते हैं और नानडेड नाम के एक शहर में जमाअते इस्लामी की फ़्री डिसपैन्सरी के इंचार्ज हैं। ख़ानदानी धर्म हिन्दू है। हाल ही में उन्हों ने इस्लाम के समाजी पहलू से प्रभावित हो कर इस्लाम कुबूल किया है। नीचे दिया गया इंटरवियू देहली से निकलने वाले अख़बार "दावत" तारीख़ 25 मार्च 1981 ई॰ में प्रकाशित हुआ है।

☆☆☆☆

प्रश्नः– डॉक्टर साहब आप का परिचय और इस्लाम कुबूल करने के कारण क्या हैं ?

उत्तरः– मेरा ख़ानदानी नाम डॉक्टर अनन्द रेडी था और धर्म हिन्दूमत। दक्षिणी भारत के शहर विशाखापटनम में पैदा हुआ। वहीं शिक्षा पाई, डॉक्टरी का कोर्स (G-C-I-M) किया और हैदराबाद में परैक्टिस शुरू की।

अमली ज़िन्दगी में आये ज़्यादा दिन नहीं गुज़रे थे कि एक दिन मेरे पास एक ऐसा मरीज़ आया जो बहुत दिनों से बीमार चला आ रहा था। मेरे बराबर इलाज और ध्यान से वह स्वस्थ हो गया और अक़ीदतमंदी व मुहब्बत से कहने लगा कि मैं उस के क़स्बे हिमायतनगर में आऊँ। इस की ज़िद ने शिद्दत इख़्तियार कर

ली। वह बराबर ख़ात लिखता रहा कि मैं हमेशा के लिये हिमायतनगर चला आऊँ। वह यक़ीन दिलाता था कि वहाँ मुझे हर तरह का सहयोग मिलेगा। उस की इस दलील में भी काफ़ी वज़न था कि हिमायतनगर में चूंकि कोई डिसपैन्सरी या डॉक्टर नहीं इस लिये मेरा वहाँ जाना इंसानी नुक़्त-ए-नज़र से भी ख़ास महत्व रखता है चुनाचे मेरे मरीज़ दोस्त की ज़िद आख़िरकार रंग लाई और मैं हिमायतनगर चला गया।

हिमायतनगर एक ऐसा क़स्बा है जिस में हिन्दू मुस्लिम दोनों रहते हैं। कुछ ही दिनों में मेरी परैक्टिस अच्छी ख़ासी चल निकली। दोस्त व साथियों में काफ़ी तादाद मुसलमानों की भी शामिल हो गई और मैं उन के समाजी व्यवस्था और तरीक़ों से बहुत प्रभावित हुआ।

सब से ज़्यादा जिस बात ने मुझे प्रभावित किया वह औरतों का पर्दा था। मुझे शुरू ही से हिन्दू औरतों की बेपर्दगी से नफ़रत होती थी और मैं मन्दिर में पूजा के लिये भी इस लिये नहीं जाता था कि वहाँ मर्द और औरतें एक साथ पूजा करती थीं और पवित्र जज़्बात के बजाये जिन्सी व कमीनगी के एहसासात छाये रहते थे। इसी वजह से मैं ने बीवी को भी कभी मन्दिर में नहीं जाने दिया।

दूसरी चीज़ जिस से मैं ने गहरा असर लिया वह रोज़े की इबादत है। मुसलमान रमज़ान में सुब्ह से शाम तक ख़ाली पेट रहते तो मैं उस के शारीरिक फ़वाइद के साथ-साथ उन असरात पर भी ग़ौर करता रहता जो पवित्रता और पाकीज़गी पर निर्भर होते हैं मैं ने इस का तजर्बा रोज़ा रख कर किया और ख़ुद महसूस किया कि इस से नेकी के जज़्बात किस तरह ज़ाहिर होते हैं यही हाल मेरी बीवी का था वह भी रमज़ान में कई रोज़े रखती और उन की बरकतों से लाभ उठाती।

तीसरी चीज़ जिस ने हमें इस्लाम के क़रीब किया वह उर्दू ज़ुबान थी। हमारी मादरी ज़ुबान तेलगू थी मगर हिमायतनगर में आये और यहाँ हम ने 15 वर्ष का लम्बा समय गुज़ारा तो हमारे बच्चे उर्दू सीख गये। वह हर वक़्त उर्दू में बातें करते और तेलगू को बिल्कुल पसंद न करते। हम मियाँ बीवी बहुत फ़िक्रमंद हुये कि हमारी सारी बिरादरी तेलगू ज़ुबान बोलती है मगर बच्चियों और बच्चों में से किसी को यह ज़ुबान पसंद नहीं है और वह उर्दू ही को महबूब जानते हैं। फिर इन की शादियों का क्या बनेगा और इन के भविष्य का क्या होगा? सोच सोच कर हम ने फ़ैसला किया कि हमें हिमायतनगर को छोड़ कर वापस अपने शह्र चले जाना चाहिये। वहाँ हमारी ज़मीन भी थी और अज़ीज़ रिश्तेदार भी।

हिमायतनगर में रहते हुये हमें 15 साल बीत गये थे। चुनाचे उस क़स्बे को छोड़ते हुये वहाँ के लोगों ने जिस परेशानी और ख़ुलूस व मुहब्बत का इज़हार किया वह देखने के क़ाबिल था। वह दूर तक हमें छोड़ने आये। उन के बहते हुये आँसू साफ़ बता रहे थे कि हमारी जुदाई उन पर भारी गुज़रेगी। हम भी रो रहे थे मगर यह फ़ैसला हम ने मजबूरी में किया था।

जब हम विशाखापटनम वापस आये और अपने उन रिश्तेदारों से जो हमारी ज़मीन में खेती कर रहे थे, ज़मीन वापस माँगी तो जैसे उन की नज़रें ही बदल गईं। नफ़रत और दुश्मनी उन के एक-एक काम से ज़ाहिर होने लगी। अपने बाप दादा की यह ज़मीन और जन्म भूमि हमें ज़हर लगने लगी। यहाँ ज़िन्दगी गुज़ारना दूभर हो गया, रह-रह कर हिमायतनगर के लोगों की अपनाईयत और मुहब्बत याद आने लगी। नतीजा यह हुआ कि थोड़े ही दिनों के बाद हम ने दोबारा बोरिया बिस्तर समेटा और विशाखापटनम को हमेशा के लिये छोड़ कर हिमायतनगर लौट आये।

यहाँ के लोगों ने हमें हाथों हाथ लिया। उन की ख़ुशी की कोई इन्तिहा न थी। प्रैक्टिस पहले से भी ज़्यादा चलने लगी और वह तलख़ियाँ (कड़वाहटें) जो अपने आबाई (पुश्तैनी) शह्र के अज़ीज़ रिश्तेदारों के हाथों मिली थीं काफ़ी हद तक ख़त्म हो गईं।

हिमायतनगर में हमें मुहब्बत का जो माहौल मिला था, उस में ज़्यादातर हिस्सा मुसलमानों की तरफ़ से था। यूँ भी मैं इस्लामी ज़िन्दगी से बहुत प्रभावित हुआ था। बच्चों की दोस्तियाँ भी मुसलमानों ही से थीं और वह मुसलमानों की ज़ुबान उर्दू बोलते थे। इस लिये मैं ने फ़ैसला किया कि हमें मुसलमान हो जाना चाहिये। बीवी से ज़िक्र किया तो उस ने भी ख़ुशदिली से मेरी बात मानी और बच्चों को तो जैसे उन की मंज़िले मक़सूद मिल रही थी। चुनाचे मेरे सारे घराने ने निहायत जोश व ख़रोश से मगर लम्बे ग़ौर व फ़िक्र के बाद आख़िरकार इस्लाम कुबूल कर लिया।

प्रश्नः– इस्लाम कुबूल करने के बाद आम लोगों का व्यवहार आप के साथ कैसा था?

उत्तरः– व्यवहार बड़ा अजीब था। हिन्दुओं में तो नाराज़गी बल्कि क्रोध की लहर तो उठनी ही थी मगर मुसलमान भाई भी खिचे-खिचे रहने लगे। शायद इस लिये कि कहीं मेरी इस हरकत से मुस्लिम कश फ़सादात न शुरू हो जायें। नतीजा यह हुआ कि बाईकाट की सी सूरतेहाल पैदा हो गई और मेरी परैक्टिस बुरी तरह प्रभावित हुई मगर अल्लाह का शुक्र है कि उस ने हमें सब्र दिया और हम उस के दीन पर मज़बूती से डटे रहे।

प्रश्नः– इस्लाम कुबूल करने के बाद आप ने इस्लाम को पूरा-पूरा समझने के लिये कौन-कौन सी पुस्तकों का अध्ययन किया?

उत्तरः– सब से पहली परेशानी मेरे लिये नमाज़ में अरबी सूरतों का पढ़ना था। मैं उर्दू और अरबी से बिल्कुल परिचित न था इस

लिये कुरआनी आयात आसानी से ज़ुबान पर न चढ़ती थीं। इस मुश्किल का ज़िक्र मैं ने अपने एक मुसलमान दोस्त से किया। उन्हों ने मेरा परिचय एक मुसलमान अध्यापक असद साहब से कराया जो एक गावँ में स्कूल मास्टर हैं। उन्हों ने मुझे नमाज़ की एक ऐसी पुस्तक ला दी जिस का अरबी उचारण (तलफ़्फ़ुज़) तेलगू में था और साथ ही साथ तेलगू और अंग्रेज़ी ज़ुबान में अनुवाद भी था। उस से मैं ने अरबी सूरतों को आसानी से याद कर लिया। मैं ने कुरआन का अध्ययन भी शुरू कर दिया जिस का अरबी मतन तेलगू ज़ुबान में था। कुरआन के बराबर अध्ययन ने मुझे ऐसा ज़ेहनी सुकून बख़्शा जिस की लज़्ज़त नाक़ाबिले बयान है। मैं ने जमाअते इस्लामी के लिटरेचर और मौलाना मौदूदी की पुस्तकों का अध्ययन भी किया जिस से मुझे इस्लाम को समझने में बहुत आसानी हुई। मेरी बीवी ने भी इस लिटरेचर का अध्ययन किया। अल्लाह के फ़ज़्ल से दीन के ज्ञान ने हमारे दिलों को रोशन किया। यह उसी का करम है कि इस्लाम कुबूल करने के बाद से आज तक हमारी कोई नमाज़ क़ज़ा नहीं हुई। मेरे ऐसे मुसलमान दोस्त जो बदक़िस्मती से नमाज़ नहीं पढ़ते, मिलने आते हैं और नमाज़ का वक़्त हो जाता है तो मैं मजबूरी बयान करता हूँ कि नमाज़ की वजह से मैं ज़्यादा वक़्त नहीं दे सकता और उन्हें नमाज़ के बाद तक इन्तिज़ार का कह कर मस्जिद में चला जाता हूँ तो उन पर ख़ास तौर से प्रभाव होता है कितने ही लोग हैं जो मेरे इस व्यवहार की वजह से पक्के नमाज़ी हो गये।

प्रश्नः– इस्लाम कुबूल करने के बाद आप ने इस्लाम से पहले की ज़िन्दगी और इस वक़्त की ज़िन्दगी में क्या फ़र्क़ महसूस किया?

उत्तरः– इस्लाम कुबूल करने के बाद मैं ने मौजूदा ज़िन्दगी में सब से पहले दिली सुकून महसूस किया और सुकून की वह ख़ुशी पाई जो पहले मुझे कभी नसीब न हुई थी। ज़्यादा कमाने और

दौलत जमा करने के जिस लालच ने मुझे बेइतमीनानी से दोचार किया था, जाती रही। अब निस्पृहता (क़नाअत) को मैं ने बहुत बड़ी नेमत पाया है और उस पर मैं अल्लाह तआला का जितना भी शुक्र करूँ, कम है।

प्रश्नः– मुसलमान बिरादरी के लिये आप का कोई संदेश ?

उत्तरः– मैं सिर्फ़ इतना कहूँगा कि हम सब को इस्लाम का अमली नमूना बन जाना चाहिए। इस माडर्न दौर में ग़ैर मुस्लिम सिर्फ़ मुसलमान के अमल को देख कर ही इस्लाम को समझ सकता है जैसा कि इस्लाम कुबूल करने से पहले ख़ुद मेरा तअस्सुर यही था। अगर हर मुसलमान कुरआन का अमली नमूना बन जाये तो दुनिया इस्लाम की नेमत से माला माल हो जाए। अपने मुसलमान भाईयों के लिये बस यही मेरा पैग़ाम (संदेश) है। अल्लाह तआला हम सब को कुरआन का अमली नमूना बनने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये। आमीन

यूसुफ़ इस्लाम (इंगलिस्तान)

(Cat Stevens)

यह विषय माहनामा "अल-हक़" (अकोड़ा ख़टक) के नवम्बर 1982 ई० के शुमारे में प्रकाशित हुआ है। इसे बशीर महमूद अख़्तर साहब ने तरतीब दिया है।

★★★★

मुझे एक तर्बियती कोर्स के सिलसिले में अप्रेल से जूलाई तक लन्दन में रहने का मौक़ा मिला। एक दिन इस्लामी पुस्तकों की एक दुकान पर जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ। वहाँ एक छोटी सी पुस्तक Islam my Religion (इस्लाम मेरा दीन) पर नज़र पड़ी। ग्रंथकार का नाम कैट स्टेवेन्ज़ (Cat Stevens) लिखा था। और अन्दर के पन्ने पर वज़ाहत की गई थी कि यह साहब बरतानिया के मशहूर मौसीक़ार और पापसिंगर रहे हैं, अब उन्हों ने इस्लाम क़ुबूल कर लिया है। और यूसुफ़ इस्लाम के नाम से पुकारे जाते हैं। मैं ने यह पुस्तक ख़रीद ली और उसे शौक़ से पढ़ा। यह असल में यूसुफ़ इस्लाम का एक इंटरवियू था जो मार्च 1980 ई० में लिया गया था। आप भी पढ़िये।

प्रश्नः– मेरा पहला प्रश्न यह है कि आप को इस्लाम के बारे में जानकारी कैसे हासिल हुई ?

उत्तरः– इस्लाम के बारे में मुझे सब से पहले अपने भाई डेविड के ज़रिये जानकारी हासिल हुई। पाँच साल पहले उन्हों ने यरोशलम का सफ़र किया था वहाँ उन्हों ने जिन पवित्र जगहों की ज़ियारत की, उन में एक मस्जिदे-अक़सा भी थी। उस से पहले वह कभी किसी मस्जिद के अन्दर दाख़िल नहीं हुये थे, यहाँ का माहौल मसीही गिर्जों और यहूदियों के इबादतख़ानों से इतना अलग था कि उन्हों ने अपने आप से सवाल किया कि यह इस्लाम धर्म ईसाईयत की तरह पुरअसरार क्यों नहीं है? वह मुसलमानों के व्यवहार और सुकून पहुंचाने वाली इबादत के तरीक़े से बहुत प्रभावित हुये। इंगलिस्तान वापस पहुंचते ही उन्हों ने कुरआन मजीद का एक नुस्ख़ा ख़रीदा और ला कर मुझे दिया क्यों कि वह जानते थे कि मैं रहनुमाई का मुहताज था। (अलहमदु लिल्लाह)

प्रश्नः– जब आप ने कुरआन का अध्ययन किया तो आप को किस चीज़ ने सब से ज़्यादा प्रभावित किया?

उत्तरः– यह एक अलग क़िस्म का संदेश था, मैं हैरान था कि शब्द सब के सब जाने पहचाने से थे लेकिन हर उस चीज़ से बिल्कुल अलग थे जिस का मैं पहले अध्ययन कर चुका था, वह बहुत सादा और साफ़ थे। इस मरहले तक ज़िन्दगी का मक़सद मेरे लिये एक छुपे हुये राज़ की हैसियत रखता था, हमेशा मुझे इस बात पर यक़ीन रहा कि ज़िन्दगी की इस तसवीरकशी के पीछे एक ज़बरदस्त हस्ती का हाथ है, लेकिन वह अनदेखी हस्ती कौन है इस का पता न चलता था। मैं इस से पहले बहुत से रूहानी रास्तों को तैय कर चुका था, लेकिन सुकून की प्यास कहीं नहीं बुझी। मैं एक ऐसी नाव की तरह था जो पतवार और खेवनहार (मल्लाह) के बग़ैर चली जा रही थी और जिस की कोई मंज़िल न थी। लेकिन जब मैं ने कुरआन का अध्ययन शुरू किया तो मुझे एहसास हुआ कि मैं इस के लिये और यह मेरे लिये पैदा किया

गया है, मैं डेढ़ साल से ज़्यादा समय तक उस का बार-बार अध्ययन करता रहा, उस बीच मेरी मुलाक़ात किसी भी मुसलमान से नहीं हुई।

मैं कुरआन के संदेश में पूरी तरह डूब चुका था, मैं जानता था कि अब जल्द ही या तो मुझे पूरी तरह ईमान ले आना होगा या फिर अपनी ही राह पर चलते चलते मौसीक़ी की दुनिया में खोये रहना होगा। यह मेरी ज़िन्दगी का सब से मुश्किल क़दम था। एक दिन मुझे किसी ने बताया कि लन्दन में एक नई मस्जिद बनी हुई है, बस अब मेरे लिये अपना धर्म क़ुबूल करने का वक़्त आ पहुंचा था। 1977 ई० के सर्दी के मोसम की बात है कि एक दिन जुमे में मस्जिद की तरफ़ चल खड़ा हुआ, जुमा की नमाज़ के बाद मैं इमाम साहब के पास पहुंचा, और उन्हें बताया कि मैं इस्लाम कुबूल करने के लिये हाज़िर हुआ हूँ, मुस्लिम बिरादरी से यह मेरा पहला संबंध था।

प्रश्नः– अब आप मुसलमान हैं, मुसलमानों के बारे में आप के क्या विचार हैं?

उत्तरः– मेरा ख़याल है कि बहुत सारे मुसलमान अपना रास्ता खो बैठे हैं क्योंकि उन्हों ने सही तौर पर कुरआन का अध्ययन नहीं किया, यह तो शिक्षा का जौहर है और जो लोग इसे समझना चाहते हैं उन के लिये सच्ची हिदायत देने वाला है। मेरा ईमान है कि इस्लाम असल में सिर्फ़ एक ही है, यानी अल्लाह की उपासना करना और उस के रसूल (सल०) का आज्ञापालन करना मेरे नज़दीक जन्नत का यही एक सुरक्षित रास्ता है। हमें सच और झूट में फ़र्क़ करना चाहिये, इस के लिये हमें अपने ज्ञान में बढ़ोतरी करनी चाहिये और सीधे रास्ते पर चलने वालों की संगति इख़्तियार करनी चाहिये।

मालूम होता है कि अल्लाह तआला ने इल्म (ज्ञान) के ख़ज़ाने की बेशुमार कुंजियाँ दुनिया में फैला कर उसे सुरक्षित कर दिया है, हम मुसलमानों को सिर्फ़ आपस में क़रीब आने की ज़रूरत है ताकि इस्लाम के हक़ होने की ज़्यादा समझ हासिल हो सके। तमाम मुसलमान एक ख़ुदा, एक कुरआन और एक रसूल मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर ईमान रखते हैं। उस के बाद हर शख़्स अपनी पसंद के मुताबिक़ अपना रास्ता नियुक्त करता है, आख़िरत में हर कोई अपने ही कर्मों का ज़िम्मेदार ठहरेगा।

प्रश्नः– आप के लिये यह कितनी मुश्किल बात हुई होगी कि अचानक वह बहुत सारी बातें छोड़नी पड़ीं जिन के आप आदी हो चुके थे?

उत्तरः– यह मुश्किल नहीं था क्योंकि मैं बहुत अच्छी तरह जानता था कि इन बुराईयों को छोड़ देना ही बेहतर है, यह बुराईयाँ असल में मुझे तबाह कर रही थीं, जैसें शराब पीना, सिगरेट पीना, और सूद खाना वग़ैरा। लेकिन अपने पुराने दोस्तों से संबंध तोड़ना मेरे लिये सब से ज़्यादा मुश्किल साबित हुआ, मैं यह बात नहीं समझ सका कि वह लोग इस्लाम के संदेश को क्यों नहीं समझ सके, जहाँ तक मुझ से हो सका मैं उन से दोस्ती निभाता चला गया, लेकिन एक ऐसा वक़्त भी आया जब अपने धर्म के लिये मैं ने यह फ़ैसला कर लिया कि अपने गुज़रे हुये दिनों और इस्लाम के बीच मुझे एक लकीर खींचनी होगी इस के लिये मुझे कई आज़माईशों से गुज़रना पड़ा, मिसाल के तौर पर जब मैं ग़ैर मुस्लिमों के बीच होता तो उन से मजबूरी बता कर चुप्के से नमाज़ के लिये निकल जाता, मैं उन्हें यह न बताता कि मैं कहाँ जा रहा हूँ क्योंकि यह उन के लिये एक अजीब सी बात होती। फिर एक दिन मैं ने फ़ैसला कर लिया कि अब मैं सब को

बता दूँगा कि मैं नमाज़ पढ़ने के लिये जा रहा हूँ, चुनाचे सब की समझ में मेरी बात आ गई और उस के लिये वह मेरी इज़्ज़त करने लगे। जब आप अपनी बात पर डट जायें, और अपना फ़र्ज़ अदा करते चले जायें तो अल्लाह उस में आसानी पैदा कर देता है। उस के बाद मुझे कोई ख़ास परेशानी पेश नहीं आई।

प्रश्नः– आप अपने गुज़रे हुये दिनों के बारे में कुछ बतायेंगे?

उत्तरः– मैं 15 वर्ष का था जब मुझे मौसीक़ी से बहुत दिलचस्पी पैदा हो गई, मेरे पिता जी मेरे लिये एक छतारा (गिटार) ले आये, और में ने अपने गीत लिखने शुरू कर दिये मैं ने कैट स्टीवेन्ज़ (Cat Stevens) का नाम पसन्द किया। 18 वर्ष की उम्र में मेरा पहला रिकार्ड बहुत मशहूर हुआ, मैं बहुत कामियाब हुआ और मेरे गानों के रिकार्ड पूरे यूरोप में बिकने लगे, लेकिन यह शो बिज़िनेस मुझे पसन्द न आया मैं ने बहुत ज़्यादा शराब और सिगरेट पीना शुरू कर दिया, इस लिये मैं दिक़ का रोगी हो गया, उस से मेरा यह कमाई का ज़रिया ख़त्म हो गया और मुझे कुछ महीने अस्पताल रहना पड़ा, उस बीच मैं ने मश्रिक़ी फ़लसफ़े का अध्ययन शुरू किया, मेरे पास एक पुस्तक थी जिस का नाम (The Secret Path) (छुपा हुआ रास्ता) था यही पुस्तक रूहानी मुआमलात से मेरा पहला परिचय साबित हुई, उसी के ज़रिये मैं सुकून व इतमीनान की तलाश के लम्बे सफ़र पर रवाना हुआ, उस सफ़र ने मुझे इस्लाम के दरवाज़े पर पहुंचा दिया। मैं ने ऐसे गीत लिखने शुरू किये, जिन में इस रूहानी बेदारी का इज़्हार होता था, चुनाचे मेरे यह गीत मेरी गुज़री हुई दास्तान बनते चले गये।

मैं 21 वर्ष का था जब मुझे पहली बार एक विश्वव्यापी कामियाबी मिली मेरे उन गीतों का सिलसिला Tea For Tillerman के नाम से मशहूर हुआ। और इस तरह मेरी गिन्ती ऊँचे फ़नकारों

में होने लगी, मैं सोचता हूँ कि एक लिहाज़ से मेरे गानों के सिलसिले मेरी अगली मंज़िल और मेरे सफ़र के विभिन्न मरहले साबित हुये।

प्रश्नः– तो क्या अब आप ने मौसीक़ी से संबंध तोड़ लिया है?

उत्तरः– मैं ने मौसीक़ी से अपने संबंध तोड़ लिये हैं मुझे ख़तरा था कि यह काम मुझे सीधे रास्ते से भटका न दें, मेरा यह कहना शायद बड़ा बोल न समझा जायेगा कि अब मैं कभी मौसीक़ी का काम न करूँगा, लेकिन इस के साथ इन्शाअल्लाह के बग़ैर बात पूरी नहीं हो सकती।

प्रश्नः– तो अब आप क्या व्यवसाय (धंदा) इख़्तियार करेंगे?

उत्तरः– मैं असल में सिर्फ़ अल्लाह का काम कर रहा हूँ वही मेरी मदद कर रहा है और उस ने ऐसा इन्तिज़ाम फ़रमा दिया है कि मैं अपना काम जारी रख सकूँ। मेरी ख़्वाहिश है कि मैं बरतानिया में इस्लाम का प्रचार कर सकूँ, इस के लिये चाहे मुझे कुछ भी करना पड़े और किसी भी हैसियत से यह काम करना पड़े। इस्लामी बिरादरी दिन बदिन मज़बूत हो रही है। इस समय मेरा काम अरबी ज़ुबान का सीखना है, मेरी बड़ी आरज़ू है कि मैं कुरआन को समझ सकूँ, बहुत सारे मुसलमान अरबी पढ़ सकते हैं और उन के लिये यह कोई ख़ास बात नहीं है। लेकिन अभी मुझे कुरआन को समझना है, कुरआन मजीद की हर आयत पूरी तरह से मुकम्मल हिदायत है और ख़ुद एक बाब (विषय) का दर्जा रखती है। मुझे अकसर यह देख कर बड़ा अफ़सोस होता है कि लोग कुरआन का मुनासिब एहतराम (आदर व सम्मान) नहीं करते और उसे मामूली बात समझते हैं। यह अल्लाह तआला का कलाम है और सब ज़मानों के लिये काम में आने वाला है। यह हर सच्चे दीनदार के लिये एक मरकज़ (केन्द्र) की हैसियत रखने वाला है।

प्रश्नः– बरतानिया के ग़ैर मुस्लिमों में दीन का प्रचार करने के बारे में आप का क्या ख़याल है?

उत्तरः– इस सिलसिले में हमें एहतियात बरतनी चाहिये और ईसाईयों का तरीक़ा नहीं इख़्तियार करना चाहिये। यह हम सब की एक बड़ी ज़िम्मेदारी है। इस्लाम का संदेश सिर्फ़ ज़ुबान से ही नहीं फैलाना चाहिये। पहले तो आप इस बात को यक़ीनी बनायें कि आप के अपने कार्य ठीक हैं, फिर सादा और साफ़ तरीक़े से इतनी ख़ुशख़बरी सुनायें कि *"कुल हुवल्लाहु अहद"* (कहिये कि वह अल्लाह एक है) इस बात की कोशिश न करें कि इस्लाम का पूरा संदेश एक ही बार में सुना दिया जाये।

जब नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हज़रत मआज़ (रज़ि०) को मदीना भेजा तो उन से फ़रमाया कि तुम उन लोगों की तरफ़ जा रहे हो जिन को किताब दी गई है, इस लिये उन्हें सब से पहले तौहीद (अल्लाह के एक होने) की दावत देना, जब यह बात उन की समझ में आ जाये तो उन्हें बताना कि अल्लाह ने दिन और रात में पाँच नमाज़ें पढ़ने का हुक्म फ़रमाया है, अगर वह नमाज़ें पढ़ने लगें तो उन्हें बताना कि अल्लाह तआला ने तुम्हें अपनी जायदादों (समपत्ती) में से ज़कात देने का हुक्म दिया है, यह ज़कात उन में से मालदार लोग देंगे और ग़रीबों में बाँटी जायेगी और अगर वह इस पर राज़ी हो जायें तो उन से ज़कात वुसूल कर लेना, लेकिन लोगों की बेहतरीन जायदादों से नहीं लेना।

एक मुसलमान को पहले तो अच्छे अख़लाक़ वाला, कृपालू और आवभगत करने वाला होना चाहिये कि यह अच्छाईयाँ ख़ुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम में मौजूद थीं।

हज़रत आयशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं:

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की ज़िन्दगी बिल्कुल कुरआन की शिक्षाओं के मुताबिक़ गुज़रती थी। यही बुनियादी बात है। कुरआन को सिर्फ़ पढ़ लेना ही काफ़ी नहीं, अल्लाह तआला के आदेश इन्सान की तकमील के लिये लागू किये गये और कुरआन में वही आदेश जमा हैं। आप उसे सिर्फ़ ज़ुबानी प्रचार व बयान के लिये इस्तेमाल नहीं कर सकते बल्कि उस के मुताबिक़ अमल करना बहुत ज़रूरी है। इस से मुराद यह है कि बातें कम करें और अमल ज़्यादा करें। यह बात हमेशा याद रखें कि अल्लाह तआला के करम से ही किसी शख़्स को इस्लाम कुबूल करने की तौफ़ीक़ मिलती है।

यूसुफ़ इस्लाम का यह इंटरवियू पढ़ कर मैं बहुत प्रभावित हुआ, और उन के बारे में और ज़्यादा जानकारी हासिल करने का शौक़ पैदा हुआ। पूछने पर मालूम हुआ कि यह साहब लन्दन ही में रहते हैं और उन्हों ने धर्म के प्रचार के लिये अपना एक गिरोह बना रखा है। थोड़े ही दिनों बाद यह ख़बर सुनने को मिली कि यह साहब 28 मई 1982 ई० को (School of oriental and African Studies) के असम्बली हाल में जुमा की नमाज़ के बाद ख़िताब फ़रमायेंगे।

इस ख़बर से मुझे बहुत ख़ुशी हुई। चुनाचे मैं और मेरे एक साथी प्रोग्राम के मुताबिक़ वहाँ पहुंच गये उस दिन असम्बली हाल के एक हिस्से में इस्लामी पुस्तकों की नुमाईश भी हो रही थी। एक नज़र उन पुस्तकों पर भी डाली लेकिन निगाहें यूसुफ़ इस्लाम की तलाश में थीं।

नमाज़ से पहले एक साहब ने ख़ालिस अरबी अंदाज़ में अज़ान दी जो बड़ा असर कर देने वाली थी। यह साहब लम्बा सफ़ेद कुर्ता पहने थे सिर पर छोटी सी पगड़ी, ख़ूबसूरत दाढ़ी,

और ख़ूबसूरत मूंछें, लाल व सफ़ेद रंग, जवानी का आलम, चेहरे पर इतमीनान और आँखों में कशिश, बाद में मालूम हुआ कि यही यूसुफ़ इस्लाम हैं।

नमाज़ से फ़ारिग़ होते ही, जाये नमाज़, चादरें वग़ैरा समेट दी गई, हाल की कुर्सियाँ तरतीब से लगा दी गई। सभा की शुरूआत हुई, यूसुफ़ इस्लाम की तक़रीर शुरू हुई, मैं बड़ी चाहत और ध्यान से तक़रीर सुन रहा था, नज़रें तक़रीर करने वाले के चेहरे पर जमी थीं। रात को वह सारी तक़रीर याद कर के उर्दू में लिख ली, आप पढ़िये:

यूसुफ़ इस्लाम की तक़रीरः– जुमा का दिन बड़ा मुबारक होता है उस दिन मुसलमान जमा हो कर जुमा की नमाज़ अदा करते हैं नमाज़ तो वह दिन में पाँच बार पढ़ते हैं लेकिन उस दिन का इजतिमाअ (सम्मेलन) अपनी एक ख़ास अहमियत और ख़ुसूसियत रखता है। मेरे लिये यह दिन और भी अहमियत रखता है कि मैं ने जुमे के दिन ही रेजेन्ट पार्क की मस्जिद में जा कर इस्लाम कुबूल किया था और अपने भाईयों के साथ मिल कर पहली बार नमाज़ अदा की थी।

मैं ने इस्लाम क्यों कुबूल किया? यह क़िस्सा इस तरह से है एक पापसिंगर की हैसियत से मैं बहुत ज़्यादा मशहूर हो चुका था मेरे कई गाने बहुत पसन्द किये गये थे और लोगों की ज़ुबानों पर चढ़ गये थे। मुझे अपनी शोहरत और काम बाक़ी रखने के लिये बड़ी मेहनत से काम करना पड़ता था, उस के नतीजे में शोहरत के साथ साथ दौलत ने भी मेरे पावँ चूमे। मुझे दुनिया की हर नेमत हासिल थी, हर वह चीज़ मेरे पास थी जिस की मैं ख़ुवाहिश करता था। लेकिन कभी कभी मैं सोचता कि क्या दौलत ही ज़िन्दगी का असल मक़सद है क्या यही कामियाबी है? सब कुछ होते हुये भी मेरे दिल में बेइतमीनानी की चुभन महसूस हुआ

करती थी, मैं ने दुनिया के सब मज़े लूटे लेकिन ज़िन्दगी को कहीं भी सुकून व इतमीनान हासिल न हो सका। मैं ने शराब पीना शुरू कर दी कि शायद इस में सुकून मिल जाये, लेकिन इस से मेरी सेहत बहुत ज़्यादा प्रभावित हुई, मैं टीबी का शिकार हो गया और कुछ महीनों तक अस्पताल में रहना पड़ा।

मैं एक कैथोलिक ईसाई था और कभी कभी सोचता था कि क्या ज़िन्दगी की सुन्दरता और ऐश व आराम में मशग़ूल रहना और हफ़्ते के छः दिन दुनिया के धंदों में इस तरह से मशग़ूल रहने की पूर्ती सिर्फ़ रवीवार को गिरजा की हाज़िरी से हो जाती है? इस तरह की माद्दापरस्ताना दुनियादारी और हमारे धर्म की इच्छाओं का एक दूसरे से क्या संबंध है? ऐसी बातों पर ग़ौर कर के मैं बड़ा परेशान हो जाता, और मुझे कहीं से अपने उभरते हुये प्रश्नों का उत्तर न मिलता। मैं ने दिल की संतुष्टी के लिये हर रास्ता अपनाया, लेकिन थोड़ी दूर चल कर एहसास हो गया कि यह रास्ता मंज़िल तक नहीं पहुंचा सकता।

मैं बचपन ही से एक फ़नकार बनने के ख़्वाब देखा करता था, चुनाचे एक गुलूकार बनने के लिये मैं ने बड़ी मेहनत की। फिर मुझे एक डान्सर बनने की सूझी। इन चीज़ों में मशग़ूल रहने के साथ साथ मेरी रूहानी तलाश का सफ़र शुरू हो चुका था और मैं समझता हूँ कि अपनी उम्र के 19वीं वर्ष जबकि मैं बहुत ज़्यादा प्रसिद्ध हो चुका था मुझे एक ज़ेहनी परेशानी का एहसास हुआ। मैं माद्दी चीज़ों में खो चुका था लेकिन कभी कभी वह सब कुझ मुझे बेअसल और बेकार मालूम होने लगता था। एक बार तो सुकून की तलाश में मैं ने बुद्धमत को अपनाने का फ़ैसला कर लिया लेकिन उस के अध्ययन से पता चला कि भिकशू की ज़िन्दगी एक आम शख़्स की ज़िन्दगी से बिल्कुल अलग है, फिर वह ज़िन्दगी भी क्या हुई कि आप सब कुछ छोड़ छाड़ कर और सब से संबंध

तोड़ कर जंगल व सेहरा का रास्ता ले लें और ज़िन्दगी की कोई मशग़ूलियत बाक़ी न रहे।

मेरी उम्र अब 25 वर्ष के लगभग हो गई और काम आदत के मुताबिक़ हो रहा था। उन्हीं दिनों मेरे बड़े भाई डेविड को यरोशलम जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ। यह एक ऐसा सफ़र था जिस का एक मक़सद पवित्र जगहों की ज़ियारत करना भी था। शायद वह वहाँ जा कर देखना चाहते थे कि हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम कहाँ पैदा हुये, उन्हों ने अपनी ज़िन्दगी के दिन कहाँ कहाँ गुज़ारे और किन किन जगहों पर धर्म के प्रचार का काम अनजाम दिया। शायद वह दिल के इतमीनान के लिये वहाँ गये थे, लेकिन मालूम होता था कि उन्हें वहाँ कुछ नहीं मिला।

एक दिन वह घूमते फिरते मस्जिदे-अक़सा में जा निकले, वह उस की ख़ूबसूरती से बहुत ज़्यादा प्रभावित हुये और वहाँ एक ख़ास क़िस्म का रूहानी (मानसिक) सुकून महसूस किया। यहूदी और मसीही इबादत की जगहों के विपरीत यहाँ उन को एक अलग तजर्बा हुआ। मस्जिद में नमाज़ियों के सजदा करने को देख कर जो सुकून हासिल होता था वह कहीं और दिखाई न दिया था। वह इस से पहले कभी क़िसी मस्जिद के अन्दर नहीं गये थे। उन्हों ने देखा कि यहाँ कोई भेद नहीं, हर चीज़ ज़ाहिर और खुली है। बहरहाल उन्हों ने इंगलिस्तान पहुंचते ही क़ुरआन शरीफ़ का एक अंग्रेज़ी अनुवाद ख़रीद लिया, उन्हों ने शायद उस का थोड़ा बहुत अध्ययन भी किया। इस से पहले उन्हों ने शायद मुझे कोई पुस्तक तोहफ़े में नहीं दी थी लेकिन उन्हों ने यह अंग्रेज़ी अनुवाद तोहफ़े के तौर पर मुझे दिया शायद यह सोच कर कि मुझ परेशान दिल वाले को हिदायत (अनुदेश) की ज़्यादा ज़रूरत थी।

अल्लाह का लाख लाख शुक्र है कि मैं ने क़ुरआन शरीफ़ का अध्ययन शुरू किया, जैसे जैसे मैं आगे बढ़ता गया निराशा और

उदासी का पर्दा खुलता चला गया। धीरे धीरे ज़िन्दगी का एक साफ़ अर्थ मेरी समझ में आने लगा। ज़िन्दगी की रोशनी मुझ पर ज़ाहिर होने लगी और हक़ीक़त सामने आने लगी। धीरे धीरे मेरे अन्दर अपने आस पास के माहौल और अपने दोस्तों से उकताहट (बेज़ारी) पैदा होने लगी और उन से अलग होता चला गया। इस सिलसिले में मुझे बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ा। मैं अपने अन्दर जो परिवर्तन (तबदीली) महसूस कर रहा था उस का इज़हार मेरे गीतों में भी होने लगा।

कुरआन शरीफ़ के अध्ययन से मुझ पर यह हक़ीक़त खुल गई कि मैं जो ज़िन्दगी का मुकम्मल (संपूर्ण) क़ानून तलाश कर रहा था और जिस हक़ीक़त को हासिल करने के लिये भटक्ता फिर रहा था वह इस्लाम के रास्ते पर चलने ही से हासिल हो सकती है। शक के सारे काँटे निकल चुके थे और ईमान के ताज़ा फूल खिलने लगे थे। मैं कोई डेढ़ साल तक कुरआन शरीफ़ को बार बार पढ़ता रहा और सोचता रहा कि शायद मैं इसी के लिये पैदा किया गया हूँ और यह मेरे लिये पैदा किया गया है। मैं अब तक किसी मुसलमान से नहीं मिला, लेकिन मुझे एहसास होने लगा कि मुझे जल्द ही या तो मुकम्मल तौर पर ईमान ले आना होगा या मौसीक़ी के धंदे में ही फंसे रहना होगा, यह वक़्त मेरे लिये बड़ा कठिन था।

एक दिन किसी ने लन्दन की एक नई मस्जिद का ज़िक्र किया। दीन को कुबूल करने का मौक़ा आ पहुंचा था। 1977 ई० का सर्दी का मौसम था कि एक जुमे के दिन मेरे क़दम मस्जिद की ओर उठने लगे, जुमे की नमाज़ के बाद मैं ने इस्लाम कुबूल करने का एलान किया और इस तरह मुसलमानों से मेरा पहला संबंध क़ायम हुआ।

मुझे कुरआन शरीफ़ में हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम भी नज़र आये जिन की अपनी एक शख़सियत थी और जिन का अपना एक संदेश था, वास्तव में वह अल्लाह के नेक बन्दे और रसूल थे, उन की सिर्फ़ एक ही तस्वीर उभरती है, और वह एक इन्सानी तस्वीर है। दुनिया के विभिन्न गिरजा घरों में हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम की बनी हुई तस्वीरें और मूर्तियाँ एक दूसरे से अलग हैं वह कई शख़सियतों को ज़ाहिर करती हैं लेकिन वह ख़ुदा न थे, न ख़ुदा के बेटे, कुरआन मजीद में उन की सही शख़सियत को बयान किया गया है।

मुझे उस में हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम भी नज़र आये जो अल्लाह तआला की ख़ुशी (प्रसन्नता) हासिल करने के लिये अपने बेटे की कुर्बानी पेश करने के लिये तयार हो गये। वह आज़माइश (परिक्षा) में सफ़ल हुये और अल्लाह तआला ने कुर्बानी (बलिदान) के लिये एक भेड़ भेज दिया तब से इन्सानी कुर्बानी का ख़याल ख़त्म हुआ और जानवरों की कुर्बानी शुरू हुई।

बहरहाल सब पैग़म्बर ख़ुदा के भेजे हुये हैं इस लिये आदर व सम्मान के लायक़ हैं और सब के बाद तशरीफ़ लाने वाले हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम हैं जिन का संदेश रहती दुनिया तक के लिये है। अब यह हमारा काम है कि उन के बताये हुये रास्ते पर चलते रहें और दुनिया व आख़िरत की भलाई हासिल करें।

अल्लाह का लाख लाख शुक्र है! मैं एक मुसलमान की हैसियत से बहुत ख़ुश हूँ, मेरी बीवी बहुत अच्छी मुसलमान है, हम अपने बच्चों को भी बहुत अच्छा मुसलमान देखना चाहते हैं और इस्लाम की सेवा में ज़िन्दगी गुज़ार देना चाहते हैं।

अमीना असलमी (अमरीका)

अमीना असलमी वह अमरीकी औरत हैं जिन्हों ने मई 1977 ई॰ में इस्लाम कुबूल कर लिया था। इस से पहले वह कट्टर ईसाई थी, वह अमरीकी टेलीवीज़न और रेडियो पर बच्चों और समाजी सफ़लता के बारे में प्रोग्राम पेश करती थी और टेलीवीज़न के कुछ प्रोग्रामों में उन्हों ने पुरस्कार भी हासिल किये। इस समय अमीना असलमी बच्चों के लिये ऐसे रिसाले (पत्रिका) निकालने में मशगूल हैं जिन में इस्लाम की शिक्षाओं को पेश किया जा सके।

☆☆☆☆

बरतानिया के एक सफ़र के मौक़े पर उन से इंटरवियू लिया गया।

प्रश्नः– आप के इस्लाम कुबूल करने का बुनियादी कारण क्या है?

उत्तरः– मुसलमानों में ईसाईयत के प्रचार के दौरान मैं बिल्कुल उस समय इस्लाम से परिचित हुई जब कम्पियूटर सीखने के लिये अमरीका के एक सेन्टर में मैं ने अपना नाम लिखवाया। मेरे ही सेक्शन में कुछ अरब के लोग भी थे, मैं उन को सिर्फ़ इस लिये नापसंद करती थी कि वह मुसलमान हैं, इसी लिये मैं ने अपना सेक्शन बदलवा कर ऐसे सेक्शन में दाख़िला करवाना चाहा जिस में कोई अरब का मुसलमान न हो, मैं ने अपने पती से राय ली,

उन्हों ने मुझे जल्दबाज़ी से काम लेने से रोका और बरदाश्त करने का उपदेश दिया। अब मैं ने यह ख़याल किया कि हो सकता है कि अल्लाह तआला ने मुझ को उन की हिदायत के लिये चुना हो, मैं ने उन अरबों से कहा कि तुम सब जहन्नम में जाओगे, ईसा मसीह अलैहिस्सलाम की मृत्यु तुम्हारी ही वजह से हुई। मैं ने कुरआन को ख़रीदा कि उस को उन्हीं के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करूँ और दो साल तक उस का अध्ययन करती रही ताकि कुछ ग़लतियाँ मिलें।

उसी बीच एक बार अरबों की एक जमाअत ने मेरे घर के दरवाज़े पर दस्तक दी, मैं ने जब दरवाज़ा खोला तो उन्हीं में से एक ने कहा कि हम ने सुना है कि आप इस्लाम कुबूल करना चाहती हैं मैं ने उन से कहा कि हर्गिज़ नहीं मैं तो मज़बूती के साथ मसीहियत पर क़ायम हूँ। मैं इसी उम्मीद में इस्लाम के ख़िलाफ़ बात चीत करती रही कि उन को हिदायत हो और उन तमाम चीज़ों का ज़िक्र मैं ने उन से किया जिन को मैं मिटा देने का तसव्वुर करती थी, उन में से एक शख़्स ने जिस का नाम अब्दुल अज़ीज़ शैख़ था, इस्लाम की ख़ूबियाँ विस्तार के साथ बयान कीं और मेरी तल्ख़ (कड़वी) बात चीत को वह लोग बरदाश्त करते रहे और बड़े ही अच्छे अंदाज़ में इस्लाम की दावत देते रहे उन्हों ने बहुत ज़्यादा सब्र और सदाचार का इज़्हार किया। दूसरी तरफ़ कुरआन के अध्ययन का मुझ पर यह असर हुआ कि मैं ने शराब पीना और ख़िनज़ीर (Pig) खाना छोड़ दिया लेकिन अभी इस्लाम के बारे में कोई फ़ैसला न कर सकी थी।

प्रश्नः– आप के ख़याल में वह कौन से कारण हैं जो मग़्रिबी औरत को इस्लाम में दिलचस्पी लेने पर मजबूर कर देते हैं हालाँकि इस्लाम पर आरोप लगाया जाता है कि वह औरतों के साथ बुरा व्यवहार करता है?

उत्तरः– मग़्रिबी औरत की ज़िन्दगी बड़ी ही मेहनत व मुशक़्क़त की ज़िन्दगी है सब लोग उस से उम्मीद रखते हैं कि वह अच्छी औरत बने, अच्छी माँ, अच्छी आफ़ीसर, अच्छी नौकर बने और औरत की आज़ादी के लिये हमारे यहाँ काफ़ी स्कूल व कालेज हैं और हर कालेज विभिन्न कामों पर तवज्जोह देता है। औरत उन तमाम अधिकारों और अभियाचनाओं (माँग) के बीच हैरान है उस की कोई शख़्सियत नहीं और न उस की अपनी कोई मर्ज़ी है। ऐसी सूरत में मग़्रिबी औरत कुरआन पढ़ती है और इस्लाम में औरतों के हुक़ूक़ के बारे में उस को ज्ञान होता है तो उस पर यह बात बिल्कुल ज़ाहिर हो जाती है कि इस्लाम ने औरत को मुकम्मल हुक़ूक़ दिये हैं और यह हुकुक़ सैकड़ों साल पहले औरत को दिये गये थे जबकि औरत की आज़ादी का कोई ख़याल ही न था। फिर कुरआन हमें औरत के हक़ीक़ी अर्थ से परिचित कराता है।

इस्लाम उन प्रश्नों का उत्तर देता है कि औरत की अपने समाज में क्या ज़िम्मेदारी है? ख़ास तौर पर अपने माँ बाप के बारे में और ख़ुद अपने बारे में उस को क्या अधिकार हासिल हैं यहाँ तक कि वह अपने बहुत ही प्यारे पति से इस्लाम क़ुबूल कर लेने की वजह से अलग हो जाये।

प्रश्नः– लेकिन कुछ अरब लोग जो मग़्रिब से प्रभावित हैं यह बात कहते हैं कि मग़्रिबी औरत आज़ाद है, यह बात कहाँ तक सही है?

उत्तरः– मग़्रिबी औरत आज़ाद नहीं है बल्कि उस पर बहुत सी पाबन्दियाँ हैं, जो आज़ादि-ए-निस्वाँ (औरतों की आज़ादी) के नाम से उस पर लगाई जाती हैं और यह माँग उस को परेशान किये हुये है, उस के लिये यह बात ज़रूरी हो जाती है कि वह ऐसी व्यवस्था में रहे जिस में मर्द को हाकिमियत हासिल हो जाती है

ताकि वह कामियाब हो जाये। यह ऐसी माँग है जो औरत को औरत से ज़्यादा मर्द की हैसियत से ज़िन्दगी गुज़ारने पर मजबूर करता है, तो यह आज़ादी कहाँ हुई? इस का नतीजा यह निकलता है कि बच्चों की परवरिश के लिये उस को समय ही नहीं मिलता जिस की वजह से बच्चे आवारा घूमते गिरोहों में शामिल हो जाते हैं। यही चीज़ माँ को बेचैन कर देती है और उस के अन्दर गुनाह का एहसास पैदा करती है। अगर कोई औरत अपने आप को अपने बच्चों की शिक्षा व प्रशिक्षण से फ़ारिग़ कर लेती है तो उस का समाज उस को कमतर और मिडिया मिसाली औरत के लिये पेश करता है, वह ख़यालात आम औरत के ख़यालात के विपरीत हैं, यही चीज़ उस के अन्दर बेचैनी पैदा कर देती है। इस लिये हर औरत चाहती है कि वह वैसे ही हो जाये जैसी तसवीर मिसाली औरत की मिडिया में पेश की जाती है लेकिन हर औरत उस की शक्ति नहीं रखती।

प्रश्नः- अरब मुल्कों में मग़रिबी तरीक़े पर औरत की आज़ादी के बारे में आप क्या कहती हैं?

उत्तरः- मैं मग़रिबी अरब मुल्कों का दौरा करूँगी जैसे कुवैत वग़ैरा और मेरे दौरे के कारणों में से एक कारण अरब और मुसलमान औरतों को उन मदरसों की तक़लीद (अनुयाय) से बचाना है जो मग़रिबी औरत की आज़ादी के नाम से क़ायम हैं। मैं इस्लाम क़ूबूल करने से पहले आज़ादी की प्रचारक थी और मैं इस सिलसिले के प्रचार का अर्थ अच्छी तरह से समझती हूँ। मैं यह भी चाहती हूँ कि मुसलमान औरतें इस बात से अच्छी तरह परिचित हो जायें कि मग़रिबी औरत आज़ाद नहीं है बल्कि मग़रिबी नियम से मजबूर है और हक़ीक़ी आज़ादी जिस को वह तलाश कर रही है वह उस को सिर्फ़ और सिर्फ़ इस्लाम ही दे सकता है। अरब देशों में जो लोग औरत की आज़ादी का प्रचार कर रहे हैं

वह मग़्रिब में औरत की आज़ादी के अर्थ को नहीं जानते और हक़ीक़त में वह इस्लाम से भी परिचित नहीं हैं।

प्रश्नः– मग़्रिबी देशों में इस्लाम के बारे में आप का क्या ख़याल है?

उत्तरः– मुसलमानों के एक न होने के बावजूद भी इस्लाम जल्द ही यूरोप में तरक़्क़ी करेगा, अब यूरोप में ऐसे मुसलमान पाये जाने लगे हैं जो अपने देशों के तौर तरीक़े को छोड़ कर हक़ीक़ी इस्लाम को पेश करने लगे हैं। बहुत से मुसलमान शिक्षिक लोगों से ख़िताब (भाषण देना) करने का तरीक़ा जान गये हैं इसी वजह से इस्लाम लगातार तरक़्क़ी के रास्ते पर आगे बढ़ता जा रहा है। लेकिन यहाँ लोगों के दिलों में एक ग़लत बात बैठ गई है कि इस्लाम को ग़रीब (निर्धन) लोग ही कुबूल करते हैं, या वह लोग कुबूल करते हैं जो बहुत सी कठिनाईयों में गिरिफ़तार हैं, हालाँकि यह बात सही नहीं है बल्कि इस्लाम कुबूल करने वाले ज़्यादातर वह लोग हैं जो किसी न किसी युनीवर्सिटी से फ़ारिग़ हैं या सियासी, सहाफ़ती (लिखने पढ़ने का काम), क़ानूनी मैदानों में क़दम रखने वाले लोग, और यही चीज़ भविषय में इस्लाम को और ज़्यादा मज़बूत बनायेगी।

प्रश्नः– यूरोप में ग़ैर मुस्लिमों में इस्लाम का प्रचार करने का कौन सा बेहतर तरीक़ा है?

उत्तरः– सब से पहले हमें यह बात ज़ेहन में बिठा लेना चाहिये कि हम लोगों के लिये इस्लामी शिक्षाओं का आईना साबित हों। प्रश्नों का उत्तर देने के लिये काफ़ी ज्ञान होना चाहिये क्योंकि मुसलमानों में ज़्यादातर लोग इस्लाम धर्म से परिचित नहीं हैं और उन के पास कोई ऐसी शख़सियत है न कोई ऐसा स्थान जो इस्लाम के बारे में सहयोगी हो। यही चीज़ मेरे दिल को तड़पा रही

है कि हम उन को इस्लाम से परिचित करायें।

प्रश्नः— आप औरत की आज़ादी की प्रचारक रह चुकी हैं, और उस ज़माने में आप की और भी मशग़ूलियात रही हैं अपने तजर्बों के बारे में हमें कुछ बताईये।

उत्तरः— मैं अपनी ज़िन्दगी के इस मरहले में यह यक़ीन रखती थी कि मर्द और औरत के बीच मुक़ाबला है और मेरा काम यह है कि मैं मर्दों की तरह हो जाऊँ यहाँ तक कि मैं उन का मुक़ाबला करने की शक्ति रख सकूँ। जो काम मर्द करता है मैं यह समझती थी कि मैं भी उस को कर सकती हूँ लेकिन जब वह मुझ से किसी चीज़ में भी आगे बढ़ जाता तो मैं यह समझ लेती कि वह मेरा दुश्मन है। यह जानने के बाद कि औरत होना गर्व की बात है और माँ होना भी गर्व की बात है मैं ने इस्लाम कुबूल कर लिया। मैं पहले अपने आप को सब के सामने क़ैद पाती थी, अब एक ख़ानदान की इज़्ज़तदार सुरक्षित औरत की हैसियत रखती हूँ। मेरा ख़याल है कि मर्द व औरत में से हर एक को दूसरे की ज़रूरत है इन् के बीच कोई झगड़ा नहीं है और इन दोनों की ज़िन्दगी एक दूसरे के लिये रहमत है जिस के बारे में कुरआन भी बयान करता है।

मश्रिक़ी समाज में अगर औरत अपने हुक़ूक़ नहीं पाती है तो कुछ समाजी या उस की अपनी ख़राबियों की वजह से, न कि इस्लाम की शिक्षाओं की वजह से जो बहुत साफ़ और पवित्र हैं।

मोहतरमा सुरय्या

जनाब रैहान ख़ाँ अमरीका की ईस्टर्न मिशीगन यूनीवर्सिटी में प्रोफेसर हैं। उन की एक नवजवान सफ़ेदफ़ाम छात्र सुरय्या ने हाल ही में इस्लाम कुबूल किया है और अपने आप को इस्लामी लिबास समेत दीनी क़ानून से जोड़ लिया है। रैहान ख़ाँ साहब उस लड़की के कपड़ों और दीनी तरीक़ों से बहुत प्रभावित हुये। उस से इंटरवियू की सूरत में बात चीत की और शुमाली अमरीका में मुसलमानों के एक पत्रिका "योन्टी टाइम्ज़" मार्च 1990 ई० में प्रकाशित करा दिया।

☆☆☆☆

प्रश्नः– इस्लाम कुबूल करने से पहले आप के धार्मिक विचार क्या थे?

उत्तरः– मेरा संबंध एक प्रोटेस्टेन्ट ईसाई ख़ानदान से है जिस के सब लोग धर्म से दूर हैं लेकिन मैं बचपन ही से धर्म की तरफ़ झुकाव (रूचि) रखती थी, चुनाचे मेरी उम्र 10 साल की थी जब मैं ने अपने पड़ोसियों से फ़रमाईश की कि वह रविवार को चर्च जाया करें तो मुझे भी साथ ले जाया करें चुनाचे मैं कभी कभी उन के साथ गिर्जा जाने लगी और जब हाई स्कूल में पहुंची तो ईसाईयत की विभिन्न शाख़ाओं और गिरोहों के बारे में जानकारी हासिल करने लगी इस सिलसिले में मैं ने कैथोलिक धर्म का गहरा

और विस्तार के साथ अध्ययन किया और "Methodist Mormons Jehovah's Witness," और "Presby Terian" जैसे धर्म के बारे में भी ज़रूरी अध्ययन किया मगर अफ़सोस कि मेरी रूह प्यासी की प्यासी रही, मेरी आत्मा जो कुछ चाहती थी मुझे कहीं न मिली। मिसाल के तौर पर मेरा अन्तरात्मा कहता था कि इस दुनिया का पैदा करने वाला अकेला अल्लाह है जिस का कोई शरीक नहीं है जबकि ईसाईयत के सब फ़िर्क़ों में इब्हाम (समझ में न आने वाली बात) पाया जाता है।

प्रश्नः– ऐसी हालतों में इस्लाम धर्म से आप का परिचय कैसे हुआ और कब हुआ?

उत्तरः– मैं हाई स्कूल में पढ़ रही थी, जब मुझे मश्रिक़ी वुस्ता के बारे में काफ़ी विस्तार के साथ अध्ययन करने का मौक़ा मिला और उसी हवाले से पहली बार "इस्लाम और मुस्लिम" के शब्दों से मेरा परिचय हुआ, मगर स्कूल के ज़माने में मेरी जानकारी बस यहीं तक रही। कालिज में पहुंची तो वहाँ मश्रिक़ी वुस्ता से संबंध रखने वाले मुसलमान छात्र भी शिक्षा हासिल करते थे उन से मुलाक़ातें हुई तो इस्लाम से परिचय हासिल हुआ और मैं इस धर्म के इस पहलू से बहुत प्रभावित हुई कि यह ईसाईयत और यहूदियत की तरह वक़्ती तौर का धर्म नहीं बल्कि ज़िन्दगी के हर हिस्से को घेरे हुये है। इस्लाम चूंकि दिन और रात के एक-एक लमहे में रहनुमाई करता है और ईसाईयत की तरह उस की संगति का दायरा एक हफ़्ते में सिर्फ़ एक घंटे तक महदूद नहीं होता इस लिये जब एक शख़्स उसे अमली तौर पर अपनाये तो उस की ज़िन्दगी में क़ानून व क़ायदा, सलीक़ा और मज़बूती पैदा हो जाती है। और इस्लाम की दूसरी ख़ूबी यह थी जिस ने मुझे बहुत प्रभावित किया, मुझे यक़ीन हो गया कि इस्लाम एक मुकम्मल (संपूर्ण) धर्म और प्रकृति के बिल्कुल मुताबिक़ है, चुनाचे

मैं ने उसे दिल व जान से कुबूल कर लिया।

प्रश्नः– और उस का प्रभाव आप के ख़ानदान पर क्या हुआ?

उत्तरः– ख़ानदान के हर व्यक्ति का प्रभाव विभिन्न प्रकार का था, मेरे पिता जी का व्यवहार मुझ से बहुत ही प्रेम का रहा है अगरचे मैं ने इस्लाम को कुबूल करने के साथ अपना लिबास भी बदल लिया और ज़िन्दगी गुज़ारने के अकसर तरीक़ों को नया रंग दे डाला मगर उन की मुहब्बत और व्यवहार में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा बल्कि ऐसा हुआ कि एक बार मेरी एक फूफी आई और उस ने मुझे बहुत ज़्यादा बुरा भला कहा, मुझे पागलपन और निराश होने के ताने दिये तो मेरे पिता ने मेरी तरफ़दारी की। मगर मेरी माँ का व्यवहार मेरे साथ ठीक न था और वह मेरी ज़िन्दगी के इंक़लाब पर बिल्कुल ख़ुश न हुई। लेकिन इस में कोई शक नहीं कि कुछ कठिनाईयों के बावजूद मैं ख़ुशनसीब हूँ कि अपने माँ बाप के यहाँ रह रही हूँ और मुझे उन कठिनाईयों का सामना नहीं करना पड़ा जिस की आमतौर पर आशा की जाती है।

प्रश्नः– मैं हैरान हूँ कि आप के अन्दर इत्ना बड़ा क़दम उठाने की हिम्मत कैसे पैदा हो गई?

उत्तरः– आप की बात ठीक है कि अमरीका के इस माहौल में जहाँ ऐशपरस्ती और मनोरंजन को ही ज़िन्दगी का असल मक़सद समझा जाता है वहाँ इस्लाम कुबूल करना और उस की शिक्षाओं पर अमल करना बहुत ही मुश्किल काम है चुनाचे यह फ़ैसला करने से पहले मैं ने हज़ार बार सोचा कि मेरे माँ बाप मेरे साथ क्या व्यवहार करेंगे? मेरी शिक्षा का क्या होगा? और मैं अपने रिश्तेदारों में कैसे ज़िन्दा रहूँगी? इस प्रकार के डर ने मुझे बहुत ज़्यादा परेशान किये रखा। मगर बहुत ज़्यादा सोच विचार के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंची कि एक वक़्ती और ज़्यादा समय न रहने वाली परेशानी के मुक़ाबले में जो इस्लाम कुबूल करने के नतीजे में

पेश आ सकती थी, मुसलमान न होने के नताईज ज़ेहनी और रूहानी एतबार से ज़्यादा गंभीर हो सकते हैं, मैं ने अल्लाह से ख़ूब दुआएँ कीं उस से मदद माँगी और वास्तव में अल्लाह ने मेरी दुआएँ सुन लीं और हैरान कर देने वाले अंदाज़ में मुझे वह हिम्मत और हौसला दिया कि मैं इतना बड़ा फ़ैसला करने के क़ाबिल हो गई।

प्रश्नः– आप तो अभी छोटी उम्र की हैं आप का क्या ख़याल है आप वास्तव में इस फ़ैसले पर मज़बूती से क़ायम रहेंगी?

उत्तरः– मुझे यक़ीन है कि मैं ने यह फ़ैसला बहुत सोच विचार कर किया है और इस में कोई कमज़ोरी पैदा नहीं होगी। अंदाज़ा करें जब मैं इस्लाम को कुबूल करने के लिये एक मस्जिद में गई तो वहाँ के ख़तीब और इमाम ने मुझ पर ज़रा भी दबाव न डाला बल्कि राय दी कि मैं पहले इस्लाम के बारे में अच्छी तरह से अध्ययन कर लूँ और अगर उस के बारे में कोई मामूली सा भी एतराज़ है तो प्रश्न कर के उस को दूर कर लूँ फिर इस्लाम कुबूल करूँ। इस के विपरीत जिन दिनों मैं कैथोलिक धर्म का अध्ययन कर रही थी एक बार मैं कैथोलिक चर्च में गई तो मेरे जानने वालों ने बहुत कहा कि मैं इस धर्म को तुरन्त कुबूल कर लूँ।

मुझे इस बात का भी भरोसा है कि चूँकि मैं ने बहुत से धर्मों का अध्ययन किया है और मेरी बुद्धी ने उस को मानने से इंकार किया है, इसी लिये मैं ने जिस धर्म को चुना है वह हर एतबार से बेहतरीन और अक़्ल में आने वाला है इसी तरह मैं यह भी बताती चलूँ कि मैं ने दो साल तक ख़ूब जम कर इस्लाम और उस की शिक्षाओं का अध्ययन किया है और बहुत से लोगों से उस के बारे में बात चीत भी की है। इस लिये यह समझ लीजिये कि इस्लाम कुबूल करने में न तो किसी जज़्बात से काम लिया है और न ही जल्दबाज़ी का अमल दख़ल है न ही उस का मक़सद

कोई दुनियावी फ़ायदा हासिल करना है। मैं ने यह फ़ैसला ख़ूब सोच विचार कर किया है और इंशाअल्लाह इस पर सारी उम्र जमी रहूँगी।

प्रश्नः– आप ने इस्लाम कुबूल कर के क्या हासिल किया?

उत्तरः– इस्लाम कुबूल करने के बाद मैं ने जो कुछ हासिल किया उन को गिन कर बताना कि मैं ने यह और यह हासिल किया मुश्किल काम है। फिर भी इस्लाम कुबूल कर के सब से बड़ी कामियाबी यह मिली कि ज़िन्दगी में एहतिराम और सलीक़ा पैदा हुआ। दिन और रात को एक मक़सद हासिल हुआ और वह ख़ालीपन जो हमेशा दिल व दिमाग़ पर छाया रहता था ख़त्म हो गया। फिर यह नेमत भी कुछ कम नहीं कि अल्लाह पर ईमान और उस की उपासना इंसान के अन्दर सुकून पैदा करते हैं और उस को ज़्यादा से ज़्यादा याद करने का ज़रिया बनते हैं, रूह और मक़सद में बुलंदी का एहसास पैदा होता है, और इंसान कठिन से कठिन हालतों में परेशानी और निराशा से सुरक्षित रहता है। अल्लाह का बहुत बड़ा उपकार है कि इस्लाम की शिक्षाओं को अपनी ज़िन्दगी में लागू करने के बाद मैं अपने अन्दर परिवर्तन महसूस कर रही हूँ उन में से कुछ ज़ाहिर हैं और कुछ का संबंध ज़ेहन और इरादे से है इसी लिये वह छुपी हुई हैं।

प्रश्नः– आप ने अपने बालों को ढक रखा है, अमरीका के माहौल में आप को यह कैसा लगता है?

उत्तरः– इस बारे में मेरे वही अनुभव हैं जो एक सच्चे और पक्के मुसलमान औरत के हो सकते हैं मैं ने अपना सिर ढक कर असल में उस माहौल की ख़राबियों के ख़िलाफ़ सुरक्षा हासिल की है और आम औरत नंगेपन की वजह से जिस डर और घबराहट की कैफ़ियत का शिकार रहती है, उस से बहुत ज़्यादा मुक्ति पा ली है, फिर मेरा सिर ढाकना एक तरह का एलान भी है कि मैं

मुसलमान हूँ और सब से ख़ास बात यह है कि इस बारे में अल्लाह ने जो हुक्म दिया है मैं उस की उपासना कर रही हूँ।

प्रश्नः– अमरीका में जो लोग अपना धर्म बदलते हैं उन में से ज़्यादातर लोग इस्लाम धर्म ही को कुबूल करते हैं आप के नज़दीक इस का कारण क्या है?

उत्तरः– मेरा यक़ीन है कि जो बेशुमार लोग इस्लाम की तरफ़ लपके लपके चले आ रहे हैं उन्हें इस चीज़ का एहसास हो गया है कि मौजूदा ज़माने में मग़िरब में ज़िन्दगी गुज़ारने का जो तरीक़ा है वह न तो अख़्लाक़ी क़द्रों की परवरिश करता है न यह किसी एहतिराम और ज़िन्दगी गुज़ारने के किसी साफ़ सुथरे तरीक़े को बढ़ावा दे रहा है। जबकि इस के विपरीत इस्लाम की सूरत में वह ऐसी सच्चाई से माला माल होते हैं, जो उन्हें बुलंद से बुलंद अख़्लाक़ी (सदाचारी) दर्जा अता करती है और उन दर्जों को हासिल करने का वह असल मक़सद देती है जो हक़ीक़त पसंदी पर निर्धारित है प्राकृतिक है और एहतिराम के लायक़ भी। ख़ास और महत्वपूर्ण बात यह है कि इस्लाम मग़िरब की तंगनज़री से बहुत बुलंद और महान है और इंसानों को माद्दियत और नस्लपरस्ती से हटा कर ख़ालिस इंसानी एहतिराम की बिना पर संबोधित करता है।

प्रश्नः– अमरीका में ज़्यादातर सियाहफ़ामों ने इस्लाम कुबूल किया है आप के ख़याल में यह मुबारक संदेश सफ़ेदफ़ामों तक पहुंचने में क्यों कामियाब नहीं हो सका?

उत्तरः– इस बारे में मैं कोई राय नहीं दे सकती फिर भी मेरा यह ख़याल है कि जो लोग इस्लाम कुबूल करते हैं वह आमतौर से मौजूदा क़ानून के सताये हुये लोग होते हैं। इस में कोई शक नहीं कि अमरीका में बेचारे सियाहफ़ाम बड़े ही सताये हुये हैं और जब वह इस्लाम के दायरे में आते हैं तो उन्हें कमतरी और अत्याचार

व ज़बरदस्ती के बजाये मुहब्बत, बराबरी और आदर व सम्मान मिलता है तो उन की परेशान और दुखी रूहों को सुकून और क़रार मिल जाता है।

सियाहफ़ामों के इस्लाम की तरफ़ आने का एक कारण और भी है वह जान गये हैं कि अफ़रीक़ा में उन के बाप दादा का धर्म इस्लाम था और जब उन्हें ज़बरदस्ती अपहरण कर के अमरीका लाया गया तो उन से यह नेमत छीन ली गई चुनाचे इस्लाम कुबूल कर के असल में वह अपने असल धर्म की तरफ़ लौटते हैं।

प्रश्नः– अमरीका के अख़बारात और दूसरे ज़राए-इब्लाग़ (ख़बरें पहुंचाने के साधन) यह शोर करते हैं कि इस्लाम का व्यवहार औरतों के मुआमले में सही नहीं है, आप एक शिक्षिक सफ़ेदफ़ाम औरत हैं इस. बारे में आप का क्या ख़याल है?

उत्तरः– इस सवाल का जवाब इतने थोड़े समय में नहीं दिया जा सकता, यह विषय तो ऐसा है कि इस पर एक पुस्तक तयार हो सकती है फिर भी मुख़तसरतौर पर मैं यह कहूंगी कि यह बात हक़ीक़त के विपरीत है और यह आरोप आम तौर से उन लोगों की तरफ़ से दोहराया जाता है जो इस्लामी शिक्षाओं से बिल्कुल बेख़बर हैं, वह फ़र्ज़ कर लेते हैं कि जब इस्लामी समाज में मर्द और औरत के काम करने का मैदान अलग अलग है तो ज़रूरी तौर पर औरत अत्याचार का शिकार होती है हालाँकि मुआमला ऐसा बिल्कुल नहीं है।

इस के विपरीत मैं अपने देश की हालत पेश करती हूँ यहाँ बराबरी और मसावात का मतलब यह लिया जाता है कि समाज में औरत वह सब कुछ करे जो मर्द करता है, लेकिन होता यह है कि औरत मर्द की तरह कमाती भी है और घर का भी सारा काम करती है जहाँ मर्द उस के साथ शरीक नहीं होता, फिर ज़ाहिर है बराबरी कहाँ रही? और जिन घरों में माँ और बाप

दोनों काम करते हैं वहाँ बच्चों का जो हाल होता है वह अत्याचार और ज़बरदस्ती की एक अफ़सोसनाक मिसाल है। इस मुआमिले में एक चीज़ और भी है, यूरोप के ज़राए-इब्लाग़ और अख़बारात आमतौर पर इस्लामी हुकूमतों के काम करने के तरीक़ों और विभिन्न लोगों के ज़ाती व्यवहार से समझ लेते हैं कि यही कुछ इस्लाम की शिक्षा है हालाँकि ऐसा नहीं है इन दोनों में फ़र्क़ करना ज़रूरी है। चुनाचे मुसलमान होने की हैसियत से हमारा फ़र्ज़ है कि हम इस्लामी शिक्षाओं पर उन की सही रूह के साथ अमल करें और ग़ैर मुस्लिमों के सामने इस्लाम का सच्चा आईना बनें।

प्रश्नः– अमरीका में जो ग़ैर मुस्लिम औरतें इस्लाम कुबूल करना चाहती हैं उन के नाम आप का संदेश क्या है?

उत्तरः– उन बहनों के लिये मेरी राय यह है कि वह इस्लाम के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा पुस्तकों का अध्ययन करें और ख़ूब ध्यान के साथ सोच विचार करें, मैं इसी रास्ते से इस्लाम की मंज़िल तक पहुंची हूँ, दूसरी बात यह कि डरें बिल्कुल नहीं, अगर आप ने सीधे रास्ते तक पहुंचने का इरादा कर लिया तो अल्लाह अपने करम (दया) से आप की मदद फ़रमायेगा।

प्रश्नः– आप मेरी लायक़ छात्र हैं, मैं जानना चाहता हूँ कि भविषय में आप अपनी योग्यताओं को धर्म की सेवा के लिये किस तरह काम में लायेंगी?

उत्तरः– मेरा इरादा है कि मैं किसी इस्लामिक स्कूल की टीचर बन जाऊँ, अपने छात्रों तक इस्लाम की सच्ची शिक्षाएँ पहुचाऊँ और दूसरे लोगों तक भी इस्लाम का सच्चा संदेश पहुंचाऊँ। मुझे उम्मीद है कि इंशाअल्लाह मैं अपने इस इरादे में सफ़ल हो जाऊँगी।

मुहम्मद अल-मेहदी (इंगलिस्तान)

जो लोग इस्लाम कुबूल करना चाहते हैं उन के और इस्लाम कुबूल करने के बीच सब से बड़ी रुकावट वह पुस्तकें हैं जो मग़्रिबी ग्रंथकार कीना कपट और पक्षपात में डूब कर लिखते हैं जिन में या तो इस्लाम का परिचय ऐसे भोंडे और हंसी उड़ाने वाले अंदाज़ में कराया जाता है कि पढ़ने वाला उस से बुरा प्रभाव लिये बग़ैर नहीं रहता या फिर मुसलमानों की कमियों और ग़लतियों को इस्लाम के सिर रख कर एक भयानक और डरावनी तसवीर पेश की जाती है, ख़ास तौर से उन लड़ाईयों को ख़ूब नमक मिर्च लगा कर पेश किया जाता है जो कुछ शताब्दियों पहले मुसलमानों और यूरोप वालों के बीच हुई थीं। इस बारे में इतनी बदनियती से काम लिया जाता है कि मुसलमानों की कुछ बुराईयों का मुक़ाबिला ईसाईयत की बेहतरीन ख़ूबियों से किया जाता है और इस बात पर कभी ग़ौर नहीं किया जाता कि आख़िर क्या वजह है कि जब मुसलमान अपनी सभ्यता (तहज़ीब) की वजह से महान थे तो इस्लामी एहसास व अमल भी महान था, मगर इस के विपरीत यूरोपियन सभ्यता जब बुलंदी पर पहुंची तो उसी निसबत से ईसाईयत बिल्कुल नेचे चली गई।

अलहमदुलिल्लाह मेरा मुआमला इस से अलग रहा, मैं उन पुस्तकों से हट कर भी ग़ौर करने का आदी था और सिर्फ़ मैं ही नहीं यूरोप में बहुत से ऐसे लोग हैं जो ईसाईयत को कुबूल करने

के योग्य नहीं समझते, वह दिल से इस्लामी शिक्षाओं के बहुत क़रीब हैं, मगर उन्हों ने कभी इस्लाम की सादगी व पवित्रता को नहीं देखा इस लिये वह उसे कुबूल करने से हिचकिचाते हैं, फिर भी इस्लाम कुबूल करने वालों में बहुत से ऐसे लोग हैं जो एक "ज़िन्दगी गुज़ारने के क़ानून" की तलाश में होते हैं और बेमक़सद ज़िन्दगी गुज़ारने से तंग आ चुके होते हैं।

मेरा मुआमला इस से कुछ अलग है मैं ने इस्लाम को कभी नहीं चाहा था। मैं इंगलिस्तान के "ईसाई" समाज में पैदा हुआ और वहीं पला बढ़ा, यह समाज कहने को तो ईसाई समाज है मगर हक़ीक़ी ज़िन्दगी के तसव्वुर से बहुत दूर है एक ऐसा तसव्वुर जो बहुत कम ही कहीं नज़र आता है लेकिन उसे समझने की कोशिश ज़रूर की जाती है मगर समझ में नहीं आता। अगरचे वहाँ ऐसे लोग भी हैं जो ईसाई भी हैं और इंसानियत की कामियाबी व तरक़्क़ी के लिये कोशिश करते रहते हैं।

शिक्षा से फ़ारिग़ हो कर मैं ने अफ़रीक़ा और यूरोप के देशों की ख़ूब सैर की। अफ़रीक़ा का कोई ऐसा देश न था जहाँ मैं ने सफ़र न किया हो, मेरा ख़याल यह था कि यूरोपियन क़ौम और समाज के मुक़ाबिले में जहाँ जहाँ लोग मुस्लिम सोसाईटी के तहेत ज़िन्दगी गुज़ारते हैं वहाँ ख़ुलूस और ज़िन्दगी की दिलकशी का एक ख़ास अंदाज़ मिलता है, चुनाचे मैं उत्तरी नाईजीरिया के शहर "कानू" की ख़ूबसूरत मस्जिद से बहुत ज़्यादा प्रभावित हुआ, और वहाँ के दोस्तों में जो ख़ुलूस और मुहब्बत और कुर्बानी नज़र आई उस का तजर्बा इस से पहले कभी नहीं हुआ था। ख़ुशक़िस्मती से मुझे उस के बाद सिरीनेका (SIRINIKA) के ख़ास मुस्लिम समाज में लम्बे समय तक ठहरने का मौक़ा मिला, मुसलमानों के हवाले से इस्लाम के लिये मेरे दिल में जो नर्मी पैदा हो गई थी उस में गहराई और बढ़ोतरी हो गई और मैं इस्लाम को कुबूल करने के

बारे में बहुत संजीदगी से सोचने लगा।

फिर मैं ने अपनी ज़िन्दगी का एक अहम फ़ैसला करने से पहले बहुत से धर्मों का अध्ययन ख़ूब ध्यान लगा कर किया। मेरा अंदाज़ा है कि कोई भी ज़हीन व्यक्ति जो विभिन्न धर्मों का अध्ययन करेगा, वह उस की बुनियादी सच्चाईयों को मानने लगेगा। बहुत सोच विचार करने के बाद मैं ने दिल की गहराईयों से इस्लाम कुबूल करने का ऐलान कर दिया।

लेकिन मैं ने इस्लाम को तुरन्त ही कुबूल नहीं किया, बल्कि महीनों तक इस्लाम की एक-एक चीज़ का अध्ययन किया। बहुत से लोगों से इस बारे में बात चीत भी की और इस के लिये मुस्लिम दोस्तों ने बहुत मदद की। इस्लाम की शिक्षाएँ मैं ने तरतीब से हासिल कीं, सब से पहले मैं ने अल्लाह के एक होने और उस के 99 नामों का यक़ीन हासिल किया, फिर इस बात का यक़ीन हासिल किया कि हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम वास्तव में अल्लाह के सच्चे नबी और आख़िरी पैग़म्बर हैं, फिर मैं ने इस बात का यक़ीन हासिल किया कि कुरआन वास्तव में ख़ुदा की किताब है जो हज़रत मुहम्मद (सल०) पर उतारी गई है और यही सीधा रास्ता दिखाती है, फिर में ने इस बात का यक़ीन हासिल किया कि कुरआन हर प्रकार के परिवर्तन से पवित्र है और बिल्कुल उसी हालत में चला आ रहा है जिस तरह आज से 1400 साल पहले था।

इस के साथ ही मेरा दिल इस बात पर संतुष्ट हो गया कि सिर्फ़ इस्लाम ही वह सच्चा धर्म है जो हर ज़माने में इंसानों को सीधा रास्ता दिखा सकता है, चुनाचे मैं ने इस्लाम की एक एक शिक्षाओं पर अमल करना शुरू कर दिया, और जब मैं ने उन बातों को कुबूल कर लिया जिस का वह हुक्म देता है और उन बातों को छोड़ दिया जिस से दूर रहने की शिक्षा देता है तो एक

दिन मैं ने बाक़ायदा इस्लाम कुबूल कर लिया और नाम बदल कर मुसलमान बन गया।

मैं जानता हूँ कि सिर्फ़ इस्लाम कुबूल करने पर ही बात ख़त्म नहीं हो जाती बल्कि यह तो अल्लाह के रास्ते में एक नई ज़िन्दगी की शुरूआत है। दुआ है कि अल्लाह हमें नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात और जिहाद के ज़रिये अपनी ख़ुशी हासिल करने की शक्ति दे। (आमीन)